मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Master of Arts (Sanskrit)

चतुर्थ सेमेस्टर - एम0ए0एस0एल - 607

गद्य एवं पद्य काव्य:भाग-02

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफे0 रमाकान्त पाण्डेय,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर, राजस्थान
प्रोफे0 कौस्तुभानन्द पाण्डेय,
संस्कृत विभाग, अल्मोड़ा परिसर,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल-(संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक

प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सहसम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन — **खण्ड एवं इकाई संख्या**

डॉ0 नीरज कुमार जोशी — प्रथम एवं द्वितीय खण्ड सम्पूर्ण
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वावनी) -263139
पुस्तक का शीर्षक - गद्य एवं पद्य काव्य:भाग-02

ISBN No. 978 - 93 - 84632-26- 7
प्रकाशन वर्ष : 2022
मुद्रक:

अनुक्रम

चतुर्थ सेमेस्टर/SEMESTER-IV

खण्ड–प्रथम

बुद्धचरितम्

खण्ड प्रथम का परिचय

स्नातकोत्तर संस्कृत के चतुर्थ सेमेस्टर गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड है। इस खण्ड में पॉच इकाइयॉ हैं। इस खण्ड की सभी इकाइयॉ महाकवि अश्वघोष कृत बुद्धचरितम् महाकाव्य से सम्बन्धित हैं। महाकवि अश्वघोष संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रत्न है। उनके द्वारा रचित बुद्धचरितम एक प्रमुख महाकाव्य है।

इस खण्ड में आप महाकवि अश्वघोष का जीवन वृत्त, कृर्तृत्व, स्थितिकाल, उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त करने के साथ ही बुद्धचरितम् महाकाव्य का कथासार तथा महाकाव्य के महाकाव्यत्व से परिचित होंगे।

बुद्धचरित अठाईस सर्गों का महाकाव्य है, इस महाकाव्य में भगवान बुद्ध के गर्भाधान से परिणति बुद्धत्व प्रप्ति तक के उपदेशों तथा उनके सिद्धान्तों को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान में इस ग्रन्थ के संस्कृत में 17 सर्ग ही उपलब्ध हैं। इसके तिब्बती तथा चीनी संस्करण 28 सर्गों में उपलब्ध होते हैं। यह महाकाव्य उनके संघर्षमय सफल जीवन का मूर्त काव्य है। जिसका अध्ययन आप इस खण्ड में करेंगे। साथ ही बुद्धचरितम महाकाव्य के प्रथम सर्ग का भवानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या भी आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत की जा रही है।

खण्ड–प्रथम, इकाई –प्रथम
महाकवि अश्वघोष एवं बुद्धचरितम् का विहंगावलोकन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। प्रस्तुत इकाई में आप जानेगें कि महाकाव्य किसे कहते हैं। इसकी उत्पत्ति तथा विकास किस प्रकार हुआ। साथ ही महाकवि अश्वघोष का जन्म, स्थितिकाल, उनकी रचनाओं (बुद्धचरितम्) तथा काव्यकला का अध्ययन करेगें।

महाकाव्य के द्वारा सहृदय सामाजिक को आनन्द की प्रप्ति होती है जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि महाकाव्य किसे कहते हैं। संस्कृत महाकाव्यों का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। महाकवि अश्वघोष का संस्कृत महाकाव्यों में क्या योगदान है। उक्त सभी प्रसंगों के बारे में सम्पूर्ण रूप से ज्ञान पाप्त कर सकते हैं।

1.2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ❖ महाकवि अश्वघोष के विषय में सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ बुद्धचरितम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ महाकवि अश्वघोष के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेंगे।
- ❖ महाकवि अश्वघोष की रचनाओं के बारे में बता सकेंगे।
- ❖ महाकवि अश्वघोष की रचना शैली से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि महाकवि अश्वघोष का जन्म कब और कहां हुआ।

1.3 महाकवि अश्वघोष एवं बुद्धचरितम् का विहंगावलोकन:-

बुद्धचरितम् सस्कृत साहित्य का महाकाव्य है। इसके रचयिता अश्वघोष हैं। इसमें गौतम बुद्ध का जीवनचरित वर्णित है। इसकी रचनाकाल दूसरी शताब्दी है। सन् 420 में धर्मरक्षा ने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा 7 वीं एवं 8 वीं शती में इसका अत्यन्त शुद्ध तिब्बती अनुवाद किया गया। दुर्भाग्य वश यह महाकाव्य मूल रूप में अपूर्ण ही उपलब्ध है। 28 सर्गों में विरचित इस महाकाव्य के द्वितीय से लेकर त्रयोदश सर्ग तक तथा प्रथम एवं चतुर्दश सर्ग के कुछ अंश ही मिलते हैं। इस महाकाव्य के शेष सर्ग संस्कृत में उपलब्ध नहीं है। इस महाकाव्य के पूरे 28 सर्गों का चीनी तथा तिब्बती अनुवाद अवश्य उपलब्ध है। इस महाकाव्य का आरम्भ बुद्ध के गर्भाधान से तथा इसकी परिणति बुद्धत्व-प्राप्ति में होती है। यह महाकव्य भगवान बुद्ध के संघर्षमय सफल जीवन का ज्वलन्त, उज्ज्वल तथा मूर्त महाकाव्य है।

1.3.1 महाकवि अश्वघोष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व:-

संस्कृत साहित्य में महाकवि अश्वघोष का महत्वपूर्ण स्थान है। वे महान बौद्ध दार्शनिक, महाकवि आचार्य अश्वघोष सम्राट् कनिष्क के समकालीन थे। वह न केवल बौद्ध दर्शन के इतिहास में ही अपितु संस्कृत काव्य की समस्त परंपरा में भी अति विशिष्ट गौरवमय स्थान रखते हैं। महाकवि अश्वघोष आदि कवि वाल्मीकि के एक महत्वपूर्ण उत्तराधिकारी थे एवं कालिदास तथा भास के पुर्वगामी थे बहुत से भारतीय तथापाश्चात्य विद्वान् विश्वासपूर्वक यह मानते हैं कि महाकवि कालिदास अनेक विषयों में हमारे इन आचार्य के अतिशयऋणी थे। महाकवि अश्वघोष का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही था कि उन्होंने

अपने सभी कार्यों के माध्यम से बुद्ध भक्ति का ही सर्वाधिक प्रचार-प्रसार किया। यद्यपि महायानमत की शिक्षाएं अश्वघोष के समय से प्राय: दो या तीन शताब्दी पूर्व ही प्रसार में आ रही थी, परन्तु उन शिक्षाओं की प्रभावमयी अभिव्यक्ति सर्वप्रथम अश्वघोष की कृतियों में ही दिखाई दी।

लौकिक संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की विकासात्मक दार्शनिक यात्रा महाकवि अश्वघोष से प्रारम्भ होती है। अश्वघोष द्वारा रचित 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य में अभिनव बौद्धिक प्रवृत्तियों के साथ काव्य तत्वों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। जैसे पूर्व में कहा जा चुका है कि संस्कृत साहित्य में महाकाव्य परम्परा का विकास अश्वघोष से पूर्व में भली भांति हो चुका था परन्तु उन पूर्ववर्ती महाकाव्यों का अस्तित्व न होने से महाकाव्यकारों की श्रेणी में सर्वप्रथम अश्वघोष और उनके 'बुद्धचरित' की गणना की जाती है।

1.3.2 महाकवि अश्वघोष का जीवन परिचय:-

महाकवि अश्वघोष के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी का अभाव है अन्य महाकवियों की तरह अश्वघोष ने भी अपना परिचय देने में मौन अपनाया है। केवल 'सौन्दरनन्द' के अन्त में अश्वघोष ने इतना ही उल्लेख किया है—**'आयर्सुवर्णाक्षीपुत्रस्यौ साकेतस्य 'भिक्षोराचार्यभदन्तानश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिन: कृतिरियम्'**। इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि अश्वघोष सुवर्णाक्षी के पुत्र और साकेत के निवासी थे। यह आचार्य भदन्त, महाकवि, महावादी, भिक्षु आदि कई विशेषणों से अलंकृत थे। चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष पुण्यादित्य की उपाधि से विभूषित थे। तिब्बती इतिहासकार श्री तारा नाथ के अश्वघोष के मात्रृचेट, पितृचेट, मतिचित्र, शूर आदि विविध नामों का उल्लेख किया है, परन्तु यह नाम कल्पित प्रतीत होते हैं क्योंकि मातृचेट अश्वघोष से भिन्न बौद्ध भिक्षु एवं विद्वान था, जिसने अश्वघोष का अनुकरण करते हुए 'शतपञ्चाशतिक' की रचना की थी।

परम्परानुसार ऐसी मान्यता है कि अश्वघोष का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा भी तदनुसार ही मिली थी। बाद में यह बौद्ध धर्म के दीक्षित ही नहीं हुए,अपितु उसके प्रबल प्रचारक एवं उपदेशक भी बने। चीनी यात्री इत्सग का उल्लेख के अनुसार अश्वघोष बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक थे और बौद्ध मठों में उस समय उनकी रचनाओं का ही गान होता था। हुएनसांग के अनुसार अश्वघोष, देव, नागार्जुन और कुमारलात यह चारों बौद्ध विद्वान् चार सूर्य थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार में विश्व को प्रकाशित किया था।

इस प्रकार अश्वघोष के जीवन परिचय के सम्बन्ध उक्त तथ्यों के अलावा अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती है। सम्भवत: यह माहाराज कनिष्क के राज्याश्रय में बौद्ध धर्म के योगाचार सम्प्रदाय के आचार्य थे। वे अपनी रचनाओं को धर्म प्रसारार्थ मानते थे और गायकों की टोली के साथ गा गाकर जनता में अपनी कविताओं का प्रचार करते थे। अपनी कविता के सम्बन्ध में अश्वघोष ने स्पष्ट कहा है—
'इत्ये षा व्युंपशान्तेये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृति:'

1.3.3 महाकवि अश्वघोष का समय एवं स्थितिकाल:-

संस्कृत के अधिकांश महाकाव्यों की तरह महाकवि अश्वघोष की स्थिति काल का निर्धारण करना दुरूकर कार्य है। ऐसी कोई सामग्री अथवा अन्त: साक्ष्य नहीं मिलते हैं, जिसके बल पर अश्वघोष का समय ज्ञात हो सके। केवल बाह्य साक्ष्य के आधार पर उनके स्थिति काल का निर्धारण किया जा

सकता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अश्वघोष महाकवि कालिदास के पश्चात हुए। परन्तु शोध समीक्षकों की दृष्टि में अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती रहे हैं। इस सम्बन्ध में निम्नोक्त तथ्य प्रस्तुत किए जाते हैं।—

1. सम्राट् अशोक के बाद बौद्ध धर्म को जो प्रबल राज्याश्रय प्राप्त हुआ, वह कुषाण वंश के राजा कनिष्क का व्यक्तित्व था कनिष्क के समय बौद्ध धर्म का तिब्बत, चीन आदि देशों में अत्यधिक प्रचार हुआ था। चीनी अनुश्रुतियों एवं साहित्यिक परम्पराओं के अनुसार अश्वघोष कनिष्क के समय कालीन तथा परामर्शदाता थे ऐसी मान्यता है कि अश्वघोष ने कनिष्क के राज्य-काल में अभीधर्म की व्याख्या 'विभाषा' की रचना की इस आधार पर अधिकतर विद्वान् का स्थिति काल ईसा की प्रथम शताब्दी मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान फर्गुसन ओल्डभनवर्ग, रैप्सन, सैमुअल ब्रीलआदि ने न्यूनाधिक रूप में सम्राट कनिष्क का यह समय माना है। उनका यह मत है कि कनिष्क ने ही शक संवत् का प्रवर्तन किया था। इस मत के आधार पर कीथ भी अश्वघोष को प्रथम शताब्दी के लगभग अवस्थित मानते हैं।

2. 'बुद्धचरित' महाकाव्य का चीनी अनुभाग 5 वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था। अतः इससे पहले अश्वघोष द्वारा बुद्धचरित की रचना करना सिद्ध हो जाता है जो कि प्रथम शताब्दी के आसपास हुई होगी बुद्धचरित के अन्तिम सर्ग में सम्राट् अशोक द्वारा बनाई गई बौद्ध संगीति का वर्णन मिलता है। अशोक का समय 265 से 211 ईसा पूर्व माना जाता है। अतः बुद्धचरित की रचना इसके बाद की हुई है।

3. महाकवि कालिदास और अश्वघोष की काव्य शैली में पर्याप्त समानता है। कालिदास का स्थिति काल ई0 पूर्व प्रथम शताब्दी माना जाता है। क्योंकि प्राचीन परम्परा के अनुसार कालिदास सम्राट विक्रमादित्य के सभारत्नों में थे। विक्रमादित्य ने ई0 पूर्व 57 में विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया था। इस आधार से भी अश्वघोष का समय ई0पू0 प्रथम शताब्दी सिद्ध हो जाता है।

4. प्रो0 ल्यूडर्स के अनुसार अश्वघोष कृत 'शारिपुत्रप्रकरण' की पाण्डुलिपि के हस्तलेख लिपी को देखने से पता चलता है कि यह कनिष्क या हविष्क के समय की है। परन्तु कनिष्क का समय अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। इतिहास में कम से कम दो कनिष्कों का उल्लेख मिलता है। द्वितीय कनिष्क थम कनिष्क का पौत्र था। विण्टरनित्जथ ने सभी प्रमाणों का परीक्षण करके अपना मत व्यक्त किया है। कनिष्ठ 125 ई0 में सिंहासन पर अधिष्ठित हुआ था । ऐसी परिस्थितियों में अश्वघोष का स्थिति काल दूसरी ई0 शती माना जाता है। परन्तु अधिकतर अन्य विद्वानों का मत है कि कनिष्क शक संवत् का प्रवर्तक था। यह संवत् 78 ई0 भी से प्रारम्भ हुआ। कीथ आदि इस मत का समर्थन करते हुए महाकवि अश्वघोष के प्रथम ई0 में अवस्थित मानते हैं। इन दोनों मतों के आधार पर अश्वघोष का समय ई0पूर्व प्रथम शताब्दी से द्वितीय शताब्दी के मध्य प्रतीत होता है।

5. अश्वघोष को नागार्जुन से पूर्ववर्ती माना जाता है, नागार्जुन का उल्लेख जगय्य पेट स्तूप के लेख में मिलता है, जो कि उसके शिष्य द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था। इस लेख का समय तृतीय ई0 शताब्दी माना जाता है और नागार्जुन का समय दूसरी शताब्दी सिद्ध होता है। इस आधार पर अश्वघोष का स्थिति काल प्रथम शताब्दी या उससे पूर्ववर्ती सिद्ध होता है।

7. सूत्रालंकार में अश्वघोष ने ऐसी दो कथाएं लिखी हैं जिससे भी यही सिद्ध होता है कि अश्वघोष को कनिष्क का राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। इस आधार पर भी अश्वघोष का स्थिति काल ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी माना जाता है।

8. चीनदेश के प्रसिद्ध प्रवासी ह्वेनसांग ने सोमान्तिक संप्रदाय का प्रथम आचार्य कुमारजीव या कुमारलब्ध को माना है। इनके अनुसार उस समय चारों दिशाओं में बौद्ध धर्म के चार आचार्य थे । पूर्व में अश्वघोष,दक्षिण में देव, पश्चिम में नागार्जुन तथा उत्तर में कुमारजीव नामक संस्थापक आचार्य थे। अनेक

विद्वान् इस सिद्धान्त के पक्षधर हैं कि सम्राट कनिष्क द्वारा कुंडलवन बिहार में एक संगीति बुलाई गई थी उस संगीति का पुण्य गौरव अश्वघोष को प्राप्त है। एक चीनी परम्परा के अनुसार उस सगीति के सभापति वसुमित्र तथा उपसभापति अश्वघोष थे।

9. सौन्दरनन्द महाकाव्य की भूमिका में डॉ0 हरप्रसाद शास्त्री ने अश्वघोष का समय ईसा के प्रथम शताब्दी का अंतिम चरण माना है।

10. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 516 में बलदेव उपाध्याय ने अश्वघोष का समय 1 से 55 ईसवी के मध्या माना है।

11. महाप्रज्ञापारमिताशास्त्र नामक बौद्ध ग्रंथों का चीनी अनुवाद सांग इंन की निर्माण तिथि 500 वर्ष पश्चात अश्वघोष की स्थिति को स्वीकार करता है, किन्तु उसके भाष्यकार इन निर्वाण तिथि को 370 वर्ष बाद कवि की सत्ता स्वीकार करता है।

12. बुद्धचरित के अन्तिम चरण में अशोक का उल्लेख मिलता है अथवा निश्चित रूप में अशोक सम्राट अशोक के परवर्ती थे।

13. चीनी परम्परा के अनुसार अशोक सम्राट कनिष्क के धर्मगुरु थे अभिधर्मपिटक की विभाषा नामक व्याख्या इसी समय लिखी गई थी यह व्याख्या 78-100 ई0 के बीच लिखी गई थी।

14. डॉ0 राधाकृष्ण भी अश्वघोष को प्रथम शताब्दी में स्थित कनिष्क का धर्म गुरु मानते हैं।

15. पी0बी0काणे ने भी अश्वघोष कृत बुद्धचरित का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ही मानते हैं।

अश्वघोष सम्बन्धी उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर इनका काल प्रथम बौद्ध सम्राट प्रियदर्शी अशोक के प्रसाद तथा द्वितीय बौद्ध सम्राट कनिष्क के समकालीन मानना युक्तिरसंगत होगा। यद्यपि कनिष्क की स्थिति विवादग्रस्त अवश्य रही है किन्तु भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार अश्वघोष को ईसा के प्रथम शताब्दी में मानना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। सम्राट कनिष्क की स्थिति यदि 78 ई0 निर्णीत हो तो अश्वघोष का भी यही समय मानना उपयुक्त प्रतीत होता है। तथा बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अश्वघोष का प्रादुर्भाव 50 ई0 पूर्व और 100 ई0 के मध्य हुआ था। कनिष्क के राज्याश्रय में अश्वघोष ने अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया था।

1.3.4 महाकवि अश्वघोष की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय:-

अश्वघोष की रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। अश्वघोष बौद्ध भिक्षु और महान पण्डित थे, किन्तु वे अपने समय की काव्य शैली के प्रभाव से वंचित न रह सके। उनके द्वारा रचित दोनों ही काव्य सौन्दरनन्द एवं बुद्धचरित शास्त्रीय शैली (वैदर्भी रीति) के महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य हैं। उनकी शैली भी कालिदास के समान परिष्कृत एवं रसान्वित होने के साथ नैसर्गिक ओजस्विता एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण है। प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिग के उल्लेख के अनुसार इन्होंने कुल 19 ग्रन्थों की रचना की थी। इनके नाम के चार दार्शनिक ग्रन्थों का भी परिचय मिलता है। ये ग्रन्थ हैं।(1) सूत्रालंकार (2) महायानश्रद्धोत्पाद-संग्रह (3) वज्रसूची (4) गण्डीस्तोत्र-गाथा।

सूत्रालंकार का मूल संस्कृत रूप आज उपलब्ध नहीं है। कुमारजीव ने इसका 405 ई0 में चीनी भाषा में अनुवाद किया था, इसका फ्रेंच अनुवाद भी (पेरिस 1908) में किया गया। महायानश्रद्धोपादसंग्रह महायान शाखा का एक दार्शनिक ग्रन्थक है। इसका संस्कृत रूप अनुपलब्ध है, केवल चीनी संस्करण मिलता है। कुछ विद्वान् इसे अश्वमघोष की रचना नहीं मानते हैं। वज्रसूत्री में वर्ण व्यवस्था की आलोचना की गई है। इसका भी चीनी भाषा में अनुवाद मिलता है। इसका मूल रूप

उपलब्ध है। गण्डीकस्तोत्र गाथा में भगवान बुद्ध के संघ की स्तुीति है। इसमें केवल 29 पद हैं। किसी यूरोपियन विद्वान् ने चीनी प्रतिलिपि में इसका संस्कृत रूपान्तर किया है। इन रचनाओं के अलावा सिलवां लेबी ने अश्वघोष के नाम पर 'राष्ट्रपाल' और 'उर्वशीवियोग' नायक गेय नाटकों का भी उल्लेख किया है। अश्वघोष की उपलब्ध रचनाओं में 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरानन्द' महाकाव्य तथा शारद्वतीपुत्रप्रकरण या 'शारिपुत्रप्रकरण' के अन्त में इसके रचयिता एवं अंक संख्या आदि का स्पष्टत: उल्लेख मिलता है।

शारिपुत्रप्रकरण—

अश्वघोष प्रारम्भिक नाटककारों में अन्यतम है। इनके तीन नाटकों की अपूर्ण पाण्डु लिपियां को प्रो.त्युड्से ने खोजा। तदनुसार सुवर्णाक्षी पुत्र अश्वघोष ने इन 9 अंकों वाले नाटक की रचना की । इसमें उन घटनाओं का उल्लेख नहीं है, जिसके परिणाम स्वरुप बुद्ध द्वारा मोद्गल्यायन और शारिपुत्र को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया जाता है। इसके अन्तिम अंक में शारिपुत्र और बुद्ध के मध्य दार्शनिक वार्तालाप का वर्णन किया गया है।

सौन्दरानन्दमहाकाव्य—

यह महाकाव्य 18 सर्गों से युक्त है। सौन्दरानन्द में बुद्ध के चचेरे भाई नन्द एवं उनकी पत्नी सुन्दरी की कथा, नन्द के भिक्षु बनने का कथानक का वर्णन काव्यमय पद्धति में वर्णित है। नन्द का कुछ समय पूर्व ही विवाह हुआ था कि तब तक चारिका करते हुए गौतम बुद्ध कपिलवस्तु पहुंच गये। उन्होंने अपने पिता के महल में जाकर भिक्षा मांगी । उनकी पत्नी यशोधरा स्वेपुत्र राहुल को ही भिक्षा में दान कर दिया। साथ ही बुद्ध के चचेरे भाई नन्द ने भी उन से प्रव्रज्या लेनी चाही। नन्द की पत्नी सुन्दरी रोती बिलखती ही रह गयी। किन्तु नन्द ने बुद्ध धर्म एवं संघ की शरण ले ही लिया और वहसम्पन्न हो गया।

इस प्रकार यह दोनों ही ग्रन्थ शान्त रस से परिपूर्ण महाकाव्य हैं किन्तु कहीं कहीं यथाप्रसंग श्रंगार रस का भी परिपाक दिखाई पड़ता है। अश्वघोष सम्राट कनिष्क की राजसभा में कवी भी रहे थे। अतः उन को राजदरबार, राजनीति एवं सामाजिक नीति का पूर्ण ज्ञान था। इसी कारण इन के इन दोनों काव्यों में तत्कालीन भारतीय धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृति स्थिति परिस्थितियों का वर्णन भी प्रसंगानुसार पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अतः प्राचीन भारतीय समाज के अध्ययन की दृष्टि से इन दोनों काव्यों का अत्यधिक महत्व है।

कुछ समीक्षकों की दृष्टि में इसका कथानक बुद्धचरित से मिलता-जुलता है। जिन जिन विषयों का वर्णन बुद्धचरित में नहीं हो सका उन उन विषयों का उल्लेख इसमें में किया गया है। इसकी मूल कथा महावग्ग और निदानकथा में मिलती है। सौन्दरनन्द अट्ठारह सर्गो का महाकाव्य है। इसमें हृदय की उस उच्छृमखल प्रवृत्तियों को ठीक विपरीत दिशा में मोड़ देने की मार्मिकता का सरल शैली में वर्णन हुआ है। इसमें महाकाव्य के सभी लक्षणों का निर्वाह हुआ है। इसका प्रासंगिक संस्करण डा0 जान्सैटन द्वारा 1928 ई0 में प्रकाशित किया जा चुका है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति नेपाल महाराज के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह ग्रन्थ चीनी एवं तिब्बती भाषा में नहीं मिलता है।

बुद्धचरितम् महाकाव्य—

बुद्धचरित में गौतम बुद्ध के जन्म से उनके महापरिनिर्वाण तक का समस्त जीवन वृत्त काव्यमय पद्धति में वर्णित है। महाकवि ने उपर्युक्त दो महत्वपूर्ण काव्यों के अतिरिक्त तीन नाटकों की भी रचना की थी। जिनमें पहला था सारिपुत्रप्रकरण यह नाटक नौ अंकों में विभाजित है। इसमें सारिपुत्र एवं मोद्गल्यामयन का समस्त जीवन वृत्त का वर्णित है। यह नाटक रचना संस्कृत साहित्य में वर्तमान तक उपलब्ध सभी नाटक रचनाओं में प्राचीनतम मानी जाती है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित दो अन्य नाटकों की भी खोज एच. लूडर्स ने इस शताब्दी के आरम्भ में मध्य एशिया के तूर्फान प्रान्त में की थी। परन्तु इन दोनों ही नाटकों के आरम्भ में कुछ पत्र उपलब्ध नहीं हुए इस कारण इनका नाम नहीं ज्ञात हो सका। इनमें पहला नाटक प्रबोधचन्द्रोदय के समान रुपकात्मक है तथा दूसरा मृच्छकटिक के तुल्य वैश्य नायक प्रणयात्मक है।

1.3.5 महाकवि अश्वघोष की भाषा शैली:-

बुद्धचरित महाकाव्य में सरल व प्रांजल भाषा दिखाई देती है। वैदर्भी रीति एवं प्रसाद गुण का अच्छा प्रयोग हुआ है। पद विन्यास, भावानुकूल, प्रतीकात्मक एवं प्रभावशाली है। अश्वघोष ने लुड् लकार का विशेष प्रयोग किया है— **आर्षाण्यिचारीत्प रमव्रतानी वैराण्यरहासीच्चिरसम्भृतानि। यशांसि चापद्गुणगन्ध वन्ति रजांस्ययहर्षीन्मललिनीकराणि।**अश्वघोष के संस्कृत पदों में पाली की गन्ध मिलती है। यथा- गृहीत्वाय के लिए गृह्य, मैत्री के लिए मैत्रा आदि। अलंकार योजना में अश्वघोष ने अलंकारों का अनावश्यक प्रयोग नहीं किया है। अलंकारों का स्वभाविक प्रयोग हुआ है और चमत्कार पूर्ण घटनाओं का नियन्त्रक स्वरूप दिखाई देता है। उपमा और यमक अलंकार के प्रयोग में अश्वघोष की अधिक रूचि दिखाई देती है। अन्य उत्प्रेक्षा, परिणाम, काव्यलिंग एवं रूपकअलंकार का प्रायस: और प्रयोग किया गया है। अश्वघोष ने बुद्धचरित में कम ही छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रथम-द्वितीय सर्ग में इन्द्रवज्रा, उपेन्वज्रा, एवं उपजाति का प्रयोग हुआ है। चतुर्थ, षष्ठ्, द्वादश एवं चतुर्दश सर्ग में अनुष्टुप छन्द है। अन्य सर्गों में सामान्यता उपजाति का प्रयोग हुआ है। सर्गों के अन्त में छन्द परिवर्तन किया गया है। अश्वघोष के छन्दों में गीतितत्वों का पूर्णत: समावेश हुआ है। इनके काव्य में विद्यमान गीतात्मयकता की कीथ आदि विभिन्न विद्वानों ने प्रशंसा की है।

1.3.6 बुद्धचरितम् महाकाव्य का परिचय:-

बुद्धचरितम् महाकाव्य—

बुद्धचरित अठाईस सर्गों का महाकाव्य है, जिसमें भगवान बुद्ध के जीवन वृत्त, उपदेश तथा सिद्धान्तों को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के संस्कृत में वर्तमान में 17 सर्ग ही उपलब्ध हैं। इसके तिब्बती तथा चीनी संस्करण 28 सर्गों में उपलब्ध होते हैं। धर्मरक्ष, धर्मक्षेम या धर्माक्षर नामक एक भारतीय विद्वान ने (414-21ई0) इस काव्य का चीनी अनुवाद किया था, उसमें 28 सर्ग है और बुद्ध के निर्वाण तक का कथानक है। सातवीं या आठवीं शताब्दी में किए गए तिब्बती अनुवाद में भी 28 सर्ग हैं। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 14 वें सर्ग तक ही मिलता है। बुद्धचरित के चीनी संस्करण का पहले अंग्रेजी में तथा बाद में अन्य यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। वर्तमान में उपलब्ध बुद्धचरित की मूल प्रति के प्रथम सर्ग के आरम्भ में छात्रों तथा 25 से 39 लोग अनुपलब्ध हैं। श्री नारायण चौधरी द्वारा प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद के आधार पर श्री रामचन्द्र दास शास्त्री ने इस सात श्लोकों की रचना की है। इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग के 32 में से 112 तक की मूल

श्लोनक अनुपलब्ध हैं। उनकी रचना भी रामचन्द्र दास शास्त्री ने की है। इसी प्रकार किसी अमृतानन्द नेपाली पण्डित ने 14 सर्ग के बाद तीन सर्ग और जोड़कर इसमें 17 सर्ग का स्वेरूप उपस्थित किया। इस सम्बन्ध में यह कथन द्रष्ट व्य1 है—**अमृतानन्देन लिखितं बुद्धं काव्यं सुदुर्लभम्। चतुर्दशं पंचदशं षोडशं सप्तसदशं तथा ।।** बुद्धचरित महाकाव्य का आधार 'ललित-विस्तर' नामक बौद्ध ग्रन्थ है। सैमुअल ब्रील आदि पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार अश्वधघोष ने इस महाकाव्य की रचना 'महापरिनिर्वाणसूत्र' के आधार पर की थी। इसमें बुद्ध के समस्त उपदेशों का तथा उनके निर्वाण प्राप्त करने का सांगोपांग चित्रण हुआ है। इसके कथानक का रूप विन्यास कुछ बहुत बाल्मीकि रामायण के अनुरूप हुआ है। सिद्धार्थ का कपिलवस्तु छोड़ना, सारथी का जाना, प्रजा का विलास आदि आख्यान और वर्णन पर रामायण का पूरा प्रभाव दिखाई देता है।

जहाँ तक बुद्धचरित महाकाव्य की कथावस्तु का विषय यह है तो इसमें अश्वघोष ने गौतमबुद्ध के जीवन चरित्र को सर्वतोभावेन प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्य के प्रारम्भिक पाँच सर्गों में भगवान बुद्ध के जन्म से लेकर महाभिनिष्क्रमण तक की कथा प्रस्तुत की गई है। छठे और सातवें सर्ग में राजकुमार बुद्ध का तपोवन में प्रवेश, आठवें सर्ग में अन्त:पुर विलाप, नवें सर्ग में राजकुमार के अन्वेषण का प्रयास, दशवें सर्ग में सिद्धार्थ का मगध गमन, ग्यारहवें सर्ग में काम निन्दा बारहवें सर्ग में सर्वार्थसिद्ध का महर्षि अराड़ के पास शान्ति प्राप्ति हेतु पहुंचना, तेरहवें सर्ग में काम की पराजय और और अन्त में अन्य सर्गो में भगवान बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म के प्रसार-प्रचार हेतु दिए गए उपदेशों, शिक्षाओं और संघों की स्थापना का महाकवि द्वारा वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य के प्रथम तेरह सर्गों के नाम निम्नानुसार हैं—

(1) भगवत्प्रसूति:	**(भगवान का जन्म)**
(2) अन्त:पुरविहापुर	**(अन्त:पुर-विहार)**
(3) संवेगोत्पत्ति	**(संवेग-उत्पत्ति)**
(4) स्त्रीविघातनम्	**(स्त्री-निवारण)**
(5) अभिनिष्क्रमणम्	**(अभिनिष्क्रमण)**
(6) छन्दक-निवर्तन:	**(छन्दक-विसर्जन:)**
(7) तपोवनप्रवेश:	**(तपोवन-प्रवेश)**
(8) अन्त:पुर-विलाप:	**(अन्त पुर-विलाप:)**
(9) कुमारान्वेषणम्	**(कुमार का अन्वेरषण)**
(10) श्रेण्याभिगमनम्	**(बिम्बअसार का आगमन)**
(11) कामविगर्हणम्	**(काम-निन्दार)**
(12)अराड़दर्शनम्	**(अराड-दर्शन)**
(13) मारविजय:	**(काम पर विजय)**
(14) बुद्धत्वप्राप्ति:	**(वुद्धत्व-प्राप्ति)**

1.3.7 बुद्धचरितम् महाकाव्य का वैशिष्ट्य:-

महाकवि अश्वघोष ने बुद्धचरित महाकाव्य में यद्यपि काव्यात्मक दृष्टि से चरित्र-वर्णन को प्राथमिकता दी है तथापि इनके द्वारा जीवन की सफलता एवं ऐहिक सिद्धि का भी प्रतिपादन किया गया है। बुद्ध के आविर्भाव काल में भारतीय दर्शन में आत्मा तथा परमात्मा का पर्याप्त विवेचन हो चुका था तथा ब्रह्मवाद एवं ईश्वरवाद के अनुसार निवृत्ति का मार्ग सन्यास माना जाने लगा था। कर्म की अपेक्षा सन्यास को ही अधिक महत्व देने से गृहस्थव धर्म शिथिल हो गया था। इससे सामान्य जीवन अशान्त

एवं अनाचार से ग्रस्त हो गया था। बुद्ध ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में उहापोह न करने अपने सम्मुख मानव-जीवन में शान्ति और आनन्द का लक्ष्य रखा। अश्वघोष ने उनसे गृह-त्याग करते समय यह बात इस तरह कहलाई है— **'अमर्त प्राप्तुमितोऽद्य मे यियासा'**बुद्ध का मुख्य लक्ष्य दु:ख की निवृत्ति करना था, इसलिए उन्होंने अपने शिष्यों को दु:ख के सम्बन्ध में विस्तार से बताया और कहा कि जन्म, जरा, मरण, शौक परि देव, दौर्मनस्यह, अप्रिय संयोग, प्रिय वियोग, इच्छित अलाभ आदि सब दु:ख है। बुद्ध का इस तरह का चिन्तन वस्तुत: भारतीय दर्शन विशेषकर गीता पर आधारित प्रतीत होता है। गीता में कहा गया है–**'जन्ममृत्युजराव्याददधिदु:खदोषानुदर्शनम्'**बुद्ध का स्पष्ट मत है कि- **'यदनित्यं तद्दु:खं दु:खं तद् अनात्माम्'**अत: बुद्धत्व प्राप्ति के बाद उन्होंने दु:ख और उपशम के लिए अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया तथा अक्षय और नित्य का सेवन करने का उपदेश दिया।**'जगति क्षयधर्मके मुमुक्षुर्मृगयेऽहं शिवमक्षयं पदं तत्'**बुध के अनुसार मोक्ष प्राप्त करके करने के लिए गृहस्थ जीवन का त्याग करना जरूरी था। उनका स्पष्ट कथन था कि-**'प्रप्तोन गृहस्थै रपि मोक्षधर्म:'**उन्होंने गृहत्याग इसलिए किया था कि जन्म-मरण के भय का नाश किया जा सके। बुद्धचरितम के षष्ठ सर्ग में अश्वघोष ने इस बात का संकेत इस तरह से किया है—**जरामरणनाशार्थ प्रविष्टोबऽस्मि तपोवनम्। न खलु स्वअर्गतर्षेण नास्न्ेहेन मन्यु ना।।** बुद्ध के उपदेशों का श्रेया-मार्ग तथा अधिक प्रतिपादित हुआ है इनके लिए सम्यक संकल्प, सम्यक कर्मान्त आदि का आश्रय लिया जाना आवश्यक बताकर प्रज्ञा, शील और समाधि को निवृत्ति का मूल-मन्त्र बताया गया है। गृह-त्याग करने के उपरान्त जब शुद्धोधन बुद्ध को मनाने जाते हैं और घर लौटने के लिए कहते हैं, तो वह स्पष्ट कहते हैं कि मैं शान्ति की कामना करता हुआ सांसारिक विषयों से मुक्त रहना चाहता हूं। **'अहं हि संसारशरे विद्ध: विनि: सृत: शान्तिमवाप्नुरकाम:' बोधाय जातोऽस्मि जगद्धितार्थम्।** बुद्ध ने अपनी प्रियतमा युवती पत्नी, नवजात पुत्र, वृद्ध पिता तथा समृद्धि से परिपूर्ण राज्य का परित्याग इसलिए किया था कि अमृतत्वब किंवा निर्वाण की प्राप्ति हो। प्रारम्भ उन्होंने मध्यतम मार्ग अपनाया। यही मध्यमार्ग अपनाने के लिए उन्हों ने जन-जन को उपदेश दिया। आत्मीयजनों ने कपिलवस्तु में चलने का अनुनय किया परन्तु उन्होंने दृढ़ निश्चय से कहा कि— **'जन्मजमरणयोरदृष्ट पार: न पुन: कपिलालयं प्रवेष्टाद'** इस तरह दृढ़निश्चय बने रहने से उन्होंने मार भी विजय प्राप्त की तथा अमृतत्व की प्राप्ति के साथ संसार का भी उपकार किया। महाकवि अशकों अश्व घोष ने बुद्धचरित में अपने जीवन चरित्र से इस सभी पक्षों का सरल हृदयग्राही चित्रण किया है। हिन्दू धर्म में जो महत्व रामायण का है, बौद्ध धर्म में वही महत्व बुद्धचरित्र का है। भगवान बुद्ध के दिव्य सन्देशों से युक्त होने से इस काव्य का अत्यधिक महत्व है।

1.4 महाकाव्य के रूप में बुद्धचरितम्:-

महाकाव्य की परिभाषा और प्रमुख महाकाव्यों में उसकी व्यापकता का अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विशद आख्यानों से संवलित काव्य महाकाव्य की कोटि में रखे जाते हैं। संस्कृत नाटकों की तरह महाकाव्यों की उत्पत्ति के बीज में भी मिल जाते हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 32 वें सुक्त में इन्द्र और वृत्र के युद्ध का रोचक आख्यान इसका मूल माना जा सकता है। उक्त आख्यान के नायक की प्रशंसा की गई है और सुक्तों की शैली महाकाव्य की शैली के समान उदात्त है। इसी तरह के सुक्तों आख्यानों का शनै: शनै महाकाव्य के रूप में विकास हुआ । इस सम्बन्ध में विण्टरनित्ज ने लिखा है कि ऋग्वेद में जो अख्यान सुक्त मिलते हैं, परवर्ती काल में इन्हीं से काव्य तथा नाटक का विकास हुआ, रामायण और महाभारत का रूपविन्यास इन्हीं के आधार पर हुआ। हरिश्चन्द्रोपाख्यान,

शुन:शेष की कथा तथा सुपर्णाध्यांय नामक आख्यान भी इसी तथ्य को पुष्ट करते हैं । पुराण-काल में महाकाव्य के रूपात्मक विकास को और भी गति मिली। आर्ष-साहित्य इसका प्रमाण है।

महाकाव्यों की विकासात्मक परम्परा में महर्षि पाणिनि के 'जाम्बवतीविजय' तथा 'पातालविजय' नामक महाकाव्य का उल्लेख मिलता है, परन्तु यह दोनों प्रतियां उपलब्ध हैं केवल इनके उद्धरण यत्र-तत्र मिल जाते हैं। इसी परम्परा में बररुचि की 'शारंगधरपद्धति' और पतञ्जलि की 'कंसवध' तथा 'बलिबन्ध' नामक कृतियां भी उल्लेखनीय है, इनमें काव्यत्व का अच्छा निर्वाह हुआ है। इस तरह ई0 पू0 में 150 तक महाकाव्य परम्परा का प्रादुर्भाव हो चुका था। लौकिक साहित्य के महाकाव्यकारों में महाकवि अश्वघोष और कालिदास का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है यद्यपि इन दोनों कवियों के स्थिति काल के पौर्वापर्य को लेकर विद्वान एकमत नहीं है, तथापि प्राचीन परम्परावादी विद्वान् अश्वघोष को कालिदास से पूर्ववर्ती मानते हैं ।

1.4.1 महाकाव्य का स्वरूप:-

संस्कृत साहित्य का आगार विविध काव्य विधाओं से परिपूर्ण है। काव्य-शैली की श्रेष्ठता की दृष्टि से भारतीय साहित्य में संस्कृत के महाकाव्य सर्वोपरि माने जाते हैं और उनके रचनाकारों को महाकवि नाम से अभिहित किया जाता है। प्रारम्भ में दृश्य और श्रव्य काव्य के रूप में काव्य को दो भेद माने जाते हैं, इसमें श्रव्य काव्य का प्रथम भेद महाकाव्य कहलाता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के लिए सर्गबन्द नाम का प्रयोग किया गया है। साहित्यशास्त्र में भी **'सर्गबन्धों महाकाव्यम्'** इत्यादि लक्षण किया गया है । परन्तु अधिकतर महाकाव्यों में सर्गान्त टिप्पणी या पुष्पकाओं में सर्गबन्ध की स्थापना पर 'महाकाव्य' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। बुद्धचरित, सौन्दरनन्द, सेतुबन्ध, कुमारसम्भव, रघुवंश आदि की सर्गान्त टिप्पणी में महाकाव्य नाम का ही प्रयोग मिलता है। इससे यही ज्ञान होता है कि महाकाव्य के लिए सर्गबन्ध शब्द पर्यायवाची होने पर भी इसे 'महाकाव्य' नाम से ही अभिहित किया गया। वैसे कुछ आचार्यों के अनुसार असर्गबन्ध भी महाकाव्य रचे जाते थे।–**सर्गबन्धों महाकाव्य मिति केचित् प्रचक्षते । असर्गबन्धंमपि च महाकाव्यामितीष्यते।।** परन्तु असर्गबन्ध महाकाव्य वर्तमान में अनुपलब्ध है। महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में रचित महाकाव्यों के नाम क्रमश: 'आश्वाबन्धय' और सन्धि-बन्धट है । 'सेतुबन्ध' नामक महाकाव्य इसका प्रमाण है । सन्धि या बन्ध नाम सर्गान्त में प्रयुक्त होने पर भी इन्हे महाकाव्य नाम से ही अभिहित किया जाता है। इससे यदि सिद्ध होता है कि काव्यशास्त्रीय लक्षणानुसार आकार-प्रकार वाली काव्य रचना के लिए 'महाकाव्य' नामक रूढ़ सा हो गया है।

संस्कृतसाहित्य के लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के स्वरूप पर प्रायः सभी आचार्यों ने प्रकाश डाला है। भामह प्रथम आचार्य माने जाते हैं जिन्होंने 'महाकाव्य' की परिभाषा सर्वप्रथम प्रस्तुत की। भामह की परिभाषा के अनुसार 'सर्गबन्ध' महाकाव्य कहलाता है। महाकाव्य के सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा सर्वमान्य रही है। इनके अनुसार महाकाव्य में निम्न लक्षणों का समावेश होना चाहिए—

1- महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्ग न तो छोटे हों और बड़े, उनकी संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए।

2- महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त, देवता व कुलीन क्षत्रिय होना चाहिए। एक वंश के अनेक क्षत्रिय राजा भी इसके नायक हो सकते हैं।

3- महाकाव्य में श्रृंगार, वीर या शान्त रस में से कोई एक प्रधान होना चाहिए तथा अन्यि रसों का अंग रूप में निर्वाह होना चाहिए। नाट्य सन्धियों का भी इसमें समावेश होना चाहिए।

4- महाकाव्य की कथावस्तु पौराणिक आख्यान, ऐतिहासिक या सज्जन चरित्र पर आधारित होनी चाहिए । इसमें दूत, मन्त्र, युद्ध, प्रयाण, प्रात: काल, समुद्र, वन, पर्वत,ऋतु आदि का यथा योग्य समावेश अपेक्षित है।

5- महाकाव्यय में पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक को सफल बनाने की योजना होनी चाहिए। इसमें नायक का अभ्युदय दिखाना चाहिए।

6- महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिए।

7- प्रत्येक वर्ग में एक छन्द का प्रयोग होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन होना चाहिए। किसी एक सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

8- सर्ग की समाप्ति पर अगले सर्ग की कथा की सूचना दी जानी चाहिए।

9- महाकाव्य में दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा का विधान होना चाहिए अन्त में नायक की विजय या उत्कर्ष का उल्लेख होना चाहिए।

10- कवि निबद्ध छन्द, नायक के नाम अथवा कथानक की घटनाओं के अनुसार प्रत्येक सर्ग का नामकरण होना चाहिए । महाकाव्य का नामकरण कवि, वृत्त और नायक के नाम पर हो सकता है। काव्य वैशिष्टय को ध्यान में रखकर सामान्य लक्षणों के अनुसार महाकाव्य में कथानक, रस, छन्द अलंकार आदि का समन्वय किया जाता है और उसमें काव्यसौष्ठव पर अतिशय ध्यान रखा जाता है।

1.4.2 बुद्धचरितम् महाकाव्य का महाकाव्यत्व:-

बुद्धचरित महाकाव्य के सभी तत्व विद्यमान हैं इसमें सत् क्षत्रियवंशीय एवं दिव्यांश सेयुक्त सर्वार्थसिद्ध नायक हैं। कथानक को विभिन्न प्रकरणों में विभक्त करके विकसित किया गया है। उपवनविहार, प्रमदवन वर्णन, वन-भूमि-दर्शन, श्रवणोंपदेश, सुन्दरियों का विकृत रूप-दर्शन, महाभिनिष्क्रमण, छन्दक-कन्थक विसर्जन, तपस्वियों से वार्तालाप, अन्तपुरविलाप,मार-विजय आदि प्रकरणों में महाकाव्य के अनुरूप घटनाक्रमों का विकास दिखाई देता है। सभी विषयों का काव्योंचित शैली में वर्णन करके इस महाकाव्य के सौष्ठवकी सम्वर्धन की गई है। इसमें प्रधानतयाधर्म और दार्शनिक तत्वों का व्याख्यान होने से शान्त रस का प्राधान्य है तथा श्रृंगार, वीर, भयानक आदि रसों एवं वात्सल्य रति आदि भावों का अंग रूप में अच्छा सन्िवेश किया गया है। विभिन्न वर्णनों का सहयोग करके इसे रसपूर्ण काव्य बनाने का सफल प्रयास किया गया है। इन विशेषताओं से इसका महाकाव्यत्व स्वत: सिद्ध हो जाता है।

अश्वघोष संस्कृत साहित्य में ऐसे प्रथम महाकवि हैं जिनकी रचना में कथावस्तु को वर्णनात्मक उपादानों से अलंकृत करने का प्रयास किया गया है। वर्णन कौशल का ऐसा चमत्कार अन्यत्र नहीं मिलता है। इसमें प्राकृतिक अथवा दृश्य वर्णन सजीव और प्रभावोंत्पादक हैं। शाक्य वंशीय महाराजा शुद्धोधन की महारानी माया के गर्भ से जब सर्वार्थसिद्ध का जन्म होता है, तब वन्य प्रकृति की शान्त रूप में दिखाई देने लगती है। सर्वार्थसिद्ध का जन्म संसार की शान्ति स्थापना के लिए हुआ था। इस कारण उनके जन्म पर व्यवस्थित जगत का शान्त होना स्वाभाविक था। यह उनके दिव्यांश व्यक्तित्व का प्रभाव था। तृतीय सर्ग में संवेग उत्पत्ति का वर्णन अत्यन्त रोचक एवं स्वभाविक बन पड़ा है। अपने सम्मुख एक

रोग ग्रस्त व्यक्ति को देखकर राजकुमार सर्वार्थसिद्ध का कथन इस दृष्टि से दृष्टव्य है—**स्थूलोदर: श्वासचलच्छरीर: स्रस्तांसबाहु: कृशपाण्डुगात्र:। अम्बेति वाचं करूणं ब्रुवाण: पर: सूमाश्रित्य नर: क: एष:।।** 11वेंसर्ग में काम-निन्दा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

1.4.3 बुद्धचरितम् महाकाव्य की कथावस्तु:-

बुद्धचरित की कथावस्तु संक्षेपत: इस प्रकार है— कपिलवस्तु जनपद के शाक्यवंशीय महाराजा शुद्धोधन की महारानी माया गर्भवती अवस्था में लुम्बिनी वन में बिहार करने गई। उसी वन में महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। ज्योतिषियों ने उस बालक के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की। और कहा की यह ऋषि होगा या सम्राट बनेगा। महर्षि असित ने आकर राजा शुद्धोधन से स्पष्ट कहा कि तुम्हारा पुत्र बोध के लिए उत्पन्न हुआ है और यह नए धर्म का प्रवर्तन करेगा। तदनन्तर बालक का नाम सर्वार्थसिद्ध या सिद्धार्थ रखा गया। महर्षि असित की भविष्यवाणी का ध्यान रखकर राजा ने पुत्र को बचपन से ही सांसारिक भोग-विलास में आसक्त रहने के उपाय किए। उसे राज्यप्रसाद से बाहर नहीं आने दिया गया और उसका विवाह यशोधरा नाम की सुन्दरी से किया गया। उससे सर्वार्थसिद्ध का राहुल नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार सर्वार्थसिद्ध यौवन गृहस्थाश्रम में व्यतीत हुआ।

एक बार सर्वार्थसिद्ध विहार यात्रा के लिए निकले। और देवताओं ने राजमार्ग पर उनके सम्मुख एक अत्यन्त वृद्ध पुरुष को उपस्थित किया। जीवन में पहली बार सर्वार्थसिद्धि ने जब इस वृद्ध पुरुष को देखा, तो उसके विषय में जिज्ञासा हुई। जब उन्हें मालूम हुआ कि एक दिन सबका जीवन इस गति को प्राप्त होता है, तो वह उद्विग्न हो उठे। इसलिए वे चिन्तित होकर वापस लौट आये। कुछ दिनों बाद फिर वह मनोरंजन के लिए प्रसाद से बाहर निकले तो देवताओं ने उनके सामने रोगी व्यक्ति उपस्थित किया। सारथी ने बताया सारे संसार में कोई व्यक्ति रोग मुक्त नहीं है। इस बात से सर्वार्थसिद्ध अत्यधिक दु:खी हुए और वापस लौट आये।

तीसरी बार विहार यात्रा के लिए निकले पर सर्वार्थ सिद्ध ने देखा कि सामने एक मृत व्यक्ति की शव-यात्रा में जा रही है। उन्होंने सारथी से उसके विषय में पूछा। सारथि ने बताया कि जीवन अन्त में सभी प्राणी मृत्यु के ग्रास बनते हैं—यह जीवन विनाशी है। इस सत्य को जानकर सर्वार्थसिद्ध चिन्तित रहने लगे और उन्हें स्त्रियों का यौवन क्षणिक् लगने लगा। कुछ दिन बाद वे फिर विहार यात्रा पर निकले तो मार्ग में उनके सामने एक सन्यासी उपस्थित हुआ। परिचय पूछने पर उसने कहा कि मैं जन्म-मरण से डरकर सन्यासी बना हूं। सन्यासी का यह आदर्श सर्वार्थसिद्ध को उचित लगा। वे लौटकर आए और राजा से सन्यास लेने की अनुमति मांगी, परन्तु राजा ने अनुमति नहीं दी। राजा ने उनको गृहस्थाश्रम में रखने के लिए प्रमदाओं को नियुक्त किया परन्तु उनका सर्वार्थसिद्धि पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

तब अर्धरात्रि में सर्वार्थसिद्धि ने छन्दनक सारथि साथ लेकर, कन्थ क घोड़े पर सवार होकर नगर के बाहर प्रस्थान किया। नगर से कुछ दूर पहुंचकर उन्होंने छन्दक और कन्थक को वापस भेजा और स्वयं तपोवन में ऋषियों के पास अपनी समस्या सुलझाने पहुंचे। वहां से एक मुनि के निर्देश पर वे विन्य् क वासी अराड़ मुनी के पास मोक्ष-धर्म सीखने गये मार्ग में राजगृह में बिम्बसार ने उन्हें आधा राज्य देकर पुनः गृहस्थ बनने का प्रस्ताव सामने रखा, परन्तु सर्वार्थसिद्ध ने यह प्रस्ताव नहीं माना। अराड़ मुनि से सर्वार्थसिद्ध ने सांख्यथ-योग शिक्षा प्राप्त की, परन्तु उससे भी उन्हें पूर्ण शान्ति नहीं मिली। वहां से वे गयाश्रय गए, वहां उन्हें पांच भिक्षु मिले। तब आश्रम में उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया। तप से उन्हें लाभ नहीं हुआ तब सर्वार्थसिद्ध ने समाधि धारण की। उस अवस्था में उन्हें मार (काम) की सेना के रूप में

लौकिक प्रलोभनों की प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ा और सर्वार्थसिद्ध का मार से युद्ध हुआ। इस प्रकार समाधि के द्वारा उन्हें पूर्ण ज्ञान मिला और वे सर्वज्ञ (बुद्ध) बनकर उपदेश देने लगे।

इस प्रकार बुद्धचरित उनकी कथावस्तु पूर्ण होती है। अन्त में अश्वघोष द्वारा ग्रन्थ का प्रयोजन बतलाकर स्पष्ट किया जाता है कि यह ग्रन्थ जगत् के सुख और उपकार के लिए रचा गया है। यह रचना विषय-भोग से सन्तप्त लोगों के लिए सदुपदेश है तथा तृष्णा से दग्ध संसार के लिए सन्तोष जल का झरना है।

1.5 बुद्धचरितम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग का कथासार:-

बुद्धचरितम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग में भगवान गौतम बुद्ध की जन्म का वर्णन किया गया है। इसलिए इस सर्ग को **'भगवत्प्रसूति'**नाम से जाना जाता है। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न शुद्धोदन नाम का राजा शाक्यों में हुआ। राजा शुद्धोदन की पत्नी का नाम माया था।

राजा उस महारानी माया के साथ सानन्द सुख भोग रहे थे और तभी रानी ने लोक कल्याण के लिए गर्भ धारण किया गर्भधारण किया। गर्भधारण के पश्चात् रानी ने एक बार अपने स्वप्न में अपने अन्दर एक सफेद हाथी को प्रवेश करते हुए उसी प्रकार देखा जैसे बादल में चन्द्रमा। एक दिन रानी माया ने 'लुम्बिनी' नामक वन में निवास करने की इच्छा की। राजा महारानी के धर्म युक्त श्रेष्ठभाव को जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्र देववन सदृश लुम्बिनी वन हेतु प्रस्थान किया। वहाँ जाकर महारानी ने शुभ पुष्य नक्षत्र में जगत् कल्याण हेतु पुत्र को जन्म दिया—

ततः प्रसन्नभश्च बभूव पुष्येस्तस्याश्चे देव्या व्रतसंस्कृकतायाः।
पार्श्वात् सुतो लोकहिताय जज्ञे निर्वेदनं चैव निरामयं च ।।

सर्वगुणसम्पन्न वह बालक जन्मोपरान्त सप्तर्षि तारागण के सदृश वह सात भाग पग चला, उसके ये पग शान्त, ऋजु, समुन्नत पूर्वाभ्यनस्तब, दीर्घ, पराक्रम युक्त तथा धीरतापूर्वक थे। सिंह के सदस्य गति वाले इस बालक ने चारों ओर देखकर सार्थक स्वर में कहा— विश्वकल्याण एवं ज्ञान प्राप्ति के लिए मैंने जन्म गृहण किया है। संसार में यह मेरा अन्तिम जन्म है— **बोधाय जातोऽस्मि जगद्धितार्थमन्याति क भवोत्पत्तिरियं ममेति।।** उस बालक के सम्बन्ध में ब्राह्मणों ने राजा से कहा- हे राजन् आपका पुत्र शुभ लक्षणों से युक्त है यह बालक समय आने पर गुणों का निधान होगा और बुद्धों में ऋषिभाव को प्राप्त करने या फिर अत्यन्त ऐश्वर्य प्राप्त करेगा । राजकुमार के भविष्य की बातें जानकर राजा ने ब्राह्मणों को अत्यन्त सत्कार पूर्वक धन प्रदान किया जिससे उन ब्राह्मणों एवं ऋषियों के कथनानुसार वह बालक राजा होवे एवं वृद्धावस्था में वन जाये।

तत्पश्चात जन्मान्तर का जन्म हुआ ऐसा समझ कर सद्धधर्म की जिज्ञासा से महामुनि असित राजा शुद्धोदन के घर आये। जल एवं अर्घ्यम से पूजित महामुनि असित ने बालक को आश्चर्य से देखा। उस बालक के पैरों में चक्र के जंजाल की तरह परस्पर मिली हुई अंगुलियों से युक्त हाथ तथा पैर, बालों से युक्त भौंहे और हाथी के सदृश सूक्ष्म अण्डकोष थे—

चक्राङ्कपादं स ततो मह र्षिर्जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम्।
सोर्णभ्रुवं वारणवस्तिकोशं सविस्महयंराजसुतं ददर्श।।

महाराजा शुद्धोदन द्वारा प्रकट की गई अनेक शंकाओं को दूर करते हुए महर्षि ने कहा कि हे राजन! आपकी धारणा अन्य प्रकार की नही होनी चाहिए, जो कुछ मैंने कहा है, वह नि:सन्देह होगा। मुनि ने उस बालक के सम्बन्ध में अनेक भविष्यवाणियां कि उन्होंने कहा कि यह धर्म का राजा होगा और बुद्धत्व प्राप्त कर के मोहपाश में बँधे हुए दुख से पीड़ित एवं आश्रम जगत का बन्धन खोलेगा—

स्वैर्मोहपाशै: परिवेष्टरतस्य दु:खाभिभूतस्य निराश्रयस्यि।
लोकस्य संबुध्यश च धर्मराज: करिष्युते बन्ध:नमोक्षमेष:।।

तत्पश्चात महर्षि असित पुत्र के विषय में व्याकुल राजा के पुत्र के अवश्यम्भावी तत्व को बताकर बहुत सम्मान पूर्वक देखे जाते हुए वायुमार्ग से जैसे आए थे वैसे ही चले गये। उसके बाद पुत्र स्नेही राजा ने प्रसन्नता पूर्वक राज्य के कैदियों को मुक्त कर पुत्र का जातकर्म संस्कार कराया। राजा ने परम कल्याण हेतु जप, तप, दान आदि कार्य किए। प्रसन्नोचित्त महाराज शुद्धोदन अनेक प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित कर बृद्धजनों से अनुगत पुत्र के साथ पत्नी को पहले नगर में प्रवेश कराकर स्वयं भी नगर में प्रवेश किया।

1.6 सारांश:-

प्रस्तुत इकाई में अपने महाकवि अश्वघोष और उनकी कृति बुद्धचरितम् के विषय में विस्तृत अध्ययन किया है। बुद्धचरितम् महाकाव्य, महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त कृति है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके है कि महाकवि अश्वघोष का समय विद्वानों ने कब स्वीकार किया है। अश्वघोष के जीवन तथा उनके कृर्तृत्व पर यथा सम्भव प्रकाश डाला गया है। जिसकी सहायता से आप महाकवि के बारे में बडी सुगमता पूर्वक जानकारी पाप्त कर सकेंगे, तथा कवि विषयक अनेक समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

1.7 शब्दावली:-

शब्द	**अर्थ**
बुद्धत्व	बुद्ध की प्राप्ति
पुर्वगामी	पहले वाले
समुदय	कारण
निरोध	नाश करना
राज्याश्रय	राजा का आश्रय पाप्त होना
प्रव्रज्या	बौद्धों का एक संस्कार
वैदर्भी	रीति
प्रसाद	गुण
महाभिनिष्क्रमण	ग्रहत्याग करना
चतुष्टय	चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)

1.8 बोध प्रश्न:-

1-बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1 -बुद्धचरितम् के रचनाकार हैं ?

(क) श्री हर्ष (ख) भारवि
(ग) वाण (घ) महाकवि अश्वघोष

2 -बुद्धचरितम् किस विधा की रचना हैं ?

(क) महाकाव्य (ख) खण्डकाव्य
(ग) नाटक (घ) गद्यकाव्य

3 -बुद्धचरितम् में कितने सर्ग हैं ?

क)) बीस (ख) इक्कीस
(ग) बाईस (घ) अट्ठाईस

2- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -:

1. बुद्धचरितम् का रचनाकाल .... शताब्दी है।
2. ....साकेतस्य 'भिक्षोराचार्यभदन्तानश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिन: कृतिरियम्'
3. अश्वघोष का जन्म .... में हुआ था।
4. इत्ये षा व्युंपशान्तेये न रतये ....।
5. बुद्धचरित...........रीति का प्रबन्ध काव्य हैं।

3- निम्नलिखित वाक्यों में से सही तथा गलत का चयनकीजिए

1. सन् 420 में धर्मरक्षा ने बुद्धचरितम् का चीनी भाषा में अनुवाद किया।
2. 'बुद्धचरित' महाकाव्य का चीनी अनुभाग 7 वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था।
3. बुद्धचरितम् 28 सर्गों में विरचित महाकाव्य।
4. अशोक का समय 260 से 210 ईसा पूर्व माना जाता है।
5. अश्वघोष बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक थे।
6. बुद्धचरित पांचाली रीति का महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य हैं।
7. अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती रहे हैं।
8. डॉ0 राधाकृष्ण भी अश्वघोष को प्रथम शताब्दी में स्थित कनिष्क का धर्म गुरु मानते हैं।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1988 ई. प्रथम भाग प्राक्कथन पृ0 7-8
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 70-73
3. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास,डा0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास –डा0 कपिलदेव द्विवेदी

1.10 अन्य सहायक पुस्तकें:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. बुद्धचरितम्, महाकवि अश्वघोष

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर:-

1-बहुविकल्पीय प्रश्न

1.घ

2.क

3.घ

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति।

1. दूसरी

2. आयर्सुवर्णाक्षीपुत्रस्यौ

3. ब्राह्मण वंश

4. मोक्षार्थगर्भाकृति:

5. वैदर्भी

3. सही तथा गलत का चयन।

1. सही
2. गलत
3. सही
4. गलत
5. सही
6. सही
7. गलत
8. सही

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. महाकवि अश्वघोष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. महाकवि अश्वघोष की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. बुद्धचरितम् महाकाव्य का वैशिष्ट्य बतलाए।
4. बुद्धचरितम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग का कथासारलिखिए।

खण्ड- प्रथम, इकाई – 02
बुद्धचरितम् प्रथम सर्ग (भगवत्प्रसूति) – श्लोक संख्या– 01 से 20 तक
(भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सत्रार्द्ध, द्वितीय प्रश्न पत्र के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने बुद्धचरितम् एवं महाकवि अश्वघोष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय प्राप्त किया । प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप बुद्धचरितम् प्रथम सर्ग भगवत्प्रसूति श्लोक संख्या 01 से 20 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

बुद्धचरितम् संस्कृत साहित्य का अन्यतम महाकाव्य है। अश्वघोष द्वारा इस ग्रन्थ में महात्मा बुद्ध के जीवन चरित्र एवं उपदेशों का वर्णन किया है। इस इकाई के माध्यम से गौतम बुद्ध के जन्म का वर्णन, उनकी लीलाओं का वर्णन, शुद्धोधन एवं विद्वान् ब्राह्मणों के मध्य संवाद वर्णन एवं महाकवि अश्वघोष की भाषाशैली, प्रकृति के प्रति प्रेम का एक सुंदर चित्रण इस इकाई में किया गया है।

इस इकाई के माध्यम से आप कवि के भाषा तथा शब्द सौष्ठव को सम्यक रूप से विश्लेषित कर पायेंगे।

2. 2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन से आप—

- बुद्धचरितम् के वर्ण्य विषय से अवगत हो सकेंगे।
- राजा शुद्धोधन एवं रानी मायादेवी के चरित्र से परिचित हो सकेंगे।
- लुम्बिनी नामक वन के बारे में जान पायेंगे।
- लुम्बिनी में पुत्र जन्म के वर्णन के बारे में परिचित हो सकेंगे।
- राजा शुद्धोधन एवं रानी मायादेवी के पुत्र की शिशुलीला वर्णन को रेखांकित कर सकेंगे।

2.3 श्लोक संख्या 1 से 20 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

2.3.1 शुद्धोधन एवं रानी मायादेवी का परिचय—

इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः प्रेमाकरश्चन्द्र इव प्रजानाम् ।
शाक्येषु साकल्यगुणाधिवासः शुद्धोदनाख्यो नृपतिर्बभूव ।।1।।

अन्वयः- इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः प्रजानां चन्द्र इव प्रेमाकरः साकल्यगुणाधिवासः शूद्धोदनाख्यः नृपतिः शाक्येषु बभूव।

व्याख्या:- इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः = इक्ष्वाकुकुलसागरसमुत्पन्नः, प्रजानाम् चन्द्रः इव = जनानां शशाङ्क इव, प्रेमाकरः = स्नेहभाण्डारम्, साकल्यगुणाधिवासः = अखिलसद्गुणानां निवासस्थलम्, शुद्धोदनाख्यः = शुद्धोदन नामकः, नृपतिः = राजा, शाक्येषु = शाक्य जातिषु, बभूव = अभूत् ।

अर्थ :- इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः = इक्ष्वाकु कुल रूपी समुद्र से समुत्पन्न, प्रजानाम् चन्द्रः इव = प्रजा के लिए चन्द्र के समान, प्रेमाकरः = स्नेह का खजाना, साकल्यगुणाधिवासः = सम्पूर्ण सद्गुणों के निवासस्थान, शुद्धोदनाख्यः= शुद्धोदन नाम वाला, नृपतिः = राजा, शाक्येषु = शकों (शाक्यम क्षत्रियों) में, बभूव = हुआ।

अनुवादः- पूर्व काल में कभी इक्ष्वाकु वंश रूपी समुद्र से समुत्पन्न प्रजा के लिए चन्द्र के समान हितकर तथा समस्त सद्गुणों का आश्रय अर्थात् समस्त सद्गुणों से युक्त शाक्य क्षत्रियों में शुद्धोदन नामक राजा हुआ ।

टिप्पणी:- प्रेमाकरः = प्रेम्णः आकरः (षष्ठीदतत्पुरुषः) । इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः = इक्ष्वाकुवंश एव अर्णवः (कर्मधारयसमासः) तस्मात् सम्प्रसूतः (पंचमीतत्पुरुषः)। बभूव = भू सतायां परस्मैपदी धातु लिट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचनम्। शाक्येषु = शाक्य (सप्तमी बहुवचनम्), नृपतिः = नृणां पतिः (षष्ठीतत्पुरुषः), साकल्यगुणाधिवासः = सकलस्य भावः साकल्यम्, साकल्यगुणानाम् अधिवासः (षष्ठी तत्पुरुषः) ।

छन्दः- प्रस्तुत पद्य में इन्द्रवज्रा छन्द है ।

लक्षण:-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः" इन्द्रवज्रा छन्द् के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और अन्त में दो गुरु अक्षर होते हैं ।

अलङ्कारः-"प्रजानाम् चन्द्र इव प्रेमाकरः" पद में उपमा अलङ्कार तथा "इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः" पद में रूपक अलङ्कार है ।

आसीन्महेन्द्राद्रिसमस्य तस्य पृथ्वीव गुर्वी महिषी नृपस्य ।
मायेति नाम्नी शिवरत्नसारा शीलेन कान्त्याप्यधिदेवतेव ।।2।।

अन्वयः- महेन्द्राद्रिसमस्य नृपस्य शिवरत्नसारा पृथ्वी इव गुर्वी शीलेन कान्त्या अपि अधिदेवता इव माया इति नाम्नी महिषी आसीत् ।

व्याख्याः- महेन्द्राद्रिसमस्य = महेन्द्रपर्वत इव, नृपस्य = राज्ञः, शिवरत्नसारा = कल्याणकारिरत्नानां सारान्विता, पृथ्वी इव = धरा इव, गुर्वी = गौरवयुक्ता, शीलेन कान्त्या अपि = चरित्रेण लावण्येन चापि, अधिदेवता इव = कुलदेवतावत्, माया इति नाम्ना = 'माया' इति संज्ञया, महिषी = पट्टराज्ञी, आसीत् = अवर्तत ।

अर्थः- महेन्द्राद्रिसमस्य = महेन्द्रपर्वत के समान, नृपस्य = उस राजा का, शिवरत्नसारा = कल्याणकारी रत्नों के सार वाली, पृथ्वी इव = पृथ्वी के समान, गुर्वी = गुरुता से युक्त, शीलेन कान्त्या अपि = शील एवं कान्ति से भी, अधिदेवता इव = अधिष्ठात्री देवी के समान, माया इति नाम्ना = माया इस नाम वाली, महिषी पटरानी, आसीत् = थी।

अनुवादः- महेन्द्र पर्वत (देवराज इन्द्रन) के समान उस राजा शुद्धोदन की कल्याकारी रत्नों के सार वाली, पृथ्वी के सदृश धैर्यशालिनी, और अनुपम माया सदृश एक माया नामक प्रधान महिषी (रानी) थी।

टिप्पणी:- महेन्द्रादिसमस्य = महेन्द्र एव अद्रिः (कर्मधारयः) महेन्द्राद्रिणा समः (तृतीयातत्पुरुषः)। शिवरत्नसारा = शिवानी च तानि रत्नानि शिवरत्नानि, शिवरत्नानि साराणि यस्याः सा शिवरत्नसारा (बहुव्रीहिः)। आसीत् = अस् भुवि (सत्तायाम्) परस्मैपदी धातुः, लङ् लकार,प्रथमपुरुष एकवचनम्। कान्त्याः = कान्ति (स्त्रीलिङ्ग, तृतीया एकवचनम्)। महिषी = महिषी (स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा एकवचनम्) ।

छन्दः- प्रस्तुत पद्य में इन्द्रवज्रा छन्द है ।

लक्षण:-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

अलङ्कारः- उपमा अलङ्कार ।

2.3.2 रानी के गर्भधारण का वर्णन—

देवैरभिप्राश्र्यमनल्पभोगं सार्धं तयासौ बुभुजे नृपालः।
सा चाथ विधेव समाधियुक्ता गर्भं दधे लोकहिताय साध्वी ।।3।।

अन्वयः- असौ नृपालः तया सार्धं देवै अभिप्राश्र्यम् अनल्पभोगं बुभुजे, अथ च सा साध्वी समाधियुक्ता विद्या इव गर्भं दधे।

व्याख्याः- असौ = सः, नृपालः = राजा, तया = मायया, सार्धम् = साकम्, देवैः = सुरैः, अभिप्राश्र्यम् = प्रार्थनीयम्, अनल्पभोगम् = प्रभूतमात्रायाम् भोगविलासम्, बुभुजे = बुभोज। अथ च = तत्पश्चात्, सा =

माया, साध्वी = पतिव्रता, समाधियुक्ता विद्या इव = समाधिसहितं ध्यानयुतं ज्ञानमिव, गर्भम् = भ्रूणम्, दधे = धारयामास।

अर्थ :- असौ = उस, नृपालः = राजा ने, तया = उस (माया), सार्धम् = साथ, देवैः= देवों द्वारा, अभिप्राश्र्यम् = प्रार्थनीय, अनल्पभोगम् = प्रचूर मात्रा में, बुभुजे = भोग-विलास किया। अथ च = तत्पश्चात्, सा = वह (माया), साध्वी = पतिव्रता, समाधियुक्ता विद्या इव = समाधियुक्त विद्या के समान, गर्भम् = गर्भ को, दधे = धारण किया।

अनुवादः- उस राजा शुद्धोदन ने उस पटरानी माया के साथ देवताओं के द्वारा प्रार्थनीय प्रचूर मात्रा में दिव्यच अनुपम ऐश्वर्य का उपभोग किया। तत्पश्चात् उस पतिव्रता रानी माया ने समाधियुक्त विद्या के समान लोक कल्याण के लिए गर्भ को धारण किया।

टिप्पणीः- अनल्पभोगम् = न अल्पभोगम् (नञ् तत्पुरुषः)। समाधियुक्ता = समाधिना युक्ता (तृतीया तत्पुरुषः)। लोकहिताय = लोकानां हिताय (षष्ठी तत्पुरुषः)। बुभुजे = लिट् लकारः, प्रथमपुरुष एकवचनम्। दधे = डु धा धारणपोषणयोः उभयपदी धातुः लिट्लकारः प्रथम पुरुष एकवचनम्।

छन्दः- इस पद्य में इन्द्रवज्रा छन्द है।

लक्षणः-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

अलङ्कारः- उपमा अलङ्कार।

पूर्वं तु सा चन्द्रमिवाभ्रमध्ये स्वप्ने ददर्शात्मवपुर्विशन्तम्।
नागेन्द्रमेकं धवलं न धीरा तस्मान्निमित्ताद् विभया चकार।।4।।

अन्वयः- सा पूर्वं स्वप्ने अभ्रमध्ये चन्द्रम् इव आत्मवपुः विशन्तम् एकं धवलं नागेन्द्रं ददर्श तु धीरा तस्मात् निमित्तात् न विभयांचकार।

व्याख्याः- सा = असौ, पूर्वम् = प्राक्, स्वप्ने = स्वापे, अभ्रमध्ये = मेघमध्ये, चन्द्र इव = चन्द्रमा इव, आत्मवपुः = स्वगात्रम्, विशन्तम् = प्रविशन्तम्, एकं धवलम् = एकं श्वेतवर्णयुक्तम्, नागेन्द्रम् = ऐरावतम्, ददर्श = अपश्यत्। तु = परन्तु, धीरा = धैर्ययुक्ता, तस्मात् = अमुष्मात्, निमित्तात् = शकुनात्, न विभयांचकार = विभीषिता न बभूव।

अर्थ :- सा = वह, पूर्वम् = पहले, स्वप्ने = स्वप्न में, अभ्रमध्ये = बादल के मध्य में, चन्द्रम् इव = चन्द्रमा की तरह, आत्मवपुः = अपने शरीर में, विशन्तम् = प्रवेश करते हुए, एकम् = एक, धवलम् = सफेद, नागेन्द्रम् = गजराज को, ददर्श = देखा। तु = परन्तु, धीरा = धैर्यशालिनी, तस्मात् = उस, निमित्तात् = शकुन से, न = नहीं, विभयाञ्चकार = भयभीत हुई।

अनुवादः- उस राजमहिषी ने गर्भ धारण कारने से पहले स्वप्न में बादल के मध्य चन्द्रमा की तरह अपने शरीर में प्रवेश करते हुए एक सफेद गजराज को देखा, परन्तु धैर्य की मूर्ति (वह रानी) उस शकुन से भयभीत नहीं हुई।

टिप्पणीः- आत्मवपुः= आत्मनः वपुः (षष्ठी तत्पुरुषः), अभ्रमध्ये = अभ्रणां मध्ये (षष्ठीसतत्पुरुषः), नागेन्द्रम् = नागानाम् इन्द्रः तं नागेन्द्रम् (षष्ठीततत्पुरुषः), ददर्श = दृश् दर्शने परस्मैपदी धातु लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचनम्। विभयांचकार = वि उपसर्गपूर्वक भी भये धातु णिच् प्रत्ययः कृ धातु लिट् लकारः प्रथमपुरुष एकवचनम्।

छन्दः- इन्द्रवज्रा छन्द।

लक्षणः-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

अलङ्कारः- उपमा अलङ्कार

वंशश्रियं गर्भगतां वहन्ती प्राचीव कल्पे विरराज राज्ञी।

सा शोकमोहक्लमवर्जितापि घनं वनं गन्तुमियेष देवी ॥5॥

अन्वयः- गर्भगतां वंशश्रियं वहन्ती राज्ञी कल्पे प्राची इव विरराज, शोकमोहक्लमवर्जिता अपि सा देवी घनं वनं गन्तुम् इयेष।

व्याख्याः- गर्भगताम् = गर्भस्थिताम्, वंशश्रियम् = कुलशोभाम्, वहन्ती = धारयन्ती, राज्ञी = राजपत्नी, कल्पे = प्रातः काले, प्राची इव = पूर्वदिशा इव, विरराज = शुशुभे, शोकमोहक्लमवर्जिता अपि = विषादमोहक्लांतिरहिता अपि, सा = असौ, देवी = पतिव्रता (माया), घनम् = गहनम्, वनम् = अरण्यम्, गन्तुम् इयेष = गन्तुकामा बभूव।

अर्थ :- गर्भगताम् = गर्भ में स्थित, वंशश्रियम् = वंश की शोभा को, वहन्ती = वहन बरती हुई, राज्ञी = महारानी, कल्पे = प्रातः काल में, प्राची इव = पूर्व दिशा के समान, विरराज = सुशोभित हुई। शोकमोहक्लमवर्जिता अपि = शोक मोह एवं थकान से रहित होने पर भी, सा देवी = पतिव्रता माया ने, घनम् = सघन, वनम् = अरण्य, गन्तुम् = जाने की, इयेष = इच्छा की।

अनुवादः- उस देव सदृश राजा शुद्धोधन की रानी गर्भ में स्थित कुल की शोभा को वहन करती हुई रानी प्रातःकाल में पूर्व दिशा के समान सुशोभित हुई। शोक, मोह और क्लान्ति (थकान) से रहित होने पर भी उस पतिव्रता माया ने सघन वन में जाने की इच्छा की।

टिप्पणीः- गर्भगताम् = गर्भं गता, तां गर्भगताम् (द्वितीया तत्पुरुष।), वंशश्रियम् = वंशस्य श्रियम् इति (षष्ठी तत्पुरुषः), शोकमोहक्लमवर्जिता = शोकश्च मोहश्च क्लमश्च, शोकमोहक्लमाः (द्वन्द्व समासः), तैः शोकमोहक्लमैः वर्जिताः (तृतीया तत्पुरुषः)। गन्तुम् = गम् + तुमुन, इयेष = इष् धातु लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचनम् ।

छन्दः- प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है ।

लक्षणः- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम॥

किसी एक चरण अथवा दो चरणों में 'इन्द्रवज्रा' अथवा 'उपेन्द्रवज्रा' हो तो उपजाति छन्द होता है।

उपजाति के 13 भेद हैं।

अलङ्कारः- उपमा अलङ्कार ।

सा लुम्बिनी नाम्नि वने मनोज्ञे ध्यानप्रदे देववनादनूने ।

वासेच्छया प्राह पतिं प्रतीता सत्त्वानिभं दोहदमामनन्ति ॥6॥

अन्वयः- प्रतीता सा मनोज्ञे ध्यानप्रदे देववनात् अनूने लुम्बिनी नाम्नि वने वासेच्छया पतिं प्राह, सत्त्वानिभं दोहदम् आमनन्ति।

व्याख्याः- प्रतीता = विश्वस्ता, सा = असौ (राज्ञी), मनोज्ञे = मरोहरे, ध्यानप्रदे = ध्यानस्थ, देववनात् = नन्दनकाननात्, अनूने = अधिके (न्यूनरहिते), लुम्बिनी नाम्नि = लुम्बिनी इत्याख्ये, वासेच्छया = निवासनाकांक्षया, पतिम् = प्राणनाथम् कान्तं वा, प्राह = उक्तवती, सत्त्वानिभम् = गर्भस्थ जीवानुरूपम्, दोहदम् = गर्भिण्यभिलाषम्, आमनन्ति = स्वीकुर्वन्ति।

अर्थ :- प्रतीता = विश्वस्त, सा = उस (रानी), मनोज्ञे = सुन्दर, ध्यानप्रदे = ध्यानप्रद, देववनात् = नन्दनवन से, अनूने= कमतर न होने पर, लुम्बिनी नाम्नि = लुम्बिनी नामक वन में, वासेच्छया = निवास करने की इच्छा से, पतिम् = पति को (महाराज को), प्राह = बोली, सत्त्वानिभम् = गर्भस्थ जीव के अनुरूप, दोहदम् = गर्भकालीन इच्छा को, आमनन्ति = मानते हैं।

अनुवाद:- विश्वस्त उस रानी ने सुन्दर, ध्यानप्रद एवं नन्दनवन (इन्द्र का वन) से भी कमतर न होने वाले 'लुम्बिनी' नामक वन में निवास करने की इच्छा से अपने पति (महाराज) से कहा। क्योंकि गर्भस्थ जीव के अनुरूप गर्भ कालीन इच्छा को (लोग) मानते हैं।

टिप्पणी:- वासेच्छया = वासस्य इच्छया (षष्ठी तत्पुरुषः), देववनात् = देवस्य (इन्द्रस्य) वनात् (षष्ठी तत्पुरुषः)।

छन्द:- प्रस्तुत पद्य में इन्द्रवज्रा छन्द है।

लक्षण:-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

अलङ्कार:- अतिश्योक्ति अलङ्कार।

तस्या विदित्वा नृप आर्यभावं धर्म्यञ्च तुष्टः सुतरामनन्दत्।
इच्छाविघातादहितं विशङ्क्य तत्प्रीतये चाशु विनिर्जगाम ।।7।।

अन्वय:- तस्याः धम्र्यम् आर्यभावं च विदित्वा तुष्टः नृपः सुतराम् अनन्दत्, च इच्छाविघाताद् अहितं विशङ्क्य तत् प्रीतये च आशु विनिर्जगाम।

व्याख्या:- तस्याः = अमुष्याः, धम्र्यम् = धर्मयुक्तम्, आर्यभावम् = श्रेष्ठाशयम्, च = अपि च, विदित्वा = ज्ञात्वा, तुष्टः = सन्तुष्टः, नृपः = राजा, सुतराम् = अत्यन्तम्, अनन्दत् = अहृष्यत, च = तत्पश्चात् इति भावः, इच्छाविघातात् = वांछाविधातात् अहितम् = अमंगलम्, विशङ्क्य, तत्प्रीतये = देवीं तोषयितुम्, आशु = शीघ्रम्, विनिर्जगाम = इयाय।

अर्थ :- तस्याः उस (रानी), धम्र्यम् धर्मयुक्त, आर्यभावम् श्रेष्ठविचार को, च और, विदित्वा जानकर, तुष्टः सन्तुष्ट, नृपः राजा, सुतराम् अत्यन्त, अनन्दत् प्रसन्न हुआ, च तत्पश्चात्, इच्छाविघातात् अहितम् इच्छा के पूर्ण न होने के, विशङ्क्य आशङ्का से, तत्प्रीतये रानी माया की प्रसन्नता हेतु, आशु शीघ्र, विनिर्जगाम निकल गया।

अनुवाद:- उस रानी माया के धर्मयुक्त एवं श्रेष्ठविचारों को जानकर सन्तुष्ट राजा शुद्धोदन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इसके पश्चात् रानी की इच्छा के पूर्ण न होने की आशंका से उसको (माया को) प्रसन्न करने हेतु शीघ्र वन के लिए निकल गया।

टिप्पणी:- आर्यभावम् = आर्यश्चासौ भावः, तं आर्यभावम् (कर्मधारय समासः), अहितम् = न हितम् अहितम् (नञ् तत्पुरुषः), इच्छा विघातात् = इच्छायाः विघातः तस्मात्, तत्प्रीतये = तस्याः (राज्ञाः) प्रीतये (षष्ठी तत्पुरुषः), विनिर्जगाम = वि+निर्+गम् (लिट् प्र0यु0 एकवचनम्), तुष्टः = तुष् + क्त (पु0 एक0), विदित्वा = विद् + क्त्वा।

छन्द:- प्रस्तुत पद्य में इन्द्रवज्रा छन्द है।

लक्षण:-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

अलङ्कार:- काव्यलिंग अलंकार।

तस्मिन् वने श्रीमति राजपत्नी प्रसूतिकालं समवेक्षमाणा।
शय्यां वितानोपहितां प्रपेदे नारीसहस्त्रैरभिनन्द्यमाना।।8।।

अन्वय:- तस्मिन् श्रीमति वने नारीसहस्त्रैः अभिनन्द्यमाना प्रसूतिकालं समवेक्षमाणा राजपत्नी वितानोपहितां शय्यां प्रपेदे।

व्याख्या:- तस्मिन् = उस, श्रीमति वने = शोभान्विते कानने, नारीसहस्त्रैः = स्त्रीसहस्त्रैः, अभिनन्द्यमाना = वन्द्यमाना, प्रसूतिकालम् = प्रसवकालम्, समवेक्षमाणा = प्रतीक्षमाणा, राजपत्नी = राज्ञी (माया), वितानोपहिताम् = उल्लोचयुक्ताम्, शय्याम् = पर्यङ्कम्, प्रपेदे = ययौ।

अर्थ :- तस्मिन् = उस, श्रीमति वने = शोभायुक्त वन में, नारीसहस्त्रैः = हजारों नारियों के द्वारा, अभिनन्द्यमाना = अभिनन्दित, प्रसूतिकालम् = प्रसवसमय को, समवेक्षमाणा = प्रतीक्षा करती हुई, राजपत्नी = महारानी (माया), वितानोपहिताम् = चंदोवे से युक्त, शय्याम् = पलङ्ग पर, प्रपेदे = गई।

अनुवाद:- उस शोभायुक्त वन में हजारों नारियों के द्वारा अभिनन्दित होती हुई एवं प्रसवकाल की प्रतीक्षा करती हुई महारानी माया चंदोवे से युक्त शय्या पर गई अर्थात् लेटी।

टिप्पणी:- नारीसहस्त्रैः = नारीणां सहस्त्रम्, तैः नारीसहस्त्रैः (ष0तत्पुरुषः), प्रसूतिकालम् = प्रसूतेः कालः, तं (ष0तत्पुरुषः), राजपत्नी = राज्ञः पत्नी (ष0तत्पुरुषः),वितानोपहिताम् = वितानेन उपहिता, तां (तृ0तत्पुरुषः), श्रीमति = श्री+मतुम्+ङि (सप्तमी-एकवचनम्) ।

छन्द:- इस पद्य में उपजाति छन्द है।

लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम।।

अलङ्कार:- अनुप्रास अलङ्कार ।

2.3.3 पुत्र जन्मोत्सव का वर्णन—

ततः प्रसन्नश्च बभूव पुष्यस्तस्याश्च देव्या व्रतसंस्कृतायाः।
पश्र्वात्सुतो लोकहिताय जज्ञे निर्वेदनं चैव निरामयं च ।।9।।

अन्वय:- ततः च प्रसन्नः पुष्यः बभूव, तस्याः व्रतसंस्कृतायाः देव्याः पाश्र्वात् निर्वेदनं निरामयं चैव लोकहिताय सुतः जज्ञे।

व्याख्या:- ततः = तत्पश्चात् च, प्रसन्नः = शुभः इति भावः, पुष्यः = तिष्यनक्षत्रः, बभूव = ववृते, तस्याः = अमुष्याः (मायायाः), व्रतसंस्कृतायाः = नियमोपवासादिपरिमार्जितायाः, देव्याः = पतिव्रतायाः, पाश्र्वात् = पाश्र्वभागात्, निर्वेदनम् = पीडा रहित, निरामयम् = रोग रहित, चैव = और, लोकहिताय = जगत् कल्याणाय, सुतः = पुत्रः, जज्ञे = जनिं लेभे।

अर्थ :- ततः = तत्पश्चात् च, प्रसन्नः = शुभ, पुष्यः = पुष्य नक्षत्र (नक्षत्रों में आठवां नक्षत्र), बभूव = हुआ, तस्याः = उस (माया), व्रतसंस्कृतायाः = नियम उपवासादि से परिमार्जित, देव्याः = महारानी के, पाश्र्वात् = पाश्र्व भाग से, निर्वेदनम् = पीडा रहित, निरामयम् = रोग रहित, चैव = और, लोकहिताय = जगत् के कल्याणार्थ, सुतः = पुत्र, जज्ञे = उत्पन्न हुआ ।

अनुवाद:- उसके पश्चात् शुभ पुष्य नक्षत्र आया। उस नियम उपवासादि से परिमार्जित उस महारानी के कोख से पीड़ा एवं रोग रहित जगत् के कल्याण हेतु पुत्र उत्पन्न हुआ।

टिप्पणी:- व्रतसंस्कृतायाः - व्रतैः संस्कृता या सा व्रतसंस्कृता (बहुव्रीहिसमासः), तस्याः , लोकहिताय - लोकस्य हिताय (ष0तत्पुरुषः), प्रसन्नः- प्र+सद्+क्त (पुं0), संस्कृतायाः - सम्+कृ+क्त+टाप् (ष0 एकवचनम्), जज्ञे - जन् (लिट् प्र0पु0 एकवचनम्), निर्वेदनम् - निर्+विद्+ल्युट्।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम।।

ऊरोर्यथौर्वस्य पृथोश्च हस्तान्मान्धातुरिन्द्रप्रतिमस्य मूर्ध्नः।
कक्षोवतश्चैव भुजांसदेशात्तथाविधं तस्य बभूव जनम।।10।।

अन्वय:- यथा और्वस्य ऊरोः, पृथोः च हस्तात्, इन्द्रप्रतिमस्य मान्धातुः मूर्ध्नः कद्बक्षोवतः च भुजांसदेशात् तथाविधम् एव तस्य जन्म बभूव।

व्याख्या:- यथा = येन प्रकारेण, और्वस्य = और्व ऋषेः, ऊरोः = सक्थेः, पृथोः = पृथु नामकस्य राज्ञः, हस्तात् = करात्, इन्द्रप्रतिमस्य = इन्द्र इव, मान्धातुः = इक्ष्वाकुवंशोत्पन्नस्य राज्ञः मान्धातुः, मूर्ध्नः = मस्तकात्, कक्षोवतः = कक्षीवान् इत्यस्य च अपि च, भुजांसदेशात् = बाहुमूलात्, तथाविधम् एव = तथैव, तस्य = अमुष्य (बालकस्य), जन्म = उद्भवः, बभूव = अभूत्।

अर्थ :- यथा जैसे, और्वस्य = और्व ऋषि जो पंच प्रवरों में से एक का, ऊरोः = जंघा से, पृथोः = इक्ष्वाकुवंश के राजा पृथु का, हस्तात् = हाथ से, इन्द्रप्रतिमस्य = इन्द्रतुल्य, मान्धातुः = मान्धाता का, मूध्र्रः = मस्तक से, कक्षोवतः = कक्षीवान्, च, भुजांसदेशात् = कांख से, तथाविधम् एव = उसी प्रकार, तस्य = उसका (बालक), जन्म = जन्म, बभूव = हुआ।

अनुवाद:- जिस प्रकार और्व का जन्म जंघा से, पृथु का हाथ से, इन्द्र सदृश मान्धाता का मस्तक से तथा कक्षीवान् का काँख से हुआ, उसी प्रकार उसका (बालक का) जन्म (माता के पाश्र्व भाग से) हुआ।

टिप्पणी:- इन्द्रप्रतिमस्य - इन्द्रः इव प्रतिमा यस्य सः, इन्द्रप्रतिमः तस्य इन्द्रप्रतिमस्य (बहु0समासः), भुजांसदेशात् - भुजायाः अंशदेशात् (ष0तत्पुरुष समासः), मान्धातुः - मान्धातृ (ष0वि0ए0व0) ।

छन्दः- प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है ।

लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम॥

अलंकार:- मालोपमा अलंकार ।

क्रमेण गर्भादभिनिःसृतः सन् बभौ च्युतः खादिव योन्यजातः।

कल्पेष्वनेकेषु च भावितात्मा यः सम्प्रजानन्सुषुवे न मूढः॥11॥

अन्वय:- क्रमेण गर्भात् अभिनिःसृतः योन्यजातः सन् खात् च्युतः इव बभौ, अलेकेषु कल्पेषु च भावितात्मा यः सम्प्रजानन् सुषुवे, मूढः न (सुषुवे)।

व्याख्या:- क्रमेण = कालक्रमेण, गर्भात् = गर्भाशयात्, अभिनिःसृतः = निर्गतः, योन्यजातः = अयोनिजः, सन्, खात् = आकाशात्, च्युतः = पतितः, इव = यथा, बभौ = बभासे, अनेकेषु = बहुषु, कल्पेषु = दैवसहस्त्रयुगेषु ब्रह्मदिनेषु वा, च = अपि च, भावितात्मा = शुद्धात्मा, यः = कुमारः, सम्प्रजानन् = बुधन्, सुषुवे = जनिं लेभे, मूढः = अज्ञः, न = नहि (सुषुवे)।

अर्थ :- क्रमेण कालक्रम से, गर्भात् = गर्भ से, अभिनिःसृतः = निकला हुआ, योन्यजातः = स्वयम्भू (वह), खात् आकाश से, च्युतः = गिरा हुआ, इव = जैसे, बभौ = सुशोभित हुआ, अनेकेषु = अनेक, कल्पेषु = कल्पों में, च = और, भावितात्मा = पवित्रात्मा, यः = जो, सम्प्रजानन् = सम्यक् जानते हुए, सुषुवे = जन्म लिया, मूढः = अज्ञानी, न = नहीं।

अनुवाद:- कालक्रम से गर्भ से बाहर आया हुआ स्वयम्भू (वह राजकुमार) आकाश से गिरे हुये की भांति सुशोभित हुआ और अनेक कल्पों में पवित्रात्मा जो ज्ञानयुक्त होकर उत्पक्त हुआ, 'ज्ञानरहित' रूप में नहीं (जन्म लिया)।

टिप्पणी:- योन्यजातः - योनेः अज्ञातः (पं. तत्पुरुषः), भावितात्मा - भावितश्चासौ आत्मा (कर्मधारयः), सम्प्रजानन् - सम्+प्र+ज्ञा+शतृ, अभिनिः सृतः - अभि+निः+सृ+क्त, ।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ॥

अलङ्कार:- उत्प्रेक्षा अलंकार ।

दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज बालो रविर्भूमिमिवावतीर्णः।

तथातिदीप्तोऽपि निरीक्ष्यमाणो जहार तक्षूंषि यथा शंशाकः।।12।।

अन्वयः- यः दीप्त्या च धैर्येण च भूमिम् अवतीर्णः बालः रविः इव रराज, तथा अतिदीप्तः अपि निरीक्ष्यमाणः जहार चक्षूंषि शशांकः यथा जहार।

व्याख्याः- यः = बालकः, दीप्त्या = कान्त्या, च, धैर्येण = धीरतया, च, भूमिम् = धराम्, अवतीर्णः = समागतः, बालः = शिशुः (राजकुमारः), रविः = सूर्यः, इव = यथा, रराज = शुशुभे, तथा = च, अतिदीप्तः = अतिशोभितः, अपि, निरीक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः, चक्षूंषि = नेत्राणि, शंशाकः = चन्द्रः, यथा = इव, जहार = मुमोष।

अर्थः- यः = जो, दीप्त्या = तेज से, च, धैर्येण = धैर्यसे, च, भूमिम् = पृथ्वी पर, अवतीर्णः = आया हुआ, बालः = राजकुमार, रविः इव = सूर्य के समान, रराज = सुशोभित हुआ, तथा = और, अतिदीप्तः अपि = अत्यन्त शोभित होने पर भी, निरीक्ष्यमणः = देखा जाता हुआ, चक्षूंषि = आँखों को, शंशाकः = चन्द्रमा, यथा = जैसे, जहार = हर लेता था।

अनुवादः- जो (बालक) तेज एवं धैर्य के द्वारा पृथ्वी पर आया हुआ सूर्य की भांति सुशोभित हुआ तथा अत्यन्त तेजस्वी होने पर भी देखा जाता हुआ (वह देखने वालों के) नेत्रों को चन्द्रमा के समान हर लेता था, अर्थात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था।

टिप्पणीः- दीप्त्या - दीप्ति (तृ0वि0ए0व0), अवतीर्णः - अव+तृ+क्त, रराज - राज् (लिट् लकार प्र0पु0 ए0व0), निरीक्ष्यमाणः - निर्+ईक्ष्+णिच्+शानच् ।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

लक्षणः- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।

अलङ्कारः- उपमा एवं विरोधाभास अलंकार ।

स हि स्वगात्रप्रभया ज्वलन्त्या दीपप्रभां भास्करवन्मुमोष।
महार्हजाम्बूनदचारुवर्णो विद्योतयामास दिशश्च सर्वाः।।13।।

अन्वयः- सः महार्हजाम्बूनदचारुवर्णः हि भास्करवत् ज्वलन्त्या स्वगात्रप्रभया दीपप्रभां मुमोष, सर्वाः दिशः च विद्योतयामास।

व्याख्याः- सः = असौ (बालः), महार्हजाम्बूनदचारुवर्णः = बहुमूल्यस्वर्णसदृश मंजुलवर्णः, हि = निश्चयेन, भास्करवत् = सूर्य इव, ज्वलन्त्या = द्योतमानया, स्वगात्रप्रभया = निजशरीरकान्त्या, दीपप्रभाम् = प्रकाशम्, मुमोष = जहार, सर्वाः = समस्ताः, दिशः = ककुभः, च = अपि च, विद्योतयामास = प्रकाशांचक्रे प्रकाशितं कृतवान् वा।

अर्थ :- सः = वह (बालक), महार्हजाम्बूनदचारुवर्णः = बहुमूल्य स्वर्णसदृश सुन्दरवर्ण वाले, हि = निश्चय ही, भास्करवत् = सूर्य के समान, ज्वलन्त्या = चमकती हुई, स्वगा=प्रभया = अपने शरीर की जाज्वल्यमान कान्ति से, दीप्रप्रभाम् = दीपप्रभा को, मुमोष = चुरा लिया, सर्वाः = सभी को, दिशः = दिशाओं को, च = और, विद्योतयामास = प्रकाशित किया।

अनुवादः- बहुमूल्य स्वर्णसदृश सुन्दरवर्ण वाले उस (बालक) के निश्चय ही सूर्य के समान चमकती हुई, अपने शरीर की जाज्वल्यमान प्रभा से प्रकाश को हर लिया तथा सभी दिशाओं को प्रकाशित किया।

टिप्पणीः- महार्हजाम्बूनदचारुवर्णः - महान् चासौ अर्हः (कर्मधारयः), महार्हश्चासौ जाम्बूनदः (कर्मधारयः), महार्हजाम्बूनदस्य चारुवर्ण इव वर्णः यस्य स (बहु 0 समासः), स्वगात्रप्रभया - स्वस्य गात्रं स्वगात्रं स्वगात्रस्य प्रभा - स्वगात्रप्रभा तया स्वगात्रप्रभया (षष्ठी तत्पुरुष समासः), दीपप्रभाम् - दीपस्य प्रभाम् (ष0तत्पुरुषः), मुमोष - मुष् (लिट् प्र0पु0ए0व0), ज्वलन्त्या - ज्वल्+शतृ+ङीप्+तृ0वि0ए0व0।

छन्दः- प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द प्रयुक्त है।

लक्षणः- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।

अलङ्कारः- उपमा अलंकार ।

2.3.4 शिशुलीला का वर्णन—

अनाकुलाकुब्जसमुद्धृतानि निष्पेषवद्व्यायतविक्रमाणि ।
तथैव धीराणि तदानि सप्त सप्तर्षितारासदृशो जगाम ।14।।

अन्वयः- सप्तर्षितारासदृशः (सः) तथैव तनाकुलाकुब्जसमुद्धृतानि निष्पेषवद्व्यायतविक्रमाणि धीराणि सप्त पदानि जगाम।

व्याख्याः- सप्तर्षितारासदृशः = सप्तर्षितारागण इव (मरीचिः, अत्रिः, अंगिरस्, पुलस्त्यः, पुलहः, क्रतुः, वसिष्ठ), सः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, अनाकुलाकुब्जसमुद्धृतानि = शान्तसरलसमुन्नतानि, निष्पेषवद्व्यायतविक्रमाणि = दृढाणि दीर्घाणि पराक्रमयुक्तानि च पदनिक्षेपाणि इति भावः, धीराणि = धैर्यान्वितानि, सप्तपदानि = सप्तसंख्यकचरणानि, जगाम = ययौ।

अर्थः- सप्तर्षितारासदृशः = सप्तर्षितारागण के समान, सः, तथैव = उसी प्रकार, अनाकुलाकुब्जसमुद्धृतानि = आकुला, वक्रता से रहित उन्नत, निष्पेषवद्व्यायतविक्रमाणि = पूर्वाभ्यस्त दीर्घ पराक्रमयुक्त, धीराणि = धीरतापूर्वक, सप्त = सात, पदानि = कदम, जगाम = रखा ।

अनुवादः- सप्तर्षि तारागण के समान (वह बालक) उसी प्रकार आकुलता से रहित अर्थात् शान्त, वक्रता से रहित अर्थात् ऋजु, समुन्नत, पूर्वाभ्यस्त, दीर्घ पराक्रमयुक्त एवं धीरतापूर्वक सात पग चला।

टिप्पणीः- सप्तर्षितारासदृशः - सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः, सप्तर्षयः एव ताराः सप्तर्षिताराः (कर्मधारयः), सप्तर्षिताराणां ताराभिः वा सदृशः (षष्ठी, तृतीया वा तत्पुरुषः), अनाकुलाकुब्जसमुद्धृतानि - न आकुलः, अनाकुलः (नञ् तत्पुरुषः), न कुब्जः अकुब्जः (नञ् तत्पुरुषः), अनाकुलश्च अकुब्जश्च ताभ्यां समुद्धृतानि (द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुषः), जगाम - गाम् (लिट् प्र0 पु0 ए 0 व 0)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

बोधाय जातोऽस्मि जगद्धितार्थमन्त्या भवोत्पत्तिरियं ममेति ।
चतुर्दिशं सिंहगतिर्विलोक्य वाणीं च भव्यार्थकरीमुवाच ।15।।

अन्वयः- सिंहगतिः चतुर्दिशं विलोक्य भव्यार्थकरीं वाणीम् उवाच, (अहम्) जगद्धितार्थं बोधाय जातः अस्मि, मम इयम् अन्त्या भवोत्पत्तिः (अस्ति) इति।

व्याख्याः- सिंहगतिः = मृगेन्द्रजवः, चतुर्दिशम् = सर्वदिशम्, विलोक्य = अवलोक्य, भव्यार्थकरीम् = दिव्यं सार्थकंच, वाणीम् = वचनम्, उवाच = उवाद, जगद्धितार्थम् = लोककल्याणाय, बोधाय = ज्ञानप्राप्तये, जातः = समुत्पन्नः, अस्मि = भवामि, मम = मामकीनः, इयम् = एतत्, अन्त्या = अन्तिमा, भवोत्पत्तिः = सांसारिक जन्म अस्ति, इति = एवम्।

अर्थ :- सिंहगतिः = सिंह के समान गति वाले, चतुर्दिशम् = चहुँ ओर, विलोक्य = देखकर, भव्यार्थकरीम् = दिव्य और सार्थक, वाणीम् = वचन, उवाच = कहा, जगद्धितार्थम् = लोककल्याण के लिए, बोधाय = ज्ञानप्राप्ति के लिए, जातः = जन्म लिया, अस्मि हूँ, मम = मेरा, इयम् = यह, अन्त्या = अन्तिम, भवोत्पत्तिः = जन्म, इति = ऐसा।

अनुवादः- सिंह के समान गति वाले (उस बालक) ने चारों दिशाओं में देखकर (चारों ओर) यह भव्य एवं सार्थक वाणी कही-विश्व कल्याण एवं ज्ञान प्राप्ति के लिए मैंने जन्म ग्रहण किया है। संसार में यह मेरा अन्तिम जन्म है।

टिप्पणी:- सिंहगतिः - सिंहस्य गतिरिव, गतिर्यस्य सः (बहु0समासः), जगद्धितार्थम् - जगते हितम्, जगद्धितम् जगद्धिताय इदम् (चतु0 तत्पुरुषः), भवोत्पत्तिः - भवे उत्पत्तिः (सप्तमी तत्पुरुषः), विलोक्य - वि+लोक्+ल्यप्, उवाच - ब्रू (लिट्+प्र0पु0ए0व0)।
छन्द:- प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है।
लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।
अलङ्कार:- लुप्तोपमा अलंकार है।

खात्प्रस्रुते चन्द्रमरीचिशुभ्रे द्वे वारिधारे शिशिरोष्णवीर्ये।
शरीरसंस्पर्शसुखान्तराय निपेततुर्मूर्धनि तस्य सौमये।।16।।

अन्वय:- खात् प्रस्रुते चन्द्रमरीचिशुभ्रे शिशिरोष्णवीर्ये द्वे वारिधारे शरीरसंस्पर्शसुखान्तराय तस्य सौम्ये मूर्धनि निपेततुः।
व्याख्या:- खात् = आकाशात्, प्रस्रुते = सुस्रुवतुः, चन्द्रमरीचिशुभ्रे = शशिकिरणशुक्ले, शिशिरोष्णवीर्ये = शीतलतप्तवत्यौ, द्वे = द्विसंख्यके, वारिधारे = जलधारे, शरीरसंस्पर्शसुखान्तराय = कायस्पर्शान्तसुखाय, तस्य = बालस्य, सौम्ये = मंगल्ये, मूर्धनि = शिरसि, निपेततुः = बभ्रंशाते।
अर्थ :- खात् = आकाश से, प्रस्रुते = स्रावित हुई, चन्द्रमरीचिशुभ्रे = चन्द्रकिरण के सदृश= शुभ्रवर्णवाली, शिशिरोष्णवीर्ये = शीतल एवं उष्ण स्वभाव वाली, द्वे = दो, वारिधारे = जलधाराएँ, शरीरसंस्पर्शसुखान्तराय = शरीर स्पर्श द्वारा मानस सुख के लिए (आन्तरिक सुख के लिए), तस्य = उसके, सौम्य = सौम्य, मूर्धनि = मस्तक पर, निपेततुः = गिरी।
अनुवाद:- चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्र वर्ण वाली, शीतल एवं उष्ण स्वभाव वाली दो जल-धारायें आकाश से स्रावित हुई तथा शरीर स्पर्श द्वारा उसके मानस को सुख पहुँचाने के लिए उसके सौम्य मस्तक पर गिरी।
टिप्पणी:- चन्द्रमरीचिशुभ्रे - चन्द्रस्य मरीचयः चन्द्रमरीचयः (ष0तत्पुरुषः), चन्द्रमरीचय इव शुभ्रा या सा ते (बहुव्रीहिः), शिशिरोष्णवीर्ये - शिशिरंच उष्णंच इति शिशिरोष्णे, शिशिरोष्णं वीर्यं यस्याः सा, ते (द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहिः), वारिधारे - वारिणः धारे (ष0तत्पुरुषः), निपेततुः - नि+पत् (लिट् प्र0पु0द्वि0व0)।
छन्द:- उपजाति छन्द।
लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।

श्रीमद्विताने कनकोज्ज्वलाङ्गे वैदूर्यपादे शयने शयानम्।
यद्गौरवात् काञ्चनपद्महस्ता यक्षाधिपाः सम्परिवार्य तस्थुः।।17।।

अन्वय:- यद् गौरवात् कांचनपद्महस्ता यक्षाधिपाः श्रीमद्विताने कनकोज्ज्वलाङ्गे वैदूर्यपादे शयने शयानं सम्परिवार्य तस्थुः।
व्याख्या:- यद् = यस्य, गौरवात् = प्रभावात्, कांचनपद्महस्ता = स्वर्णकमलकरा, यक्षाधिपाः = यक्षपतयः, श्रीमद्विताने = शोभासम्पन्नोल्लोचे, कनकोज्वलाङ्गे = सुवर्णमयीशुभ्राङ्गे, सैदूर्यपादे = केतुरत्नपादे, शयने = पर्यङ्के, शयानम् = निद्रायमाणम्, (बालकम्), सम्परिवार्य = परितः, भूत्वा, तस्थुः = स्थितवन्तः।
अर्थ :- यद् = जिसके, गौरवात् = प्रभाव से, काञ्चनपद्महस्ता = स्वर्णकमल को हाथ में धारण किए हुए, यक्षाधिपाः = यक्षपतिगण, श्रीमद्विताने = सुन्दर चन्दोवा वाले (चाँदनी), कनकोज्ज्वलाङ्गे =

सुवर्णमयी उज्ज्वल अङ्गों वाले, वैदूर्यपादे = वैदूर्यमणि वाले, शयने = पलङ्गे (शय्या) पर, शयानम् = लेटे हुए, सम्परिवार्य = चारों तरफ घेर कर, तस्थुः = खड़े हुए।

अनुवाद:- जिसके प्रभाव के कारण हाथों में स्वर्णकलश लिये हुए यक्षपतिगण, शोभा-सम्पन्न चन्दोवा वाले, सुवर्णमय उज्ज्वल अंगों वाले तथा वैदूर्य मणि के पादों वाले पलंग पर लेटे हुए (बालक) को चारों तरफ से घेर कर खड़े हुए।

टिप्पणी:- कांचनपद्महस्ता - कांचनपद्महस्ते यस्य सः, कांचनपद्महस्तः ते (बहुव्रीहिः), यक्षाधिपाः - यक्षाणाम् अधिपः, ते (ष0तत्पुरुषः), कनकोज्ज्वलाङ्गे - कनकम् इव उज्ज्वलाङ्गं यस्य तत् कनकोज्ज्वलाङ्गम्, तस्मिन् (बहु0 समासः), वैदूर्यपादे - वैदूर्यपादा इव पादाः यस्य तत् वैदूर्यपादम्, तस्मिन् (बहु0), सम्परिवार्य - सम्+परि+वृ+ल्यप्, शयानम् - शी+शानच्, तस्थुः - स्था (लिट् प्र0पु0ब0व0)।

छन्द:- इस पद्य में इन्द्रवज्रा छन्द है।

लक्षण:-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"

अलङ्कार:- अनुप्रास अलंकार।

अदृश्यरूपाश्च दिवौकसः खे यस्य प्रभावात् प्रणतैः शिरोभिः।
अधारयन् पाण्डुरमातपत्रं बोधाय जेपुः परमाशिषश्च ।18।।

अन्वय:- यस्य प्रभावात् खे अदृश्यरूपाः दिवौकसः प्रणतैः शिरोभिः पाण्डुरम् आतपत्रम् अधारयन् बोधाय परमाशिषः च जेपुः।

व्याख्या:- यस्य = बालकस्य, प्रभावात् = सामर्थ्यात्, खे = आकाशे, अदृश्यरूपाः = अगोचराः, दिवौकसः = देवगणाः, प्रणतैः शिरोभिः = नतमस्तकैः, पाण्डुरम् = शुभ्रम्, आतपत्रम् = छत्रम्, अधारयन् = धृतवन्तः, बोधाय = ज्ञानप्राप्तये, परमाशिषः = हिताशंसनानि, जेपुः = जपं कृतवन्तः।

अर्थ :- यस्य = जिसके (बालक के), प्रभावात् = प्रभाव से, खे = आकाश में, अदृश्यरूपाः = अदृश्यरूप वाले, दिवौकसः = देवगण, प्रणतैः शिरोभिः = नतमस्तक होकर, पाण्डुरम् = शुभ्र, आतपत्रम् = छत्र को, अधारयन् = धारण किया, बोधाय = ज्ञानप्राप्ति के लिए, परमाशिषः = आशीर्वाद, च, जेपुः = दिये।

अनुवाद:- जिसके (बालक के) प्रभाव से आकाश में अदृश्य रूप वाले देवताओं ने नतमस्तक होकर शुभ्र छत्र को धारण किया तथा उसे श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो इस हेतु आशीर्वचनों का जप किया अर्थात् शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

टिप्पणी:- अदृश्यरूपाः - अदृश्यं रूपं येषां ते (बहु0 समासः), दिवौकसः - दिवम् ओकः येषां ते (बहु0 समासः), परमाशिषः - परमा चासै आशीः, परमाशीः ताः (कर्मधारय समासः), प्रभावात् - परमा चासै आशीः, परमाशीः ताः (कर्मधारय समासः), प्रभावात् - प्र+भू+घञ् (पं0वि0ए0व0), अधारयन् - धृ (लङ् प्र0पु0ब0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द।

लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।

महोरगा धर्मविशेषतर्षाद् बुद्धेष्वतीतेषु कृताधिकाराः।
यमव्यजन् भक्तिविशिष्टनेत्रा मन्दारपुष्पैः समवाकिरँश्च ।19।।

अन्वय:- अतीतेषु बुद्धेषु कृताधिकाराः महोरगाः धर्मविशेषतर्षात् यम् अव्यजन् च भक्तिविशिष्टनेत्राः मन्दारपुष्पैः समवाकिरन्।

व्याख्या:- अतीतेषु = भूतेषु, बुद्धेषु = तथागतेषु, कृताधिकाराः = विहिताधिकाराः, महोरगाः = विशालसर्पाः, धर्मविशेषतर्षात् = विशेषकामनायाः, यम् = बालकम्, अव्यजन् = अवीजयन्, च = अपि च, भक्तिविशिष्टनेत्राः = भक्तियुक्तलोचनाः, मन्दारपुष्पैः = स्वर्गवृक्षकुसुमैः, समवाकिरन् = विकीर्णवन्तः।
अर्थ :- अतीतेषु = पूर्व में, बुद्धेषु = बुद्धों पर, कृताधिकाराः = जिसके द्वारा किया गया था अधिकार, महोरगाः = विशाल अर्थात् बड़े सर्पों ने, धर्मविशेषतर्षात् = धर्म विशेष की कामना से, यम् = बालक को, अव्यजन् = पंखा किया, च = और, भक्तिविशिष्टनेत्रा = भक्तियुक्त नेत्रों से, मन्दारपुष्पैः = मन्दार के फूलों से, समवाकिरन् = बिखेरा।
अनुवाद:- भूतकालीन बुद्धों पर जिनका अधिकार था, ऐसे बड़े-बड़े सांपों ने धर्म विशेष की कामना से उस (बालक) के ऊपर व्यजन (पंखा) डुलाये और भक्तियुक्त नेत्रों से देखते हुए मदार के पुष्पों की वर्षा की।
टिप्पणी:- कृताधिकाराः - कृताः अधिकारः यैः ते (बहु0 समासः), महोरगाः - महान् चासौ उरगः महोरगः ते (कर्मधारय समासः), धर्मविशेषतर्षात् - धर्मविशेषस्य तर्षात् (ष0तत्पुरुषः), भक्तिविशिष्टनेत्राः - भक्त्या विशिष्टानि (तृ0 तत्पुरुषः), भक्तिविशिष्टानि नेत्राणि येषां ते (बहु0 समासः),मन्दारपुष्पैः - मन्दारस्य पुष्पाणि तैः (ष0तत्पुरुषः), अतीतेषु - अति+इण्+क्त (स0वि0ब0व0), भक्ति - भज् + क्तिन्, विशिष्ट - वि+शिष्+क्त।
छन्दः- प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है।
लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।
अलङ्कार:- काव्यलिङ्ग अलंकार।

तथागतोत्पादगुणेन तुंष्टाः शुद्धाधिवासाश्च विशुद्धसत्वाः।
देवा ननन्दुर्विगतेऽपि रागे मग्नस्य दुःखे जगतो हिताय ।।20।।

अन्वय:- तथागतोत्पादगुणेन तुष्टाः विशुद्धसत्वाः शुद्धाधिवासाः च देवाः रागे विगते अपि दुःखे मग्नस्य जगतः हिताय ननन्दुः।
व्याख्या:- तथागतोत्पादगुणेन = बुद्धोत्पत्या, तुष्टाः = प्रसन्नाः, विशुद्धसत्त्वाः = पवित्रात्मानः, शुद्धाधिवासाः = विशुद्धनिवासस्थिताः, च = अपि च, देवाः = देवगणाः, रागे = अनुरागे, विगते अपि = गते अपि, दुःखे = कष्टे, मग्नस्य = लीनस्य, जगतः = संसारस्य, हिताय = कल्याणाय, ननन्दुः = जहर्षुः।
अर्थ :- तथागतोत्पादगुणेन = महात्माबुद्ध के जन्म से, तुष्टाः = प्रसन्न होकर, विशुद्धसत्त्वाः = पवि= अन्तःकरण वाले, शुद्धाधिवासाः = शुद्ध निवास वाले, च = और, देवाः = देवगण, रागे = अनुराग, विगते = नष्ट होने पर, अपि = भी, दुःखे = कष्ट में, मग्नस्य = डूबे हुए, जगतः = संसार के, हिताय = हित के लिए, ननन्दुः = आनन्दित हुए।
अनुवाद:- तथागत (बुद्ध) के जन्म से प्रसन्न होकर, पवित्र अन्तःकरण वाले, शुद्ध निवास वाले, देवता लोग राग के नष्ट हो जाने पर भी दुःख में डूबे हुए संसार के हित के लिए (बुद्ध का जन्म हुआ है - यह जानकर) आनन्दित हुए।
टिप्पणी:- तथागतोत्पादगुणेन - तथागतस्य उत्पादः, (ष0 तत्पुरुषः) तेन गुणः तेन (तृ0तत्पुरुषः), विशुद्धसत्वाः - विशुद्धं सत्वं येषां ते (बहु0 समासः), शुद्धाधिवासाः - शुद्धः अधिवासः येषां ते (बहु0 समासः), ननन्दुः - नन्द् (लिट् प्र0पु0ए0व0), रागे - रंज्+घञ् (स0वि0ए0व0)।
छन्दः- प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है।
लक्षण:- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादो यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जाति विदमेव नाम ।।
अलङ्कार:- काव्यलिंग अलंकार।

2.4 सारांश:-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि महाकवि अश्वघोष ने बुद्धचरित्र में गौतम बुद्ध की जन्मादि घटनाओं का कैसे वर्णन किया है। साथ ही आपको लुम्बिनी वनगमन आदि प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुवासाथ ही कवि के वर्णन कौशल को जानने का भी अवसर पाप्त होगा।

2.5 शब्दावली:-

शब्द	=	अर्थ
प्रजानाम् चन्द्रः इव	=	प्रजा के लिए चन्द्र के समान
महेन्द्राद्रिसमस्य	=	महेन्द्रपर्वत के समान
शिवरत्नसारा	=	कल्याणकारी रत्नों वाली
प्राची	=	पूर्व दिशा
वन	=	जंगल
प्रसूतिकालम्	=	प्रसवसमय को
पुष्यः	=	पुष्य नक्षत्र
सप्तर्षितारासदृशः	=	सप्तर्षितारागण के समान
जगतः	=	संसार के

2.6 बोध प्रश्न:-

1- बहुविकल्पीय प्रश्नः-

क- प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में कोन सा छन्द है।

(क) इन्द्रवज्रा (ख) उपेन्द्रबज्रा
(ग) आर्या (घ) जगति
उत्तर- (क) इन्द्रवज्रा

ख- नृपतिः में कौन सा समास है।

(क) प्र0 तत्पुरूष (ख) द्वन्द्व
(ग) अव्ययीभाव (घ) ष0 तत्पुरूष
उत्तर-(घ) ष0 तत्पुरूष

ग- शुद्धोदन के वंश का क्या नाम था।

(क) इक्ष्वाकु (ख) सूर्य
(ग) चन्द्र (घ) कोइ नही
उत्तर- (क) इक्ष्वाकु

घ- महारानी के कोख से पुत्र का जन्म किस नक्षत्र में होता है।

(क) पुनर्वसु (ख) पुष्य
(ग) आर्द्रा (घ) कोइ नही
उत्तर- (ख) पुष्य

3- निम्नलिखित वाक्यों में से सही तथा गलत का चयन कीजिए

क- कनकोज्वलांगे पद में द्वन्द्व समास है।

ख- ननन्दु शब्द लिट् लकार प्र0पु0 ए0ब0 का रूप है।

उत्तर- क- गलत ख- सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1988 ई. प्रथम भाग प्राक्कथन पृ0 7-8

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 70-73

3. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कपिलदेव द्विवेदी

2.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास

3. बुद्धचरितम्, महाकवि अश्वघोष

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. द्वितीय इकाई का वैशिष्ट्य लिखिए।

2. किन्ही तीन श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

खण्ड– प्रथम, इकाई – 03
बुद्धचरितम् प्रथम सर्ग (भगवत्प्रसूति) – श्लोक संख्या – 21 से 40 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना:-

बुद्धचरितम् को संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के रूप में जाना जाता है। इसमें महाकवि अश्वघोष ने प्रकृति वर्णन के साथ ही शुभ शकुन का भी वर्णन किया है, जो उनके काव्यशास्त्रीय ज्ञान के साथ ही ज्योतिषशास्त्रीय ज्ञान को भी दर्शाता है। साथ ही पशु पक्षियों की मनोहर ध्वनियों, नदियों के जल प्रवाह, मांगलिक क्रियाएं, वेदपाठी ब्राह्मणों का राजा से संवाद नृत्योत्सव आदि विभिन्न चर्चाओं का सम्यक अध्यन इस इकाई के माध्यम से आप करेंगे।

3. 2 उद्देश्य :-

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- ❖ अश्वघोष की लेखन क्षमता से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ श्लोकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- ❖ श्लोक में प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार बता सकेंगे।
- ❖ राजा शुद्धोधन एवं रानी मायादेवी के पुत्र जन्म पर शुभ शकुन के वर्णन विषय से अवगत हो सकेंगे।
- ❖ विद्वान् ब्राह्माणों एवं राजा के संवाद से अवगत हो सकेंगे।

3.3 श्लोक संख्या 21 से 40 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

यस्य प्रसूतौ गिरिराजकीला वाताहता नौरिव भूश्चचाल।
सचन्दना चोत्पलपद्मगर्भा पपात वृष्टिर्गगनादनभ्रात् ।।21।।

अन्वयः- यस्य प्रसूतौ गिरिराजकीला भूः वाताहता नौः इव चचाल, अनभ्रात् गगनात् सचन्दना उत्पलपद्मगर्भा च वृष्टिः अनभ्रात्।

व्याख्याः- यस्य = बालकस्य, प्रसूतौ = जन्मनि, गिरिराजकीला = सुमेरुध्रुवा, भूः = पृथ्वी, वाताहता = वायुना आहता, नौः = नौका, इव = यथा, चचाल = चकम्पे, अनभ्रात् = मेघरहितात्, गगनात् = आकाशात्, सचन्दना = मलयजयुक्ता, उत्पलपद्मगर्भा च = रक्तनीलकमलमिश्रिता, वृष्टिः = वर्षा, पपात = निपपात्।

अर्थ :- यस्य = जिसके, प्रसूतौ = जन्म होने पर, गिरिराजकीला = गिरिराज रूपी कील पर स्थित, भूः = पृथ्वी, वाताहता = वायु द्वारा आहत, नौः इव = नाव के सदृश, चचाल = हिली/डोली, अनभ्रात् = बादल रहित, गगनात् = आकाश से, सचन्दना = चन्दन सहित, उत्पलपद्मगर्भा च = लाल और नीले कमल मिश्रित, वृष्टिः = वर्षा, पपात = हुई।

अनुवादः- जिसके जन्म होने पर गिरिराज (सुमेरु) रूपी कील (धुरी) पर स्थित पृथ्वी वायु द्वारा आहत नौका के समान चलायमान हो उठी तथा विना बादल के आकाश से चन्दन सहित नील एवं रक्त कमल मिश्रित वृष्टि हुई।

टिप्पणीः- गिरिराजकीला - गिरिराजः एव कीलः यस्याः सा (भूः) (बहु0 समासः), वाताहता - वातेन आहता (तृ0तत्पुरुषः), सचन्दना - चन्दनेन सहिता (अव्ययीभाव समासः), उत्पलपद्मगर्भा - उत्पलानि पद्मानि गर्भे यस्याः सा (बहु0 समासः), प्रसूतौ - प्र+सू+क्तिन् (स0 एकवचनम्),वृष्टिः - वृष्+क्तिन् (लिट् प्र0पु0ए0व0), चचाल - चल् (लिट्, प्र0पु0ए0व0), पपात - पत् (लिट्, प्र0पु0ए0व0)।

छन्दः- उपजाति छन्द।

वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः।।22।।

अन्वयः- दिव्यानि वासांसि अवपातयन्तः स्पर्शसुखाः मनोज्ञाः वाताः ववुः। स एव सूर्यः अभ्यधिकं चकाशे, अनीरितः सौम्यार्चिः अग्निः जज्वाल।

व्याख्याः- दिव्यानि = अलौकिकानि, वासांसि = वसनानि, अवपातयन्तः = वर्षयन्तः, स्पर्शसुखाः = संसर्गमोदाः, मनोज्ञाः = मनोहराः, वाताः = पवनाः, ववुः = चेलुः, सः = असौ, एव ही, सूर्यः = भास्करः, अभ्यधिकम् = अत्यधिकम्, चकाशे = जुजुते, अनीरितः = फूत्काररहितः, सौम्यार्चिः = शीतस्निग्धशिखा, अग्निः = वह्निः, जज्वाल = अज्वलत्।

अर्थ :- दिव्यानि = अलौकिक, वासांसि = वस्त्रों को, अवपातयन्तः = गिरते हुए (वर्षा करती हुई), स्पर्शसुखाः = संसर्ग सुख को देने वाली, मनोज्ञाः = मन को लुभाने वाली, वाताः = वायु, ववुः = चली, सः = वह, एव = ही, सूर्यः = भास्कर/सूर्य, अभ्यधिकम् = अत्यधिक, चकाशे = प्रकाशित हुई, अनीरितः = बिना उकसाये, सौम्यार्चिः = सौम्य ज्वाला, अग्निः = अग्नि, जज्वाल = जलने लगी।

अनुवादः- दिव्य वस्त्रों की वर्षा करती हुई स्पर्शसुख को देने वाली मनोहर पवन (वायु) बहने लगी, वहीं सूर्य अत्यधिक प्रकाशित हुआ तथा बिना उकसाये (फूँके) सौम्य ज्वालाओं वाली अग्नी जलने लगी।

टिप्पणीः- स्पर्शसुखाः - स्पर्शेण सुखाः (तृ0 तत्पुरुषः), अभ्यधिकम् - अभि+अधिकम् (यण् सन्धिः), चकाशे - काश् (लिट्, आत्मने0 प्र0पु0ए0व0), ववुः - वा (लिट्, प्र0पु0 बहुवचनम्), जज्वाल - ज्वाल् (लिट् प्र0पु0ए0व0)।

छन्दः- इन्द्रवज्रा छन्द।

अलंकारः- विभावना अलंकार।

प्रागुत्तरे चावसथप्रदेशे कूपः स्वयं प्रादुरभूत सिताम्बुः।
अन्तः पुराण्यागतविस्मयानि यस्मिन् क्रियास्तीर्थ इव प्रचक्रुः।।23।।

अन्वयः- अवसथप्रदेशे प्रागुत्तरे च सिताम्बुः कूपः स्वयं प्रादुरभूत्, यस्मिन् आगतविस्मयानि अन्तःपुराणि तीर्थ इव क्रियाः प्रचक्रुः।

व्याख्याः- अवसथप्रदेशे = निवासस्थले, प्रागुत्तरे च = पूर्वदिशायाम् उत्तरदिशायांच, सिताम्बुः = स्वच्छजलयुक्तः, कूपः = अन्धुः, स्वयम् = स्वत एव, प्रादुरभूत् = आविरभूत्, यस्मिन् = कूपे, आगतविस्मयानि = कौतुकयुक्तानि, अन्तः पुराणि = अवरोधनानि, तीर्थ इव = पवित्रस्थलम् इव, क्रियाः = कार्याणि, प्रचक्रुः = अकुर्वन्।

अर्थ :- अवसथप्रदेशे = निवासस्थल में, प्रागुत्तरे च = उत्तरपूर्वदिशा में, सिताम्बुः = स्वच्छ जल, कूपः = कुआँ, स्वयम् = अपने आप, प्रादुरभूत् = प्रकट हुआ, यस्मिन् = जिसमें, आगतविस्मयानि = आश्चर्ययुक्त होकर, अन्तःपुराणि = अन्तःपुरस्थित (स्त्रियाँ), तीर्थः इव = तीर्थ के समान, क्रिया = क्रिया, प्रचक्रुः = की।

अनुवादः- निवास स्थान के पूर्वोत्तर दिशा में स्वच्छ जल युक्त कुआँ अपने आप प्रकट हो गया, जिसमें आश्चर्यान्वित अन्तःपुर की स्त्रियाँ तीर्थस्थल के समान (स्नानादि क्रियाएँ) सम्पन्न की।

टिप्पणीः- सिताम्बु - सितम् अम्बु यस्मिन् सः (बहुव्रीहि समासः), आगतविस्मयानि - आगतं विस्मयं येषु, तानि (बहुव्रीहि समासः)। आगत - आ+गम्+क्त। अन्तःपुराण्यागतविस्मयानि - अन्तःपुराणि+आगतविस्मयानि (यण् सन्धिः)।

छन्द - इन्द्रवज्रा छन्द।

अलंकार:- उपमा अलंकार।

2.3.1 पुत्र जन्म, पर शुभ शकुन का वर्णन—

धर्मार्थिभिर्भूतगणैश्च दिव्यैस्तद्दर्शनार्थं वनमापुपूरे।
कौतूहलेनैव च पादपेभ्यः पुष्पाण्यकालेऽप्यवपातयद्भिः।।24।।

अन्वय:- तद्दर्शनार्थम् (आगतैः) धर्मार्थिभिः दिव्यैः भूतगणैः च कौतूहलेन एव अकाले अपि पदपेभ्यः पुष्पाणि अकाले अपि अवपातयद्भिः।

व्याख्या:- तद्दर्शनार्थम् = तस्य बालस्य अवलोकनार्थम् (आगतैः), धर्मार्थिभिः = धर्माभिलाषिभिः, दिव्यैः = अलौकिकैः, भूतगणैः = महापुरुषैः, च, कौतूहलेन = कौतुकेन उत्कण्ठया वा, एव, अकाले = असमये, अपि = अपि च, पादपेभ्यः = वृक्षेभ्यः, पुष्पाणि = कुसुमानि, अवपातयद्भिः = स्रंसनं कुर्वद्भिः, वनम् = काननम्, आपुपूरे = अपूरयन्।

अर्थ :- तद्दर्शनार्थम् = उसके (बालक के) दर्शन के लिए, धर्मार्थिभिः = धर्माभिलाषियों के द्वारा, दिव्यैः भूतगणैः = अलौकिक स्वभाव वाले महापुरुषों द्वारा, च = और, कौतूहलेन = उत्सुकतापूर्वक, एव = ही, अकाले = असमय में, अपि = भी, पादपेभ्यः = वृक्षों से, पुष्पाणि = फूलों को, अवपातयद्भिः = स्रंसनं कुर्वद्भिः, वनम् = काननम्, आपुपूरे = अपूरयन्।

अनुवाद:- उस बालक के दर्शन हेतु आये हुए धर्माभिलाषियों एवं अलौकिक स्वभाव वाले महापुरुषों ने उत्सुकतापूर्वक असमय में भी वृक्षों से पुष्पों को गिराते हुए वन को भर दिया।

टिप्पणी:- धर्मार्थिभिः - धर्मस्य अर्थिभिः (षष्ठी तत्पुरुषः)। तद्दर्शनार्थम् - तस्य दर्शनम् तद्दर्शनम् (षष्ठी तत्पुरुषः)। तद्दर्शनाय इदम् (चतुर्थी तत्पुरुषः)। कौतुहलेनैव - कौतूहलेन + एव (वृद्धिसन्धिः)। अवपातयद्भिः-अव + पत् + णिच् + शतृ+भिस् (तृ0वि0ब0व0)।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द।

अलंकार:- विभावना अलंकार।

भूतैरसौम्यैः परित्यक्तहिंसैर्नाकारि पीडा स्वगणे परे वा।
लोके हि सर्वाश्च विना प्रयासं रुजो नराणां शमयांबभूवुः।।25।।

अन्वय:- परित्यक्तहिंसैः असौम्यैः भूतैः स्वगणे परे वा पीडा न अकारि, लोके हि नराणां च सर्वाः च विना प्रयासम् रुजः नराणाम् शमयाम् बभूवुः।

व्याख्या:- परित्यक्तहिंसैः = त्यक्ताऽर्दनैः, असौम्यैः = क्रूरैः, भूतैः = जीवैः, स्वगणे परे वा = स्वीयसमुदाये अपरे वा, पीडा न = रुजा नहि, अकारि = चक्रे, लोके हि = जगते निश्चयेन, नराणाम् च = जनानां च, सर्वाः रुजः = सकलाः रुजाः, प्रयासं विना = प्रयत्नम् अन्तरेण, शमयाम्बभूवुः = शान्ताः अभूवन्।

अर्थ :- परित्यक्तहिंसैः = हिंसा को त्यागकर, असौम्यैः भूतैः = क्रूर प्राणियों द्वारा, स्वगणे परे वा = स्वजनों या अन्य लोगों को, पीडा न = पीड़ित नहीं, अकारि = किया गया, लोके हि = संसार में निश्चय ही, नराणाम् = लोगों का, चं = और, सर्वाः रुजः = सभी रोग, प्रयासं विना = विना प्रयास के, शमयाम्बभूवुः = शान्त हो गये।

अनुवाद:- हिंसक प्रकृति को त्यागे हुए क्रूर प्राणियों द्वारा स्वजनों या अन्य लोगों को पीड़ित नहीं किया गया और संसार में निश्चय ही लोगों के सभी रोग बिना प्रयास के शान्त हो गये।

टिप्पणी:- परित्यक्तहिंसैः - परित्यक्ता हिंसा यैः ते परित्यक्तहिंसाः, तैः (बहुव्रीहि समासः)। असौम्यैः - न सौम्यः असौम्यः, तैः (नञ् तत्पुरुषः)। भूतैः - भू+क्त (तृ0वि0ब0व0), भूतैरसौम्यैः - भूतैः+असौम्यैः (रुत्वविसर्गसन्धिः)। सर्वाश्च - सर्वाः+च (सत्वविसर्गसन्धिः)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- विभावना अलंकार ।

कलं प्रणेदुर्मृगपक्षिणश्च शान्ताम्बुवाहाः सरितो बभूवुः।
दिशः प्रसेदुर्विमले निरभ्रे विहायसे दुन्दुभयो निनेदुः।।26।।

अन्वय:- मृगपक्षिणः कलं प्रणेदुः सरितः च शान्ताम्बुवाहाः बभूवुः, दिशः प्रसेदुः निरभ्रे विमले विहायसे दुन्दुभयः निनेदुः।

व्याख्या:- मृगपक्षिणः = पशुखगाः, कलम् = मधुरध्वनिः, प्रणेदुः = अकुर्वन्, सरितः च नद्यः च, शान्ताम्बुवाहाः = धीरतोयवाहाः, बभूवुः = जाताः, दिशः = ककुभः, प्रसेदुः = निर्मलत्वं गताः, निरभ्रे = मेघरहिते, विमले = स्वच्छे निर्मले वा, विहायसे = आकाशे, दुन्दुभयः = आनकाः, निनेदुः = निनादं चक्रुः।

अर्थ :- मृगपक्षिणः = पशु और पक्षी, कलम् = मधुर ध्वनि में, प्रणेदुः = बोले (किये), सरितः = नदियाँ, च = और, शान्ताम्बुवाहाः बभूवुः = शान्तजलयुक्त बही, दिशः = दिशायें, प्रसेदुः निर्मल हो गई, निरभ्रे = बादल रहित, विमले = स्वच्छ, विहायसे = आकाश में, दुन्दुभयः = नगाड़े, निनेदुः = बजने लगे।

अनुवाद:- पशु और पक्षी मधुर स्वर में बोले, नदियाँ शान्त जल युक्त बहने लगी, दिशायें निर्मल हो गयी तथा मेघरहित स्वच्छ आकाश में लगाड़े गजे।

टिप्पणी:- मृगपक्षिणः - मृगाश्च पक्षिणश्च (इतरेतरद्वन्द्व समासः)। निरभ्रे - निर्गताः अभ्राः यस्मात् सः निरभ्रः, तस्मिन् (बहुव्रीहि समासः)। विमले - विगतं मलं यस्मात् सः विमलः, तस्मिन् (बहुव्रीहि समासः)। प्रसेदुर्विमले- प्रसेदुः + विमले (रुत्व विसर्ग सन्धिः)। दुन्दुभयो निनेदुः - दुन्दुभयः+निनेदु (उत्वविसर्गसन्धिः)। निनेदुः - नि+नद् (लिट् लकार प्र0पु0ब0व0)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

लोकस्य मोक्षाय गुरौ प्रसूते शमं प्रपेदे जगदव्यवस्थम्।
प्राप्येव नाथं खलु नीतिमन्तमेको न मारो मुदमाप लोके।।27।।

अन्वय:- लोकस्य मोक्षाय गुरौ प्रसूते अव्यवस्थम् जगत् नीतिमन्तम् नाथं प्राप्य इव शमं प्रपेदे खलु, लोके एकः मारः मुदं न आप।

व्याख्या :- लोकस्य = जगतः, मोक्षाय = उद्धाराय, गुरौ = आचार्ये, प्रसूते = समुत्पन्ने, अव्यवस्थम् जगत् = व्यतिक्रमः लोकः, नीतिमन्तम् नाथम् = नीतिज्ञं स्वामिनम्, प्राप्य = अवाप्य, इव, शमम् = शान्तम्, प्रपेदे = शान्तम् अवाप, खलु = निश्चयेन, लोके = संसारे, एकः मारः = कामदेवः, मुदं न आप = प्रहृष्टः नाभूत्।

अर्थ:- लोकस्य = जगत् के, मोक्षाय = मोक्ष के लिए, गुरौ = गुरु के, प्रसूते = जन्म होने पर, अव्यवस्थम् = अव्यवस्थित, जगत् = संसार, नीतिमन्तम् = नीतिमान्, नाथम् = स्वामी को, प्राप्य = प्राप्तकर, इव = तरह, शमम् = शान्त, प्रपेदे = हो गया, खलु = निश्चय ही, लोके संसार में, एकः = एकमा=, मारः = कामदेव, मुदम् = प्रसन्नता को, न = नहीं, आप = प्राप्त हुआ।

अनुवाद:- जगत् के मोक्ष के लिए गुरु के जन्म हो जाने पर अव्यवस्थित संसार मानो नीतिमान् स्वमी (राजा) को पाकर निश्चय ही शान्त हो गया। संसार में एक मात्र कामदेव को आनन्द प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् अन्य सभी प्राणी आनन्दित हुए।

टिप्पणी:- अव्यवस्थम् - न विद्यमाना व्यवस्था यस्मिन् तत् (जगत्) (नञ् बहुव्रीहिः)। प्राप्य - प्र+आप्+ल्यप्। आप - आप् (लिट् लकार प्र0पु0ए0व0)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलंकार ।

दिव्याद्भुतं जन्म निरीक्ष्य तस्य धीरोऽपि राजा बहुक्षेभमेतः।
स्नेहादसौ भीतिप्रमोदजन्ये द्वे वारिधारे मुमुचे नरेन्द्रः।।28

अन्वयः- तस्य दिव्याद्भुतम् जन्म निरीक्ष्य धीरः अपि राजा बहुक्षोभम् एतः। स्नेहात् असौ नरेन्द्रः भीतिप्रमोदजन्ये द्वे वारिधारे मुमुचे।

व्याख्याः- तस्य = अमुष्य, दिव्याद्भुतम् = अपूर्वालौकिकम्, जन्म = उत्पत्तिम्, निरीक्ष्य = अवलोक्य, धीरः अपि = धैर्यान्वितः अपि, राजा = नृपः, बहुक्षोभम् = अत्यधिकं विह्वलम्, एतः = सम्प्राप्तः, स्नेहात् = अनुरागात्, असौ = सः, नरेन्द्रः = भूपालः, भीतिप्रमोदजन्ये = भयानन्दोत्पन्ने, द्वे वारिधारे = द्वितयौ अश्रुधारौ, मुमुचे = मुमोच।

अर्थ :- तस्य = उसके, दिव्याद्भुतम् = दिव्य एवं अलौकिक, जन्म = जन्म को, निरीक्ष्य = देखकर, धीरः अपि = धैर्यवान् होने पर भी, राजा = राजा, बहुक्षोभम् = अत्यधिक क्षुब्ध, एतः = हुआ, स्नेहात् = स्नेह से, असौ = वह, नरेन्द्रः = राजा, भीतिप्रमोदजन्ये = भय एवं आनन्द से उत्पन्न, द्वे वारिधारे = दो अश्रुधारायें, मुमुचे = छोड़ी (प्रवाहित की)।

अनुवादः- उसका दिव्य एवं अद्भुत जन्म को देखकर राजा धैर्यवान् होने पर भी अत्यन्त क्षुब्ध हुआ तथा स्नेहवश उसने भय एवं आनन्द से उत्पन्न दो अश्रु-धाराएँ प्रवाहित की।

टिप्पणीः- दिव्याद्भुतम् - दिव्यं च अद्भुतं च (द्वन्द्व समासः)। भीतिप्रमोदजन्ये - भीतिश्च प्रमोदश्च भीतिप्रमोदौ (द्वन्द्व समासः), ताभ्यां जन्ये (तत्पुरुष समासः)। नरेन्द्रः - नराणाम् इन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुषः)।

छन्दः- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अमानुषीं तस्य निशम्य शक्तिं माता प्रकृत्या करुणार्द्रचित्ता ।
प्रीता च भीता च बभूव देवी शीतोष्णमिश्रेव जलस्य धारा ।।29।।

अन्वय:- तस्य अमानुषीं शक्तिं निशम्य प्रकृत्या करुणार्द्रचित्ता माता देवी शीतोष्णमिश्रा जलस्य धारा इव प्रीता च भीता च बभूव।

व्याख्या:- तस्य = अमुष्य (शिशोः), अमानुषीम् = अमानवीम्, शक्तिम् = सामथ्र्यम्, निशम्य = आकण्र्य श्रुत्वा वा, प्रकृत्या = स्वभावेन, करुणार्द्रचित्ता = दयार्द्रमानसा, माता = जननी, देवी = महाराज्ञी, शीतोष्णमिश्रा = शीतलतप्तसंमिश्रिता, जलस्य = वारिणः, धारा इव = धारावत्, प्रीता च भीता च = मुदिता च भीषिता च, बभूव = अभवत्।

अर्थ :- तस्य = उसकी (बालक) , अमानुषीम् = आमनवी, शक्तिम् = शक्ति को, निशम्य = सुनकर, प्रकृत्या = स्वभाव से, करुणार्द्रचित्ता = करुणामयहृदय वाली, माता देवी = माता महारानी, शीतोष्णमिश्रा = शीतल एवं उष्ण मिश्रित, जलस्य = जल की, धारा इव = धारा के समान, प्रीता च भीता च = प्रसन्न एवं भयभीत, बभूव = हुई।

अनुवाद:- उस बालक की अमानवी शक्ति को सुनकर स्वभाव से ही करुण हृदय वाली माता महारानी माया शीतल तथा उष्ण जल से मिश्रित धारा के समान प्रसन्न एवं भयभीत हुई।

टिप्पणी:- अमानुषीम् - अविद्यमाना मनुष्यां या सा अमानुषी, ताम् (नञ् बहुव्रीहिः)। करुणार्द्रचित्ता - करुणया आर्द्रं चित्तं यस्याः सा करुणार्द्रचित्ता (बहुव्रीहिः)। शीतोष्णमिश्रा - शीतं च उष्णं च शीतोष्णे (द्वन्द्व समासः), ताभ्यां मिश्रा (तृ0तत्पुरुषः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उपमा एवं काव्यलिंग अलंकार ।

निरीक्षमाणा भयहेतुमेव ध्यातुं न शेकुः वनिताः प्रवृद्धाः।

पूताश्च ता मङ्गलकर्म चक्रुः शिवं ययाचुः शिशवे सुरौघान्।।30।।

अन्वय:- प्रवृद्धाः वनिताः भयहेतुमेव निरीक्षमाणाः ध्यातुं न शेकुः, पूताः ताः मङ्गलकर्म चक्रुः, शिशवे च सुरौघान् शिवं ययाचुः।

व्याख्या:- प्रवृद्धाः = स्थविराः, वनिताः = महिलाः, भयहेतुमेव = भयकारणमेव, निरीक्षमाणाः = अवलोक्यमानाः, ध्यातुम् = ध्यानं दातुम्, न शेकुः = न शक्तवत्यः, पूताः = शुद्धाः, ताः = महिलाः, मङ्गलकर्म = मङ्गलाचरणम्, चक्रुः = अकुर्वन्, शिशवे च = स्तनन्धयाय च, सुरौघान् = देवगणान्, शिवम् = मङ्गलम् कल्याणं वा, ययाचुः = ययाचिरे।

अर्थ :- प्रवृद्धाः = अत्यन्तवृद्ध, वनिताः = स्त्रियाँ, भयहेतुमेव = भय का ही कारण, निरीक्षमाणाः = देखती हुई, ध्यातुम् = ध्यान करने में, न शेकुः = असमर्थ रही, पूताः = पवि=, ताः वे (स्त्रियाँ), मङ्गलकर्म = माङ्गलिक कर्म, चक्रुः = की (किया), शिशवे = बालक के लिये (बच्चे), च = और, सुरौधान् = देवगणों से, शिवम् = कल्याण की, ययाचुः = याचना की।

अनुवाद:- अत्यन्त वृद्धि स्त्रियाँ भय के ही कारण को देखती हुई, ध्यान करने में असमर्थ रहीं। पवित्र होकर उन महिलाओं ने मांगलिक क्रियायें की और शिशु के कल्याण हेतु देवगण से याचना की।

टिप्पणी:- भयहेतुम्- भयस्य हेतुः, ते (ष0 तत्पुरुषः)। मङ्गलकर्म - मङ्गल च तत् कर्म (कर्मधारय समासः)। सुरौघान् - सुराणाम् ओघः, तान् (षष्ठी तत्पुरुषः)। ययाचुः - याच् (लिट् प्र0पु0ब0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार है।

2.3.2 ब्राह्मणों एवं राजा का संवाद वर्णन—

विप्राश्च ख्याताः श्रुतशीलवाग्भिः श्रुत्वा निमित्तानि विचार्य सम्यक्।
मुखैः प्रफुल्लैश्चकितैश्च दीप्तैर्भीतं प्रसन्नं नृपमेत्य प्रोचुः।।31।।

अन्वय:- श्रुतशीलवाग्भिः ख्याताः विप्राः निमित्तानि श्रुत्वा सम्यक् विचार्य प्रफुल्लैः चकितैः दीप्तैः च मुखैः भीतं प्रसन्नं च नृपम् एत्य प्रोचुः।

व्याख्या:- श्रुतशीलवाग्भिः = शास्त्रचरित्रवाणीभिः, ख्याताः = प्रसिद्धाः, विप्राः = ब्राह्मणाः, निमित्तानि = शकुनानि, श्रुत्वा = आकण्र्य, सम्यक् विचार्य = सुष्ठु विचिन्त्य, प्रफुल्लैः = स्मितैः, चकितैः = आश्चर्यान्वितैः, दीप्तैः = प्रकाशमानैः, च, मुखैः = आननैः, भीतम् = त्रस्तम्, प्रसन्नं च = प्रहष्टं च, नृपम् = राजानम्, एत्य = आगत्य, प्रोचुः = बभाषिरे।

अर्थ :- श्रुतशीलवाग्भिः = शास्त्रज्ञान, शील एवं वाणी के द्वारा, ख्याताः = प्रसिद्ध, विप्राः = ब्राह्मणों ने, निमित्तानि = शकुनों को, श्रुत्वा = सुनकर, सम्यक् विचार्य = ठीक से सोचकर, प्रफुल्लैः = प्रफुल्लित, चकितैः = आश्चर्यान्वित, मुखैः = मुखमण्डलों के द्वारा, भीतम् = भयभीत, च = और, प्रसन्नम् = प्रसन्न, नृपम् = राजा के समीप, एत्य = जाकर, प्रोचुः = कहा।

अनुवाद:- शास्त्रज्ञ, चरित्रवान् एवं वाणी के द्वारा प्रसिद्ध ब्राह्मणों ने शकुनों को सुनकर, उस पर अच्छी तरह विचार करके प्रफुल्लित, आश्चर्यान्वित तथा दीप्त मुखमण्डल से भयभीत और प्रसन्न राजा के समीप जाकर कहा-

टिप्पणी:- श्रुतशीलवाग्भिः - श्रुतं च शीलं च वाक् च- श्रुतशीलवाचः, ताभिः (द्वन्द्वः)। प्रोचुः - प्र + ब्रू (लिट् प्र0पु0ब0व0)।

छन्द- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- विरोधाभास अलंकार ।

शमेप्सवो ये भुवि सन्ति सत्वाः पुत्रं विनेच्छन्ति गुणं न कंचित्।

त्वत्पुत्र एषोऽस्ति कुलप्रदीपो नृत्योत्सवं त्वद्य विधेहि राजन्।।32।।

अन्वय:- राजन्! भुवि ये शमेप्सवः सत्वावः सन्ति (ते) पुत्रं विना कंचित् गुणं न इच्छन्ति, एषः कुलप्रदीपः अस्ति, तु अद्य नृत्योत्सवं विधेहि।

व्याख्या:- राजन्! = हे नृप!, भुवि = धरायाम्, ये = जनाः प्राणिनः वा, शमेप्सवः = शान्त्यभिलाषिणः, सत्वाः = प्राणिनः, सन्ति = वर्तन्ते (ते), पुत्रं विना = सुतं विना, कंचित् = कमपि, गुणम् = सद्गुणम्, न इच्छन्ति = न वांछन्ति, एषः = अयम्, कुलप्रदीपः = वंशदीपकः, अस्ति = वर्तते, तु = तर्हि, अद्य = साम्प्रतम्, नृत्योत्सवम् = नृत्योत्सवायोजनम्, विधेहि = विधत्स्व।

अर्थ :- राजन्! = हे राजा!, भुवि = पृथ्वी पर, ये = जो, शमेप्सवः = शान्ति चाहने वाले, सत्वाः = प्राणी, सन्ति = हैं, पुत्रं विना = पु= के बिना, कंचित् = किसी, गुणम् = गुण को, न = नहीं, इच्छन्ति = इच्छा करते हैं, एषः = यह, कुलप्रदीपः = कुल का दीपक, अस्ति = है,तु = तो, अद्य = आज, नृत्योत्सवम् = नृत्य उत्सव, विधेहि = कीजिए।

अनुवाद:- हे महाराज्! पृथ्वी पर जो प्राणी शान्ति चाहते हैं वे पुत्र के अतिरिक्त किसी और गुण को नहीं चाहते। आपका यह पुत्र कुल का दीपक है, अतः आज तो नृत्योत्सव की तैयारी कीजिए।

टिप्पणी:- शमेप्सवः - शमम् ईप्सुः, ते (द्वितीया तत्पुरुषः)। नृत्योत्सवम् - नृत्यम् एव उत्सवः (कर्मधारय समासः)। विनेच्छन्ति - विना+इच्छन्ति (गुणसन्धिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

विहाय चिन्तां भव शान्तचित्तो मोदस्व मंशस्तव वृद्धिभागी ।
लोकस्य नेता तव पुत्रभूतो दुःखार्दितानां भुवि एष त्राता ।।33।।

अन्वय:- चिन्तां विहाय शान्तचित्तः भव, मोदस्व, तव वंशः वृद्धिभागी, तव पुत्रभूतः एषः लोकस्य नेता, भुवि दुःखार्दितानां त्राता।

व्याख्या:- चिन्ताम् = मनस्तापम्, विहाय = त्यक्त्वा, शान्तचित्तः = संयमशीलः, भव = वर्तस्व, मोदस्व = आनन्दम् अनुभव, तव = भवतः, वंशः = कुलम्, वृद्धिभागी = समृद्धिशाली (भवतु), तव = भवतः, पुत्रभूतः = पुत्रत्वेन, एषः = अयम्, लोकस्य नेता = प्रजायाः जगतः वा नायकः,भुवि = पृथिव्याम्, दुःखार्दितानाम् = पीडितजनानाम्, त्राता = रक्षको भविष्यति।

अर्थ :- चिन्ताम् = चिन्ता को, विहाय = त्यागकर, शान्तचित्तः = शान्तचित्त वाले, भव = हो जाओ, मोदस्व = आनन्द करो, तव = तुम्हारा, वंशः = कुल, वृद्धिभागी = उन्नतशील होगा, तव = तुम्हारा, पु=भूतः = पु=रूप में उत्पन्न, एषः = यह, लोकस्य नेता = जगत् के नेता, भुवि = पृथ्वी पर, दुःखार्दितानाम् = दुःखों से पीड़ितों का, त्राता = रक्षक होगा।

अनुवाद:- चिन्ता मुक्त होकर शान्तचित्त हो जाओ, आनन्द करो। आपका वंश उन्नतशील होगा। तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न यह बालक लोक (संसार) नेता अर्थात् नेतृत्व करने वाला और पृथ्वी पर दुःखी जनों का रक्षक होगा।

टिप्पणी:- शान्तचित्तः - शान्तं चित्तं यस्य सः (बहुव्रीहि समासः)। दुःखार्दितानाम् - दुःखेभ्यः अर्दिताः, तेषां (पंचमी तत्पुरुषः)। मोदस्व - मुद् (लोट् म0पु0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार ।

दीपप्रभोऽयं कनकोज्ज्वलाङ्गः सुलक्षणैर्यस्तु समन्वितोऽस्ति।
निधिर्गुणानां समये स गन्ता बुद्धर्षिभावं परमां श्रियं वा।।34।।

अन्वय:- तु अयं यः दीपप्रभः कनकोज्ज्वलाङ्गः सुलक्षणैः समन्वितः, स समये गुणानां निधिः बुद्धर्षिभावं परमां श्रियं गन्ता।

व्याख्या:- तु = तर्हि, अयम् = एषः, यः = बालः, दीपप्रभः = दीपप्रकाशः, कनकोज्ज्वलाङ्गः, सुलक्षणैः = सुलक्ष्मयुतैः, समन्वितः = युक्तोऽस्ति, सः = असौ, समये = काले, गुणानाम् निधिः = गुणनिधानम्, बुद्धर्षिभावम् = बुद्धेषु मुनिभावं, परमां श्रियम् = उत्तमां समृद्धिम्, गन्ता = आप्ता।

अर्थ :- तु = तो, अयम् = यह, यः = जो, दीपप्रभः = दीपक के समान कान्ति वाला, कनकोज्ज्वलाङ्गः = स्वर्ण के (सोने के) समान उज्ज्वल अंगों वाला, सुलक्षणैः समन्वितः = शुभ लक्षणों से युक्त, सः = वह, समये = समय पर, गुणानां निधिः = गुणों के निधान, बुद्धर्षिभावम् = बुद्धों में ऋषिभाव को, परमाम् = उत्तम्, श्रियम् = समृद्धि को, गन्ता = प्राप्त करेगा।

अनुवाद:- तो फिर यह जो दीप के समान प्रकाशमान स्वर्ण की भाँति उज्ज्वल अंगों वाला तथा शुभ लक्षणों से युक्त है। वह समय आने पर उन गुणों का निधान होगा एवं बुद्धों में ऋषिभाव को या अत्यन्त श्री (ऐश्वर्य) को प्राप्त होगा।

टिप्पणी:- दीपप्रभः - दीप इव प्रभा यस्य सः दीपप्रभः (बहुव्रीहिः)। कनकोज्ज्वलाङ्ग - उज्ज्वलानि अङ्गानि (कर्मधारयः), कनकम् इव उज्ज्वलाङ्गानि यस्य सः (बहुव्रीहिः)। बुद्धर्षिभावम् - ऋषेः भावं (ष0तत्पुरुषः), बुद्धेषु ऋषिभावं (स0तत्पुरुषः)।

छन्द - उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

इच्छेदसौ वै पृथिवीश्रियं चेन्न्यायेन जित्वा पृथिवीं समग्राम्।
भूपेषु राजेत यथा प्रकाशो ग्रहेषु सर्वेषु रवेर्विभाति।।35।।

अन्वय:- चेत् असौ पृथिवीश्रियम् इच्छेत् (तर्हि) वै न्यायेन समग्रां पृथिवीं जित्वा भूपेषु (तथा) राजेत यथा सर्वेषु ग्रहेषु रवेः प्रकाशः विभाति।

व्याख्या:- चेत् = यदि, असौ = अयम्, पृथिवीश्रियम् = भूसमृद्धिम्, इच्छेत् = ईहेत, (तर्हि), वै = निश्चयेन, न्यायेन = नयेन, समग्रां पृथिवीम् = सम्पूर्णां धराम्, जित्वा = विजित्य, भूपेषु = नृपेषु, (तथा), राजेत = भासेत्, यथा = येन प्रकारेण, सर्वेषु ग्रहेषु = समग्रेषु नवग्रहेषु, रवेः प्रकाशः = सूर्यस्य आलोकः, विभाति = भासते।

अर्थ :- चेत् = यदि, असौ = यह, पृथिवीश्रियम् = पृथ्वी के ऐश्वर्य अर्थात् सम्पदा की, इच्छेत् = इच्छा करे, वै = निश्चय ही, न्यायेन = न्याय से, समग्रां पृथिवीम् = सम्पूर्ण पृथ्वी को, जित्वा = जीतकर, भूपेषु = राजाओं में, राजेत = शोभित होगा, यथा = जिस प्रकार, सर्वेषु ग्रहेषु = सभी ग्रहों में, रवेः = सूर्य का, प्रकाशः = प्रकाश, विभाति = सुशोभित होता है।

अनुवाद:- यदि यह बालक पृथ्वी की सम्पदा अर्थात् राज्य की इच्छा करेगा तो निश्चय ही न्याय से सम्पूर्ण धरा को जीतकर राजाओं में उसी तरह सुशोभित होगा जिस तरह सभी ग्रहों पर सूर्य का प्रकाश शोभित होता है।

टिप्पणी:- पृथिवीश्रियम् - पृथिव्याः श्रीः, पृथिवीश्रीः, ताम् (ष0तत्पुरुषः)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

मोक्षाय चेद्वा वनमेव गच्छेत् तत्त्वेन सम्यक् स विजित्य सर्वान्।
मतान् पृथिव्यां बहुमानमेतो राजेत शैलेषु यथा सुमेरुः।।36।।

अन्वय:- चेद् वा मोक्षाय वनम् एव गच्छेत् (तर्हि) तत्त्वेन सर्वान् मतान् विजित्य (तथा) बहुमानम् एतः राजेत यथा शैलेषु सुमेरुः।

व्याख्या:- चेत् = यदि, वा = या, मोक्षाय = मुक्तये, वनम् = अरण्यम्, एव = अपि च, गच्छेत् = इयात्, तत्त्वेन = ब्रह्मज्ञानेन, सर्वान् मतान् = सकलान् सिद्धान्तान् धर्मान् वा, विजित्य = जित्वा, बहुमानम् = अत्यधिक सम्मानम्, एतः = समाप्तः, राजेत = शोभेत, यथा = येन प्रकारेण, शैलेषु = पर्वतेषु, सुमेरुः = स्वर्णगिरिः (राजेत)।

अर्थ :- चेत् = यदि, वा = या, मोक्षाय = मुक्ति के लिए, वनम् = जंगल (वन) को, एव = ही, गच्छेत् = जावे, तत्त्वेन = तत्त्व ज्ञान से, सर्वान् = सभी, मतान् = मतों को, विजित्य = जीतकर, बहुमानम् = अत्यधिक सम्मान, एतः = प्रात करते हुए, राजेत = सुशोभित होगा, यथा जिस प्रकार (जैसे), शैलेषु = पर्वतों में, सुमेरुः = मेरु पर्वत्।

अनुवाद:- अथवा यदि मोक्ष के लिए वन को ही जाए तो (वह अपने) तत्त्व ज्ञान से सभी मतों को जीतकर (उसी तरह) अत्यधिक सम्मान प्राप्त करेगा जिस तरह पर्वतों में सुमेरु पर्वत।

टिप्पणी:- गच्छेत् - गम् (विधिलिङ् प्र0पु0ए0व0)। विजित्य - वि+जि+ल्यप्।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

यथा हिरण्यं शुचिधातुमध्ये मेरुर्गिरीणां सरसां समुद्रः।
तारासु चन्द्रस्तपतां च सूर्यः पुत्रस्तथा ते द्विपदेषु वर्यः।।37।।

अन्वयः- यथा शुचिधातुमध्ये हिरण्यं, गिरीणां मेरुः, सरसां समुद्रः, तारासु चन्द्रः, तपतां च सूर्यः तथा द्विपदेषु ते पुत्रः वर्यः।

व्याख्या:- यथा = येन प्रकारेण, शुचिधातुमध्ये = पवित्रसुवर्णादि धातुमध्ये, हिरण्यम् = सुवर्णम्, गिरीणाम् = पर्वतानाम्, मेरुः = सुमेरुः, सरसाम् = सरोवराणाम्, समुद्रः = सागरः, तारासु = नक्षत्रेषु, चन्द्रः = शशिः, तपताम् = उष्णोत्तप्तानां पदार्थानाम्, च = अपि च, सूर्यः = भानुः, तथा = एवम्, द्विपदेषु = मनुष्येषु, ते = भवतः, पुत्रः = सूनुः, वर्यः = श्रेष्ठः अस्तीति शेषः।

अर्थ :- यथा = जिस प्रकार, शुचिधातुमध्ये = पवि=स्वर्णादि धातुओं में, हिरण्यम् = सौना, गिरीणाम् = पर्वतों में, मेरुः = सुमेरु पर्वत, सरसाम् = सरोवरों में, समुद्रः= सागर, तारासु = ताराओं में, चन्द्रः = चन्द्रमा, तपताम् = गरम पदार्थों में, सूर्यः = सूर्य, तथा = च, द्विपदेषु = मनुष्यों में, ते = आपका, पुत्रः = पु=, वर्यः = श्रेष्ठ (है)।

अनुवाद:- जिस प्रकार पवित्र धातुओं में सुवर्ण, पर्वतों में सुमेरु पर्वत, जलाशयों में समुद्र, तारों में चन्द्रमा और तपने वाले पदार्थों में सूर्य श्रेष्ठ है उसी प्रकार मनुष्यों में तुम्हारा पुत्र श्रेष्ठ है।

टिप्पणी:- शुचिधातुमध्ये - शुचिश्चासौ धातुः शुचिधातुः (कर्मधारयः), शुचिधातूनां मध्ये (ष0तत्पुरुषः)। वर्यः - वृ+यत् (प्र0वि0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द।

अलंकार:- उल्लेख अलंकार ।

तस्याक्षिणी निर्निमिषे विशाले स्निग्धे च दीप्ते विमले तथैव।
निष्कम्पकृष्णायतशुद्धपक्ष्मे द्रष्टुं समर्थे खलु सर्वभावान्।।38।।

अन्वय:- तस्य निर्निमिषे विशाले स्निग्धे दीप्ते विमले च तथैव निष्कम्पकृष्णायतशुद्धपक्ष्मे अक्षिणी खलु सर्वभावान् द्रष्टुं समर्थे।

व्याख्या:- तस्य = अमुष्य (बालकस्य), निर्निमिषे = अनिमिषे, विशाले = विस्तीर्णे, स्निग्धे = चिक्कणे, दीप्ते = प्रज्वलिते, विमले = निर्मले, च = अपि च, तथैव = तेन प्रकारेण एव, निष्कम्पकृष्णायतशुद्धपक्ष्मे = निश्चलश्यामविशालपवि=वल्गुनी, अक्षिणी = नेत्रे, खलु = निश्चयेन, सर्वभावान् = सम्पूर्णाभिप्रायान्, द्रष्टुम् = ईक्षितुम्, समर्थे = योग्ये (स्तः)।

अर्थ :- तस्य = उस कुमार की, निर्निमिषे = अपलक, विशाले = विशाल, स्निग्धे = चिकनी, दीप्ते = तेजस्वी, विमले = निर्मल, च = और, तथैव = उस प्रकार ही, निष्कम्पकृष्णायतशुद्धपक्ष्मे = निश्चल काली और लम्बी बरौनियों वाली, अक्षिणी = आँखें, खलु = निश्चय ही, सर्वभावान् = सभी भावों को, द्रष्टुम् = देखने में, समर्थे = समर्थ हैं।

अनुवाद:- उस (बालक) की आँखें अपलक, विशाल, स्निग्ध, तेजस्वी, निर्मल एवं उसी प्रकार निश्चल काली और लम्बी बरौनियों वाली आँखें निश्चय ही सभी भावों को देखने में समर्थ हैं।

टिप्पणी:- निष्कम्पवृष्णायतशुद्धपक्ष्मे - निष्कम्पे च कृष्णे च निष्कम्पकृष्णे, आगते च शुद्धपक्ष्मणी च आयतशुद्धपक्ष्मे, निष्कम्पकृष्णायतशुद्धपक्ष्मणी ययोः, ते (अक्षिणी) (द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहिः)। शुद्धं पक्ष्म यस्या सा शुद्धपक्ष्मा, ते शुद्धपक्ष्मे (बहुव्रीहिः)। द्रष्टुम् - दृश्+तुमुन्।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द।

अलंकार:- परिकर अलंकार।

कस्मान्नु हेतोः कथितान् भवद्भिर्वरान् गुणान् धारयते कुमारः।
प्रापुर्न पूर्वे मुनयो नृपाश्च राज्ञेति पृष्टा जगदुर्द्विजास्तम्।।39।।

अन्वय:- कुमारः कस्मात् नु हेतोः भवद्भिः कथितान् वरान् गुणान् धारयते (यान्) पूर्वे मुनयः नृपाः च न प्रापुः इति राज्ञा पृष्टाः (सन्तस्ते) द्विजाः तं जगदुः।

व्याख्या:- कुमारः = राजकुमार (बालक), कस्मात् नु हेतोः = कस्मात् कारणात्, भवद्भिः = युष्माभिः, कथितान् = उक्तान्, वरान् = श्रेष्ठान्, गुणान् = धर्मान्, धारयते = धारयति, पूर्वे = प्रारम्भे, मुनयः = ऋषयः, नृपाः = भूपाः, च = अपि च, न = नैव, प्रापुः = प्रापन्, इति, राज्ञा = भूपेन, पृष्टाः = प्रश्नं कृताः, द्विजाः = ब्राह्मणाः, तम् = नृपम्, जगदुः = कथयांचक्रुः।

अर्थ :- कुमारः = राजकुमार (बालक), कस्मात् नु हेतोः = किस कारण से, भवद्भिः = आप लोगों के द्वारा, कथितान् = कहे गये, वरान् = श्रेष्ठ, गुणान् = गुणों को, धारयते = धारण कर रखा है, (यान् उन गुणों को), पूर्वे मुनयः = पहले ऋषियों ने, नृपाः = राजाओं ने, च = और, न = नहीं, प्रापुः = प्राप्त किया, इति = इस प्रकार (ऐसा), राज्ञा = राजा के द्वारा, पृष्टाः = पूछने पर, द्विजाः = ब्राह्मणों ने, तम् = राजा को, जगदुः = कहा।

अनुवाद:- क्या कारण है कि कुमार आप लोगों द्वारा कहे गये श्रेष्ठ गुणों को धारण कर रखा है, वे गुण पहले के ऋषियों एवं राजाओं ने प्राप्त नहीं किया था? इस प्रकार राजा के द्वारा पूछने पर ब्राह्मणों ने उससे कहा-

टिप्पणी:- प्रापुः - प्र+आप् (लिट् लकारः प्र0पु0ब0व0)। पृष्टाः - प्रच्छ्+क्त (प्र0वि0ब0व0)। जगदुः - गद् (लिट् लकारः प्र0पु0ब0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द।

ख्यातानि कर्माणि यशो मतिश्च पूर्वं न भूतानि भवन्ति पश्चात्।
गुणाः हि सर्वे प्रभवन्ति हेतोर्निदर्शनान्यत्र च नो निबोध।।40।।

अन्वय:- ख्यातानि कर्माणि, यशः मतिः च पूर्वं न भूतानि पश्चात् भवन्ति, हि सर्वे गुणाः हेतोः प्रभवन्ति, अत्र च नः निदर्शनानि निबोध।

व्याख्या:- ख्यातानि = प्रसिद्धानि, कर्माणि = कार्याणि, यशः = कीर्तिः, मतिः = बुद्धिः च, पूर्वम् = प्राक्, न, भूतानि = जातानि, पश्चात् = अनन्तरं परं वा, भवन्ति = जायन्ते, हि = निश्चयेन, सर्वे = सकलाः, गुणाः = धर्माः, हेतोः = निमित्तात्, प्रभवन्ति = समुत्पद्यन्ते, अत्र = अस्मिन् प्रसङ्गे, च = अपि च, नः = अस्माकम्, निदर्शनानि = दृष्टान्तानि, निबोध = शृणु।

अर्थ :- ख्यातानि = प्रसिद्ध, कर्माणि = कर्म, यशः = कीर्ति, मतिः = बुद्धि, च = और, पूर्वम् = पहले, न = नहीं, भूतानि = हुए, पश्चात् = बाद में, भवन्ति = हो जाते हैं, हि = निश्चय ही, सर्वे गुणाः = सभी प्रकार के गुण, हेतोः = कारण से, प्रभवन्ति = होते हैं, अत्र = यहाँ, च = और, नः = हमारे, निदर्शनानि = दृष्टान्तों को, निबोध = सुनिये।

अनुवाद:- प्रसिद्ध कर्म, यश तथा बुद्धि, पहले (किसी में) नहीं हुए, बाद में (किसी में) हो जाते हैं, क्योंकि सब प्रकार के गुण किसी कारण विशेष से होते हैं। इस सम्बन्ध में हमारे दृष्टान्तों को सुनिये।

टिप्पणी:- प्रभवन्ति - प्र + भू (लट् प्र0पु0ब0व0)। निबोध - नि+बुध् (लोट् म0पु0ए0व0)। नः - अस्मद् (ष0ब0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार ।

3.4 सारांशः-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं कि राजा शुद्धोधन के पुत्र जन्म के समय अकाशिय ग्रह नक्षत्रों की कैसी स्थिति थी, तथा जन्म के उपरान्त सप्तर्षि तारा गण के सदृश उनके साथ पग (शांत, ऋजु, समुन्नत, पूर्वाभ्यस्त, दीर्ध, पराक्रमयुक्त तथा धीरता) मानो सिंह सदृश गति से युक्त विश्वकल्याण के लिए ही हो, साथ ही राजा व ब्राह्मणों के संवाद वर्णन से भी परिचित होंगे। इन सभी चर्चाओं से कवि की काव्यशास्त्रीय ज्ञान के साथ ही ज्योतिषशास्त्रीय शकुनशास्त्रीय दृष्टि का भी अवलोकन कर सकेंगे।

3.5 शब्दावलीः-

शब्द	=	**अर्थ**
भूः	=	पृथ्वी
पादपेभ्यः	=	वृक्षों से
पुष्पाणि	=	फूलों को
मृगपक्षिणः	=	पशु और पक्षी
नाथम्	=	स्वामी को
शीतोष्णमिश्रा	=	शीतल एवं उष्ण मिश्रित
शिशवे	=	बालक के लिये
लोकस्य नेता	=	जगत् के नेता
सर्वेषु ग्रहेषु	=	सभी ग्रहों में
द्विपदेषु	=	मनुष्यों में
द्विजाः	=	ब्राह्मणों ने

3.6 बोध प्रश्न :-

1 . उत्पलपद्मगर्भा शब्द में कोन सा समास है।

क-बहु0 समासः   ख-तत्पुरूष समास

ग-तृ0तत्पुरुषः घ-द्वन्द्वय समास

2 . ब्राह्माणों एवं राजा का संवाद वर्णन किस सर्ग में है।

क- प्रथम सर्ग ख-द्वितीय सर्ग

ग-तृतीयय सर्ग घ- चतुर्थ सर्ग

3 . विजित्य शब्द में प्रत्यय है।

क-टाप् ख- ल्यप्

ग- अण् घ-इक्

प्रश्नों के उत्तर

1. क-बहु0 समासः
2. क- प्रथम सर्ग
3. ख- ल्यप्

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1988 ई. प्रथम भाग प्राक्कथन पृ0 7-8
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 70-73
3. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 उमाशंकर शर्मा ‘ऋषि’
5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कपिलदेव द्विवेदी

3.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. बुद्धचरितम्, महाकवि अश्वघोष

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. तृतीय इकाई का वैशिष्ट्य लिखिए।
2. किन्ही चार श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. ब्राह्माणों एवं राजा के संवाद का वर्णन कीजिए।

खण्ड– प्रथम, इकाई – 04

बुद्धचरितम् प्रथम सर्ग (भगवत्प्रसूति) – श्लोक संख्या - 41 से 60 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सेमेस्टर द्वितीय प्रश्न पत्र के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने प्रकृति वर्णन, राजा शुद्धोधन एवं रानी मायादेवी के पुत्र जन्म पर शुभ शकुन के वर्णन विषय को जाना। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप महर्षि असित के आगमन का वर्णन, महर्षि एवं राजा का संवाद वर्णन तथा शिशु वैशिष्टय का वर्णन विस्तार से जानेंगे।

4. 2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन से आप—

- कवि की लेखन क्षमता से परिचित हो सकेंगे।
- श्लोकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- महर्षि असित के आगमन के कारण को जान सकेंगे।
- महर्षि एवं राजा के संवाद से परिचित हो सकेंगे।
- महर्षि द्वारा कथित राजपुत्र के वैशिष्टय वर्णन को बता सकेंगे।

4.3 श्लोक संख्या 41 से 60 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

यद्राजशास्त्रं भृगुरङ्गिरा वा न चक्रतुर्वंशकरावृषी तौ।
तयोः सुतौ सौम्य ससर्जतुस्तत् कालेन शुक्रश्च बृहस्पतिश्च।।41।।

अन्वय:- सौम्य! वंशकरौ तौ ऋषी भृगुः अङ्गिरा वा यत् राजशास्त्रं न चक्रतुः तत् कालेन तयोः सुतौ शुक्रः बृहस्पतिः च ससर्जतुः।

व्याख्या:- सौम्य = हे सौम्य!, वंशकरौ तौ = कुलप्रवर्तकौ अमू, ऋषी = मुनी, भृगुः = मुनिविशेषः, अङ्गिरा = ऋषिविशेषः, वा = च, यत् राजशास्त्रम् = यत् राजनीतिशास्त्रम्, न चक्रतुः = न चक्राते, तत् = तत् राजशास्त्रम्, कालेन = समयेन, तयोः = भृग्वङ्गिरयोः, सुतौ = पुत्रौ, शुक्रः = शुक्राचार्यः, बृहस्पतिः = सुररुः, च = अपि च, ससर्जतुः = चक्रतुः।

अर्थ :- सौम्य = हे सौम्य, वंशकरौ तौ = वंशपरम्परा चलाने वाले वे दोनों, ऋषी = ऋषियों ने, भृगुः अङ्गिरा वा = भृगु एवं अङ्गिरा ऋषि ने, यत् = जिस, राजशास्त्रम् = राजशास्त्र को, न चक्रतुः = नहीं बनाया था, तत् = वह (उसी), कालेन = समय आने पर, तयोः सुतौ = उन दोनों के पुत्रों ने, शुक्रः बृहस्पतिः च = शुक्र और बृहस्पति ने, ससर्जतुः = बनाया।

अनुवाद:- हे सौम्य! वंश-परम्परा को चलाने वाले भृगु एवं अंगिरा मुनियों ने जीतिशास्त्र को नहीं बनाया था, उसी राजनीतिशास्त्र को समय आने पर उन दोनों के पुत्रों शुक्र तथा बृहस्पति ने बनाया।

टिप्पणी:- वंशकरौ - वंशं करोतीति वंशकरः, तौ (उपपदसमासः)। राजशास्त्रम् - राज्ञां शास्त्रम् (ष0तत्पुरुषः)। नः - अस्मद् (ष0ब0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्यं ददृशुर्न पूर्वे।
व्यासस्तथैनं बहुधा चकार न यं वसिष्ठः कृतवान्नशक्तिः।।42।।

अन्वय:- यं नष्टं वेदं पूर्वे अपि न ददृशुः, तं पुनः सारस्वतः जगाद तथा यं वसिष्ठः न शक्तिः च न कृतवान् एनं व्यासः बहुधा चकार।

व्याख्या:- यं नष्टं वेदम् = यं भ्रष्टं निगमम्, पूर्वे = प्राचीनाः, अपि = अपि च, न = नैव, ददृशुः = दृष्टवन्तः, तम् = अमुम् (वेदम्), पुनः = अनन्तरम्, सारस्वतः = वाग्देव्याः पुत्रः, जगाद = उवाच, तथा = च, यम् = वेदम्, वसिष्ठः = ऋषिविशेषः, न = नैव, शक्तिः = मुनिविशेषः, च = तथा, न = नैव, कृतवान् = चकार, एनम् = इमम्, व्यासः = व्यासमुनिः, बहुधा = बहुशः, चकार = चक्रे।

अर्थ :- यम् = जिस को, नष्टं वेदम् = नष्ट वेद को, पूर्वे अपि = पहले भी, न = नहीं, ददृशुः = देखा गया, तम् = उस वेद को, पुनः = फिर से, सारस्वतः = सरस्वती के पु= ने, जगाद = कहा, तथा = और, यम् = जिस को (वेद को), वसिष्ठः = वसिष्ठ मुनि, न = नहीं, शक्तिः = ऋषि विशेष, च = तथा, न = नहीं, कृतवान् = किया, एनम् = इसको (वेद को), व्यासः = व्यास मुनि ने, बहुधा = कई भागों में, चकार = किया।

अनुवाद:- जिस नष्ट हुए वेद को प्राचीनों ने भी न देखा उस वेद को (बाद में) सरस्वती के पुत्र ने कहा तथा जिसे (वेद, पुराणादि को) वसिष्ठ और शक्ति नामक मुनि ने नहीं किया इसे व्यासमुनि ने कई विभागों में विभक्त किया।

टिप्पणी:- जगाद - गद् (लिट् लकार प्र0पु0ए0व0)। ददृशुः - दृशः (लिट् लकारः प्र0पु0ब0व0)। कृतवान् - कृ+क्तवतु प्रत्ययः। चकार - कृ (लिट् लकारः प्र0पु0ए0व0)

छन्द:- उपजाति छन्द ।

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।
चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद।।43।।

अन्वय:- महर्षिः च्यवनः यत् न जग्रन्थ (तत्) पद्यम् आदौ वाल्मीकिः ससर्ज, यत् च चिकित्सितम् अत्रिः न चकार तत् आत्रेयः ऋषिः जगाद।

व्याख्या:- महर्षिः = महामुनिः, च्यवनः = ऋषिविशेषः, यत् न = पद्यं नैव, जग्रन्थ = रचितवान्, (तत् = अदः), पद्यम् = छन्दः, आदौ = प्राथमं, वाल्मीकिः = आदिकविः रामायणप्रणेतृमुनिविशेषः, ससर्ज चक्रे, यत् च चिकित्सितम् = यत् च चिकित्साशास्त्रम्, अत्रिः = मुनिविशेषः, न = नैव, चकार = कृतवान्, तत् = चिकित्साशास्त्रम, आत्रेयः = ऋषिविशेषः, ऋषिः = महर्षिः, जगाद = उवाद।

अर्थ :- च्यवनः = ऋषि विशेष, महर्षिः = महामुनि, यत् न = जिसको नहीं, जग्रन्थ = रचना, (तत्रउस), पद्यम् = पद्य को, आदौ = पहले, वाल्मीकिः = आदिकवि वाल्मीकि ने, ससर्ज = रचना की, यत् = जिस, च = और, चिकित्सितम् = चिकित्सा शास्त्र को, अत्रिः = अत्रि मुनि ने, न चकार = नहीं रचना, तत् = उस (उस चिकित्सा शास्त्र को), आत्रेय ऋषिः = आत्रेय ऋषि ने, जगाद = कहा।

अनुवाद:- महर्षि च्यवन ने जिसकी (पद्य की) रचना नहीं की थी (उस) पद्य की पहले वाल्मीकि ने रचना की तथा जिस चिकित्साशास्त्र को अत्रि मुनि ने नहीं रचा, उसे आत्रेय ऋषि ने उपदेश प्रदान किया।

टिप्पणी:- जग्रन्थ - ग्रन्थ (लिट् लकारः प्र0पु0ए0व0)। आदौ - आ+दा+कि, प्रत्ययः, सप्तमी एकवचन।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

यच्च द्विजत्वं कुशिको न लेभे तद्गाधिनः सूनुरवाप राजन्।
वेलां समुद्रे सगरश्च दध्रे नेक्ष्वाकवो यां प्रथमं बबन्धुः।।44।।

अन्वय:- राजन्! कुशिकः च यत् द्विजत्वं न लेभे तत् गाधिनः सूनुः अवाप, सगरः च समुद्रे वेलां दध्रे याम् इक्ष्वाकवः प्रथमं न बबन्धुः।

व्याख्या:- राजन्! = हे नृप!, कुशिकः = महर्षिः विश्वामित्रस्य पूर्वजः कुशिकः, च = तथा, यत् द्विजत्वम् = यत् ब्राह्मणत्वम्, न = नैव, लेभे = लब्धवान्, तत् = ब्राह्मणत्वम्, गाधिन् सूनुः = गांधिनः पुत्रः

विश्वामित्रः, अवाप = प्राप्तवान्, सगरः = एकः सूर्यवंशीयः नृपः, च = तथा, समुद्रे = सागरे, वेलाम् = सीमानम्, दध्रे = बबन्ध, याम् = वेलाम्, इक्ष्वाकवः = इक्ष्वाकुवंशीयाः, प्रथमम् = पूर्वम्, न = नैव, बबन्धुः = बद्धवन्तः।

अर्थ :- राजन् = हे महाराज!, कुशिकः = महर्षि विश्वामि= के पूर्वज कुशिक ने, च = और, यत् = जिस, द्विजत्वम् = ब्राह्मणत्व को, न लेभे = नहीं प्राप्त किया, तत् = उस (ब्राह्मणत्व को), गाधिनः सूनुः = गाधि-पुत्रविश्वामि= ने, अवाप = प्राप्त किया, सगरः = राजा सगर ने, च = और, समुद्रे = समुद्र में, वेलाम् = सीमा को, दध्रे = बाँधी, याम् = जिसको, इक्ष्वाकवः = इक्ष्वाकुवंश के किसी ने, प्रथमम् = पहले, न बबन्धुः = नहीं बाँधी।

अनुवाद:- हे राजन्! महर्षि विश्वामित्र के पूर्वज कुशिक ने जिस ब्राह्मणत्व को नहीं प्राप्त किया था, उसे गाधिपुत्र विश्वामित्र ने प्राप्त किया और राजा सगर ने समुद्र में सीमा बाँधी, जिसे इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न किसी ने नहीं बांधी थी।

टिप्पणी:- द्विजत्वम् - द्विज+त्व प्रत्ययः। लेभे - लभ् धातुः (लिट् लकारः प्र0पु0ए0व0)। दध्रे - धृ आत्मनेपदी धातुः (लिट् लकारः प्र0पु0ए0व0) बबन्धुः - बन्ध् धातुः (लिट् लकारः प्र0पु0ब0व0)

छन्दः- इन्द्रवज्रा छन्द।

आचार्यकं योगविधौ द्विजानामप्राप्तमन्यैर्जनको जगाम।
ख्यातानि कर्माणि च यानि शौरेः शूरादयस्तेष्वबला बभूवुः।।45।।

अन्वय:- योगविधौ अन्यैः अप्राप्तं द्विजानाम् आचार्यकं जनकः जगाम, शौरेः यानि ख्यातानि कर्माणि तेषु शूरादयः अबलाः बभूवुः।

व्याख्या:-योगविधौ = योगक्रियायाम्, अन्यैः = ब्राह्मणातिरिक्तैः, अप्राप्तम् = अलब्धम्, द्विजानाम् = ब्राह्मणानाम्, आचार्यकम् = आचार्यपदम्, जनकः = मिथिलानरेशः, जगाम = प्राप्तवान्, शौरेः = श्रीकृष्णस्य, यानि ख्यातानि = यानि प्रसिद्धानि, कर्माणि = कत्र्तव्यानि, तेषु = अमीषु, शूरादयः = श्रीकृष्णस्य पूर्वजाः, अबलाः = असमर्थाः, बभूवुः = अभूवन्।

अर्थ :- योगविधौ = योगविधि में, अन्यैः = अन्य लोगों द्वारा, अप्राप्तम् = अप्राप्त, द्विजानाम् = ब्राह्मणों के, आचार्यकम् = आचार्य पद को, जनकः = जनक ने, जगाम = प्राप्त किया, शौरेः = श्रीकृष्ण के द्वारा, यानि = जो, ख्यातानि = प्रसिद्ध, कर्माणि = कर्म, तेषु = उन (कर्मों में), शूरादयः = शूर आदि, अबला = असमर्थ, बभूवुः = हुए (रहे)।

अनुवाद:- योगादिदर्शन विधियों में अन्य लोगों द्वारा अप्राप्त ब्राह्मणों के आचार्य पद को जनक ने प्राप्त किया। शौरि अर्थात् श्रीकृष्ण ने जो प्रसिद्ध कर्म किये थे, उन कर्मों को करने में उनके पूर्वज शूरादि असमर्थ रहे।

टिप्पणी:- योगविधौ - योगस्य विधिः योगविधिः तस्मिन् (ष0तत्पुरुषः)। अबलाः - अविद्यमानं बलं येषु, ते (बहुव्रीहिः)। जगाम - गम् धातु (लिट् लकारः प्र0पु0ए0व0)

छन्दः- इन्द्रवज्रा छन्द।

अलंकार:- अनुप्रास अलंकार।

तस्मात्प्रमाणं न वयो न वंशः कश्चित् क्वचिच्छ्रेष्ठ्यमुपैति लोके।
राज्ञामृषीणां च हि तानि तानि कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः।।46।।

अन्वय:- तस्मात् न वयः न वंशः प्रमाणं, लोके कश्चित् क्वचित् श्रेष्ठ्यम् उपैति, हि राज्ञाम् ऋषीणाम् च पुत्रैः तानि तानि कृतानि (यानि) पूर्वैः कृतानि।

व्याख्या:- तस्मात् = अतः, न वयः = न आयुः, न वंशः = न कुलम्, प्रमाणम् = निदर्शनम्, लोके = संसारे, कश्चित् = कश्चन्, क्वचित् = कुत्रापि, श्रेष्ठ्यम् = उत्कृष्टताम्, उपैति = प्राप्नोति, हि = निश्चयेन, राज्ञाम् = भूभृताम्, ऋषीणाम् = मुनीनाम्, च = तथा, पुत्रैः = सुतैः, तानि-तानि = अमूनि-अमूनि, कृतानि = विहितानि (यानि-यानि) पूर्वैः = पूर्वजैः, अकृतानि = नैव सम्पादितानि।

अर्थ :- तस्मात् = उससे (अतः), न वयः = न अवस्था, न वंशः = न कुल, प्रमाणम् = प्रमाण (है), लोके = संसार में, कश्चित् = कोई भी, क्वचित् = कहीं भी, श्रेष्ठ्यम् = श्रेष्ठता को, उपैति = प्राप्त कर लेता है, हि = क्योंकि, राज्ञाम् = राजाओं के, ऋषीणाम् = ऋषियों के, च = और, पुत्रैः = पुत्रों के द्वारा, तानि-तानि = वे-वे (उन-उन), कृतानि = किये, (यानि-यानि = जो-जो), पूर्वैः = पूर्वजों के द्वारा, अकृतानि = नहीं किये।

अनुवाद:- अतः न तो अवस्था अर्थात् आयु और न ही कुल (श्रेष्ठता का) प्रमाण है। संसार में कोई भी कहीं भी श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है क्योंकि राजाओं एवं ऋषियों के पुत्रों ने उन-उन कर्मों को किया जो उनके पूर्वजों ने नहीं किये थे।

टिप्पणी:- अकृतानि - न कृतम् - अकृतम्, तानि (नञ् तत्पुरुष)। उपैति - उप+एति (वृद्धि सन्धिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार है।

एवं नृपः प्रत्ययितैर्द्विजैस्तैराश्वासितश्चाप्यभिनन्दितश्च।
शङ्कामनिष्टां विजहौ मनस्तः प्रहर्षमेवाधिकमारुरोह।।47।।

अन्वय:- एवं तैः प्रत्ययितैः द्विजैः आश्वासितः अभिनन्दितः च अपि नृपः मनस्तः अनिष्टां शङ्कां विजहौ अधिकम् एवं प्रहर्षम् आरुरोह।

व्याख्या:- एवम् = इत्थम्, तैः = अमीभिः, प्रत्यायितैः = विश्रंभितैः, द्विजैः = ब्राह्मणैः, आश्वासितः = समाश्वासितः, अभिनन्दितः = प्रशंसितः, च, अपि, नृपः = राजा, मनस्तः = चेतयः, अनिष्टां शङ्काम् = अशुभाम् आशङ्काम्, विजहौ = तत्याज, अधिकम् = अत्यन्तम्, एवम् = इत्थम्, प्रहर्षम् = प्रसन्नताम्, आरुरोह = प्राप।

अर्थ :- एवम् = इस प्रकार, तैः = इन, प्रत्यायितैः = विश्वासी, द्विजैः = ब्राह्मणों के द्वारा, आश्वासितः = आश्वस्त किये गए, अभिनन्दितः = अभिनन्दित किये गए, च = और, नृपः = राजा ने, मनस्तः = मन से (मन में व्याप्त), अनिष्टां शङ्काम् = अनिष्ट शङ्काओं का, विजहौ = परित्याग किया, अधिकम् = अत्यधिक (अत्यन्त), एवम् = इस प्रकार, प्रहर्षम् = प्रसन्नता को, आरुरोह = प्राप्त किया।

अनुवाद:- इस प्रकार उन विश्वासी ब्राह्मणों के द्वारा आश्वासित एवं अभिनन्दित हुआ राजा शुद्धोधन ने अपने मन में व्याप्त अनिष्ट शंकाओं का परित्याग किया तथा अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुआ।

टिप्पणी:- अनिष्टाम् - न इष्टाम् (नञ् तत्पुरुषः)। विजहौ - वि+हा धातुः (लिट् लकारः, प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- स्वभावोक्ति अलंकार ।

प्रीतश्च तेभ्यो द्विजसत्तमेभ्यः सत्कारपूर्वं प्रददौ धनानि।
भूयादयं भूमिपतिर्यथोक्तो यायाज्जरामेत्य वनानि चेति।।48।।

अन्वय:- प्रीतः च तेभ्यः द्विजसत्तमेभ्यः सत्कारपूर्वं धनानि प्रददौ, यथोक्तः अयं भूमिपतिः भूयात् च इति जराम् एत्य वनानि यायात्।

व्याख्या:- प्रीतः च = प्रसन्नः च, तेभ्यः = अमीभ्यः, द्विजसत्तमेभ्यः = श्रेष्ठब्राह्मणेभ्यः, सत्कारपूर्वम् = सम्मानपूर्वकम्, धनानि = द्रव्याणि, प्रददौ = दत्तवान्, यथोक्तः = पूर्वोक्तानुसारः, अयम् = एषः,

भूमिपतिः = भूभृत्, भूयात् = वर्तिषीष्ट, च, इति = एवम्,जराम् = वृद्धावस्थाम्, एत्य = सम्प्राप्य, वनानि = काननानि, यायात् = गम्यात्।

अर्थ :- प्रीतः = प्रसन्न, च = और, तव, तेभ्यः = उन, द्विजसत्तमेभ्यः = श्रेष्ठ ब्राह्मणों को, सत्कारपूर्वम् = सत्कारपूर्वक (सम्मानपूर्वक) , धनानि = धन, प्रददौ = प्रदान किया, यथोक्तः = पूर्व में कहे अनुसार, अयम् = यह (वह), भूमिपतिः = राजा, भूयात् = होवे (बने), च = और, इति = ऐसा, जराम् एत्य = वृद्धावस्था को प्राप्त कर, वनानि = वन को, यायात् = जाये।

अनुवाद:- उसके पश्चात् अर्थात् तब प्रसन्न होकर (राजा ने) उन ब्राह्मण श्रेष्ठों को सत्कारपूर्वक धन प्रदान किया, (ताकि) उनके पूर्वकथनानुसार वह बालक राजा होवे एवं वृद्धावस्था में ही वन में जाये।

टिप्पणी:- द्विजसत्तमेभ्यः - द्विज एव सत्तमः, द्विजसत्तमः तेभ्यः (कर्मधारय समासः)। भूमिपतिः - भूम्याः पतिः (ष0तत्पुरुषः)। यायात् - या धातुः (विधिलिङ् लकारः, प्र0पु0ए0व0)

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

2.3.1 महर्षि असित के आगमन का वर्णन—

अथो निमित्तैश्च तपोबलाच्च तज्जन्म जन्मान्तकरस्य बुद्ध्वा।
शाक्येश्वरस्यालयमाजगाम सद्धर्मतर्षादसितो महर्षिः।।49।।

अन्वय:- अथो महर्षिः असितः निमित्तैः च तपोबलात् च जन्मान्तकरस्य तज्जन्म बुद्ध्वा सद्धर्मतर्षात् शाक्येश्वरस्य आलयम् आजगाम।

व्याख्या:- अथो = अनन्तरम्, महर्षिः = मुनिः, असितः = मुनिविशेषः, निमित्तैः = शकुनैः, च, तपोबलात् च = तपस्या प्रभावात् च, जन्मान्तकरस्य = उत्पत्त्यन्तकस्य, तज्जन्म बुद्ध्वा = तदुत्पत्तिं ज्ञात्वा, सद्धर्मतर्षात् = सद्धर्मजिज्ञासायाः, शाक्येश्वरस्य = राज्ञः शुद्धोदनस्य, आलयम् = निवासस्थानम्, आजगाम = आययौ।

अर्थ :- अथो = उसके पश्चात्, महर्षिः असितः = महामुनि असित ने, निमित्तैः = शकुनों से, च = और, तपोबलात् = तपोबल से, च = और, जन्मान्तकरस्य = जन्म का अन्त करने वाले का, तज्जन्म = वह जन्म, बुद्ध्वा = समझकर (जानकर), सद्धर्मतर्षात् = सच्चे धर्म की जिज्ञासा से, शाक्येश्वरस्य = शाक्यों के स्वामी (शुद्धोधन) के, आलयम् = निवासस्थान पर, आजगाम = आये।

अनुवाद:- तत्पश्चात् महर्षि असित शकुनों और तपोबल से जन्म का अन्त करने वाले बोधिसत्त्व का वह जन्म समझकर सद्धर्म की जिज्ञासा से शाक्यपति शुद्धोदन के घर आये।

टिप्पणी:- तपोबलात् - तपसः बलम्, तस्मात् (ष0तत्पुरुषः)। जन्मान्तकरस्य - जन्मनः अन्तः (ष0तत्पुरुषः), जन्मान्तं करोतीति, जन्मान्तकरः, तस्य (ष0तत्पुरुषः)। सद्धर्मतर्षात् - सन् चासौ धर्मः (कर्मधारयः), तस्मात् (ष0तत्पुरुषः)। शाक्येश्वरस्य - शाक्यानाम् ईश्वरः, तस्य (ष0तत्पुरुषः)। आजगाम - आ+गम् धातुः (लिट् लकारः, प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार ।

तं ब्रह्मविद् ब्रह्मविदं ज्वलन्तं ब्राह्म्या श्रिया चैव तपः श्रिया च।
राज्ञो गुरुर्गौरवसत्क्रियाभ्यां प्रवेशयामास नरेन्द्रसद्म।।50।।

अन्वय:- ब्रह्मवित् राज्ञः गुरुः ब्राह्म्या श्रिया चैव तपः श्रिया च ज्वलन्तं तं ब्रह्मविदं गौरवसत्क्रियाभ्यां नरेन्द्रसद्म प्रवेशयामास।

व्याख्या:- ब्रह्मवित् = ब्रह्मज्ञः, राज्ञः गुरुः = राजगुरुः, ब्राह्म्या श्रिया = सरस्वत्या कान्त्या, च एव, तपः श्रिया च = तपस्या दीप्त्या च, ज्वलन्तम् = देदीप्यमानम्, तं ब्रह्मविदम् = अमुं ब्रह्मज्ञम्, गौरवसत्क्रियाभ्याम् = सम्मानसुकर्मभ्याम्, नरेन्द्रसद्म = राजभवनम्, प्रवेशयामास = प्रवेशं कारयांचकार।
अर्थ :- ब्रह्मवित् = ब्रह्मवेत्ता, राज्ञः गुरुः = राजगुरु ने, ब्राह्म्या श्रिया = ब्रह्मतेज से, चैव = और, तपः श्रिया = तपस्या के तेज से, च = और, ज्वलन्तम् = देदीप्यमान, तम् = उस को, ब्रह्मविदम् = ब्रह्मवेत्ता को (महर्षि असित को), गौरवसत्क्रियाभ्याम् = गौरव एवं सत्कारपूर्वक, नरेन्द्रसद्म = राजमहल में, प्रवेशयामास = प्रवेश कराया।
अनुवाद:- तदनन्तर ब्रह्मज्ञानी राजगुरु ने ब्रह्मतेज तथा तपस्तेज से देदीप्यमान उस ब्रह्मवेत्ता असित को गौरव एवं सत्कारपूर्वक राजमहल में प्रवेश कराया।
टिप्पणी:- ब्रह्मवित् - ब्रह्म वेत्तीति (उपपद समासः)। तपः श्रिया - तपसः श्रीः (तपः श्रीः) तया (ष0तत्पुरुषः)। सत्क्रियाभ्याम् - सती चासौ क्रिया, सत्क्रिया, ताभ्यां (कर्मधारयः)। नरेन्द्रसद्म - नराणाम् इन्द्रः नरेन्द्रः (ष0तत्पुरुषः) नरेन्द्रस्य सद्म (ष0तत्पुरुषः)। प्रवेशयामास - प्र+विश् धातुः णिजन्ते (लिट् लकारः, प्र0पु0ए0व0)।
छन्द:- उपजाति छन्द।
अलंकार:- अनुप्रास अलंकार।

स पार्थिवान्तः पुरसन्निकर्षं कुमारजन्मागतहर्षवेगः।
विवेश धीरो वनसंज्ञयेव तपः प्रकर्षाच्च जराश्रयाच्च।।51।।

अन्वय:- कुमारजन्मागतहर्षवेगः तपः प्रकर्षात् च जराश्रयात् च धीरः सः वनसंज्ञया इव पार्थिवन्तः पुरसन्निकर्षं विवेश।
व्याख्या:- कुमारजन्मागतहर्षवेगः = बालोत्पन्नागतहर्षवेगः, तपःप्रकर्षात् च = तपसः आधिक्यात् च, जराश्रयात् = वार्द्धक्यात्, च, धीरः सः = धैयान्वितः गुरुः (असितः), वनसंज्ञया इव = काननं सदृशं (ज्ञात्वा), पार्थिवान्तः पुरसन्निकर्षम् = राजसदनम् इत्यर्थः, विवेश = जगाहे प्राविशत् वा।
अर्थ :- कुमारजन्मागतहर्षवेगः = कुमार (बुद्ध) के जन्म से प्राप्त हर्ष वेग से युक्त, तपःप्रकर्षात् = तपस्या के आधिक्य से, च = और, जराश्रयात् = वृद्धावस्था के कारण, च, धीरः सः = धीर अर्थात् अटल वह, (असित), वनसंज्ञया इव = वन के सदृश समझकर, पार्थिवान्तः पुरसन्निकर्षम् = राजा के अन्तःपुर में, विवेश = प्रवेश किये।
अनुवाद:- कुमार के जन्म से प्राप्त प्रसन्नता से युक्त होकर तथा तपस्या एवं वार्धक्य के कारण धीर वह (मुनि असित) वन समझकर राजा के अन्तःपुर में प्रवेश किया।
टिप्पणी:- कुमारजन्मागतहर्षवेगः - कुमारस्य जन्म (ष0तत्पुरुषः), कुमारजन्मनः आगतः (ष0तत्पुरुषः), हर्षस्य वेगः (ष0तत्पुरुषः), कुमारजन्मागतश्चासौ हर्षवेगः (कर्मधारय समासः)। तपः प्रकर्षात् - तपसः प्रकर्षः, तस्मात् (षष्ठी तत्पुरुषः)। जराश्रयात् - जरायाः आश्रयः, तस्मात् (ष0 तत्पुरुषः)। पार्थिवान्तपुरम् - पार्थिवस्य अन्तपुरम् (ष0तत्पुरुषः)
छन्द:- उपेन्द्रवज्रा छन्द।
लक्षण:-'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ'। उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु होते हैं।

ततो नृपस्तं मुनिमासनस्थं पाद्यार्ध्यपूर्वं प्रतिपूज्य सम्यक्।
निमन्त्रयामास यथोपचारं पुरा वसिष्ठं स इवान्तिदेवः।।52।।

अन्वय:- ततः सः नृपः आसनस्थं तं मुनिं पाद्याघ्र्यपूर्वं सम्यक् प्रतिपूज्य पुरा अन्तिदेवः वसिष्ठम् इव यथोपचारं निमन्त्रयामास।

व्याख्या:- ततः = तदनन्तरम्, सः नृपः = असौ राजा, आसनस्थम् = आसनोपविष्टम्, तं मुनिम् = अमुम् ऋषिम्, पाद्याघ्र्यपूर्वम् = जलाघ्र्यपूर्वम्, सम्यक् = सम्यकतया, प्रतिपूज्य = संपूज्य, पुरा = प्राचीनकाले, अन्तिदेवः = नृपः अन्तिदेवः, वसिष्ठम् इव = ऋषिविशेषमिव, यथोपचारम् = विधिपूर्वकं संपूज्य, निमन्त्रयामास = सादरम् आमन्त्रितवान्।

अर्थ :- ततः = उसके पश्चात् (तदनन्तर), सः नृपः = वह राजा, आसनस्थम् = आसन पर स्थित, तं मुनिम् = उस मुनि की, पाद्याघ्र्यपूर्वम् = पाद्य एवं अघ्र्यपूर्वक, सम्यक् प्रतिपूज्य = अच्छी तरह पूजा करके, पुरा = प्राचीनकाल में (पहले), अन्तिदेवः = राजा अन्तिदेव ने, वसिष्ठम् इव = वसिष्ठ मुनि के सदृश, यथोपचारम् = जिस प्रकार पूजादि (किया था), निमन्त्रयामास = सादर निवेदन किया।

अनुवाद:- तब उस राजा ने आसनस्थ उस असित नामक मुनि की जल एवं अघ्र्य से विधिवत् पूजा करके उसी प्रकार सादर आमन्त्रित किया, जिस प्रकार प्राचीनकाल में अन्तिदेव को वसिष्ठ ने किया था।

टिप्पणी:- यथोपचारम् - उपचारम् अनतिक्रम्य (अव्ययीभावः)। प्रतिपूज्य - प्रति+पूज्+ल्यप्। निमन्त्रयामास - नि+मन्त्र (लिट् प्र0पु0ए0व0)। यथोपचारम् - यथा+उपचारम् (गुणसन्धिः), इवान्तिदेवः - इव+अन्तिदेवः (दीर्घसन्धिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

2.3.2 महर्षि एवं राजा का संवाद वर्णन—

धन्योऽस्म्यनुग्राह्यमिदं कुलं मे यन्मां दिदृक्षुर्भगवानुपेतः।
आज्ञाप्यतां किं करवाणि सौम्य शिष्योऽस्मि विस्रम्भितुमर्हसीति।।53।।

अन्वय:- धन्यः अस्मि, मे इदं कुलम् अनुग्राह्यं यत् मां दिदृक्षुः भगवान् उपेतः, आज्ञाप्यतां किं करवाणि। सौम्य! शिष्यः अस्मि, विस्रम्भितुम् अर्हसि इति।

व्याख्या:- धन्यः अस्मि = कृतज्ञो अस्मि, मे = मम, इदम् कुलम् = अयं वंशः, अनुग्राह्यम् = कृपापात्रम्, यत् = येन, माम् = मा, दिदृक्षुः = द्रष्टुकामः, भगवान् = भवान्, उपेतः = समायातः, आज्ञाप्यताम् = आदिश्यताम्, किम् करवाणि? = किं करवै, सौम्य = हे सौम्य्, शिष्यः अस्मि = अनुगामी वर्ते, विस्रम्भितुम् = विश्वसितुम् अर्हसि इति।

अर्थ :- धन्यः अस्मि = (मैं) धन्य हूँ, मे = मेरा, इदम् = यह, कुलम् = वंश, अनुग्राह्यम् = अनुगृहीत है, यत् = जो, माम् = मुझको, दिदृक्षुः = देखने के लिए, भगवान् = आप, उपेतः = आये, आज्ञाप्यताम् = आदेश करें (आज्ञा दीजिए), किम् = क्या, करवाणि = करूँ?, सौम्य! = हे सौम्य!, शिष्यः = शिष्य, अस्मि = हूँ, विस्रम्भितुम् अर्हति = विश्वास योग्य हूँ, इति = ऐसा।

अनुवाद:- मैं धन्य हूँ, मेरा यह कुल अनुगृहीत है जो कि आप मुझे देखने आये हैं। आज्ञा दीजिए, मैं क्या सेवा करूँ? हे सौम्य! मैं आपका शिष्य हूँ, विश्वास कीजिए।

टिप्पणी:- उपेतः - उप+इ+क्त प्रत्ययः। करवाणि - कृ धातुः (लोट् लकारः, उ0पु0ए0व0)। दिदृक्षुः - द्रष्टुमिच्छः - (दृश्+सन्+उ)।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

एवं नृपेणोपनिमंत्रितः सन् सर्वेण भावेन पुनिर्यथावत्।
स विस्मयोत्फुल्लविशालदृष्टिर्गम्भीरधीराणि वचांस्युवाच ।।54।।

अन्वय:- एवं नृपेण सर्वेण भावेन यथावत् उपनिमंत्रितः सः मुनिः विस्मयोत्फुल्लविशालदृष्टिः गम्भीर धीराणि वचांसि उवाच।

व्याख्या:- एवम् = इत्थम्, नृपेण = राज्ञा, सर्वेण भावेन = सम्पूर्णतया, यथावत् = विधिवत्, उपनिमंत्रितः = निवेदितः, सः मुनिः = असौ ऋषिः असितः, विस्मयोत्फुल्लविशालदृष्टिः सन् = आश्चर्यान्वित विशालनेत्रयुक्तः, गम्भीरधीराणि = गभीरधैर्यान्वितानि, वचांसि = वचनानि,उवाच = उवाद, अवदत्।

अर्थ :- एवम् = इस प्रकार, नृपेण = राजा के द्वारा, सर्वेण भावेन = सर्वथा नम्र भाव से, यथावत् = उचित प्रकार से, उपनिमंत्रितः = निवेदित, सः मुनिः = वह ऋषि, विस्मयोत्फुल्लविशालदृष्टिः = आश्चर्य से पुलकित एवं विशाल ने=वाले, सन् = होते हुए, गम्भीरधीराणि = गम्भीर और धीर, वचांसि = वचन, उवाच = बोले।

अनुवाद:- इस प्रकार राजा द्वारा सब प्रकार से उचितपूर्वक निवेदन किये जाने पर उस मुनि ने आश्चर्य से पुलकित विशाल नेत्र वाले होते हुए गम्भीर एवं धीर वचन कहे-

टिप्पणी:- विस्मयोत्फुल्लविशालदृष्टिः - विस्मयेन उत्फुल्ला विशाला दृष्टिः यस्य सः (बहुव्रीहिः)। गम्भीरधीराणि - गम्भीराणि च धीराणि च (द्वन्द्व समासः)। उपनिमन्त्रितः - उप+नि+मन्त्र्+क्त+सु। भावेन - भू+घञ्+टा। दृष्टिः - दृश्+क्तिन्।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

महात्मनि त्वय्युपपन्नमेतत् प्रियातिथौ त्यागिनि धर्मकामे।
सत्त्वान्वयज्ञानवयोऽनुरूपा स्निग्धा यदेवं मयि ते मतिः स्यात्।।55।।

अन्वय:- प्रियातिथौ, त्यागिनि धर्मकामे त्वयि महात्मनि एतत् उपपन्नत्, यत् एवं मयि ते सत्वान्वयज्ञानवयोऽनुरूपा स्निग्धा मतिः स्यात्।

व्याख्या:- प्रियातिथौ = बल्लभाभ्यागते, त्यागिनि = विरक्ते, धर्मकामे = धर्माभिलाषे, त्वयि महात्मनि = भवति महामनसि, एतत् = इदम्, उपपन्नम् = समुत्पन्नम्, यत् एवम् = इत्थम्, मयि = मुनौ, ते = तव (राज्ञः), सत्वान्वयज्ञानवयोऽनुरूपा = निजप्रकृतिकुलज्ञानावस्थानुकूला, स्निग्धा मतिः = सस्नेहमेधा, स्यात् = भवेत्।

अर्थ :- प्रियातिथौ = अतिथि-प्रिय, त्यागिनि = त्यागी, धर्माभिलाषी त्वयि महात्मनि = तुम जैसे महात्मा में, एतत् उपपन्नम् = यह उचित ही भाव उत्पन्न हुआ है, यत् = जो, एवम् = इस प्रकार, मयि = मुझ में, ते = तुम्हारी, सत्त्वान्वयज्ञानवयोऽनुरूपा = स्वभाव, कुल, ज्ञान एवं अवस्था के अनुरूप, स्निग्धा मतिः = प्रेममयी बुद्धि, स्यात् = हो रही है।

अनुवाद:- अतिथि प्रेमी, त्यागी एवं धर्माभिलाषी आप जैसे महात्मा में यह उचित ही भाव उत्पन्न हुआ है जो इस प्रकार मुझ में आपकी अपने स्वभाव, कुल, ज्ञान एवं अवस्था के अनुरूप स्नेह बुद्धि हो रही है।

टिप्पणी:- प्रियातिथौ - प्रियः अतिथिर्यस्य स, तस्मिन् (बहुव्रीहिः)। धर्मकामे - धर्म एव कामो यस्य सः, तस्मिन् (बहुव्रीहिः)। महात्मनि - महान चासौ आत्मा महात्मा, तस्मिन् (कर्मधारयः)। सत्वान्वयज्ञानवयोऽनुरूपा - सत्वश्च अन्वयश्च ज्ञानंच वयश्च - सत्वान्वय-ज्ञानवयः (द्वन्द्व समासः), सत्वान्वयज्ञानवयसाम् अनुरूपा (षष्ठी तत्पुरुषः)। त्यागिनि - त्यज्+घञ्+ङि। उपपन्नम् - उप+पत्+क्त।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग और परिकर अलंकार ।

एतच्च तद्येन नृपर्षयस्ते धर्मेण सूक्ष्मेण धनान्यवाप्य।
नित्यं त्यजन्तो विधिवत् बभूवुस्तपोभिराढ्या विभवैर्दरिद्राः।।56।।

अन्वय:- एतत् च तत् येन सूक्ष्मेण धर्मेण ते नृपर्षयः धनानि अवाप्य नित्यं विधिवत् त्यजन्तः तपोभिः आढ्या विभवैः दरिद्राः बभूवुः।

व्याख्या:- एतत् च तत् = अयं च स एव धर्मविधिः इति भावः, येन सूक्ष्मेण धर्मेण = अनेन गूढेन धर्मेण, ते नृपर्षयः = अमी राजर्षयः, धनानि = वित्तानि, अवाप्य = सम्प्राप्य, नित्यं = निरन्तरं विधिपूर्वकम्, त्यजन्तः = ददतः, तपोभिः आढ्या = अपस्याभिः समृद्धाः, विभवैः दरिद्राः = धनैः अकिंचनाः, बभूवुः = अभवन्।

अर्थ :- एतत् च तत् = यह वही धर्मविधि है, येन = जिस, सूक्ष्मेण धर्मेण = सूक्ष्म अर्थात् दुरूह धर्म से, ते नृपर्षयः = वे राजर्षि, धनानि = धन, अवाप्य = प्राप्त करके, नित्यं विधिवत् = निरन्तर विधिवत्, त्यजन्तः = त्यागते हुए अर्थात् दान करते हुए, तपोभिः आढ्या = तप से परिपूर्ण, विभवैः दरिद्राः = धन से रिक्त, बभूवुः = हो गये।

अनुवाद:- यह वही धर्मविधि है जिस सूक्ष्म धर्म से वे राजर्षि धन प्राप्त करके वह निरन्तर विधिवत् दान करते हुए तपस्या से परिपूर्ण एवं धन अर्थात् वैभव से रिक्त हो गये।

टिप्पणी:- एतच्च - एतत्+च (हल सन्धिः)। नृपर्षयस्ते - नृपर्षयः+ते (सत्वविसर्गसन्धिः)। धनान्यवाप्य- धनानि + अवाप्य (यण् सन्धिः)। त्यजन्तः - बभूवुः+तपोभिः (सत्वविसर्गसन्धिः)+आढ्या (रुत्वविसर्गसन्धिः)। अवाप्य - अव्+आप्+ल्यप् प्रत्ययः।

छन्द:- उपजाति छन्द।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार।

प्रयोजनं यत्तु ममोपयाने तन्मे श्रृणु प्रीतिमुपेहि च त्वम्।
दिव्या मयादित्यपथे श्रुता वाग्बोधाय जातस्तनयस्तवेति।।57।।

अन्वय:- तु मम उपयाने यत् प्रयोजनं तत् त्वं मे शृणु, प्रीतिं च उपेहि। आदित्यपथे मया दिव्या वाक् श्रुता तव तनयः बोधाय जातः इति।

व्याख्या:- तु = परन्तु, मम = मे (मुनेः), उपयाने = आगमने, यत् प्रयोजनम् = यदुद्देश्यम्, तत् त्वम् = तत् भवान्, मे = मम, श्रृणु = श्रवणगोचरी कुरु, प्रीतिं च = प्रसन्नंच, उपेहि = भव, आदित्यपथे = सूर्यमार्गे, मया = मुनिना, दिव्या वाक् = अलौकिकी वाणी, श्रुता = आकर्णिता, तव = ते, तनयः = पुत्रः, बोधाय = बुद्धत्वप्राप्त्यर्थम्, जातः इति = समुत्पन्नः इति।

अर्थ :- तु = किन्तु, मम = मेरे, उपयाने यत् = आने का जो, प्रयोजनम् = उद्देश्य, तत् = उसे (वह), त्वम् = तुम (आप), मे = मुझसे, श्रृणु = सुनो, प्रीतिं च = और प्रसन्न, उपेहि = हो जाओ, आदित्यपथे = सूर्यमार्ग में, मया = मेरे द्वारा, दिव्या वाक् = दिव्य वाणी, श्रुता = सुनी गई, तव तनयः = तुम्हारा पु=, बोधाय = बुद्धत्व के लिए, जातः = उत्पन्न हुआ है।

अनुवाद:- परन्तु मेरे आने का जो अभिप्राय है, उसे तुम सुनो और प्रसन्न हो जाओ। सूर्य के मार्ग में मैंने दिव्य वाणी सुनी है कि तुम्हारा पुत्र बुद्धत्व प्राप्ति के लिए उत्पन्न हुआ है।

टिप्पणी:- आदित्यपथे - आदित्यस्य पथः, तस्मिन् (ष0तत्पुरुषः)। प्रयोजनम् - प्र+युज्+ल्युट्। तन्मे - तत्+मे (हल् सन्धिः)। श्रृणु - श्रु (लोट् म0पु0ए0व0)। बोधाय - बुध्+घञ्+ङे। जातः - जन्+क्त+सु। मयादित्यपथे - मया+आदित्यपथे (दीर्घ सन्धिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द।

अलंकार:- अनुप्रास अलंकार।

श्रुत्वा वचस्तच्च मनश्च युक्त्वा ज्ञात्वा निमित्तैश्च ततोऽस्म्युपेतः।
दिदृक्षया शाक्यकुलध्वजस्य शक्रध्वजस्येव समुच्छ्रितस्य।।58।।

अन्वय:- तत् वचः श्रुत्वा मनः च युक्त्वा निमित्तैः च ज्ञात्वा ततः शक्रध्वजस्य इव समुच्छ्रितस्य शाक्यकुलध्वजस्य दिदृक्षया उपेतः अस्मि।

व्याख्या:- तत् वचः = तत् वचनम्, श्रुत्वा = निशम्य, मनः च = चित्तंच, युक्त्वा = योगेन संयुज्य, निमित्तैः च = शकुनैः च, ज्ञात्वा = बुद्ध्वा, ततः = तस्मात् स्थानात्, शक्रध्वजस्य इव = इन्द्रपताकाया इव, समुच्छ्रितस्य = समुन्नतस्य, शाक्यकुलध्वजस्य = शाक्यवंशपताकायाः, दिदृक्षया = द्रष्टुम् इच्छया (दर्शनेच्छया), उपेतः अस्मि = आगतोऽस्मि।

अर्थ :- तत् वचः = उस वाणी को, श्रुत्वा = सुनकर, मनः च = और मन को, युक्त्वा = योग युक्त कर, निमित्तैः च = तथा शकुनों से, ज्ञात्वा = जानकर, ततः = वहाँ से, शक्रध्वजस्य इव = देवराज इन्द्र की ध्वजा के समान, समृच्छ्रितस्य = अति उन्नत, शाक्यकुलध्वजस्य = शाक्यकुल की ध्वजा को, दिदृक्षया = देखने की इच्छा से, उपेतः अस्मि = यहाँ आया हूँ।

अनुवाद:- उस दिव्य वाणी को सुनकर और अपने मन को योग युक्त कर तथा शकुनों से जानकर वहाँ से देवराज इन्द की ध्वजा के समान अति उन्नत शाक्य कुल की ध्वजा को देखने की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

टिप्पणी:- शक्रध्वजस्य - शक्रस्य ध्वजः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुषः)। शाक्यकुलध्वजस्य - शाक्यानां कुलम् (षष्ठी तत्पुरुषः), शाक्यकुलस्य ध्वजः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुषः)। श्रुत्वा - श्रु+क्त्वा। वचस्तस्य - वचःरुतस्य (सत्व विसर्गसन्धिः)। युक्त्वा - युज्+क्त्वा। ज्ञात्वा - ज्ञा+क्त्वा। उपेतः - उप+इण्+क्त+सु। दिदृक्षया - दृश्+सन्+टा।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

इत्येतदेवं वचनं निशम्य प्रहर्षसंभ्रान्तगतिर्नरेन्द्रः।
आदाय धात्र्यङ्कगतं कुमारं सन्दर्शयामास तपोधनाय।।59।।

अन्वय:- इति एवम् एतत् वचनं निशम्य प्रहर्षसम्भ्रान्तगतिः नरेन्द्रः धात्र्यङ्कगतं कुमारम् आदाय तपोधनाय सन्दर्शयामास।

व्याख्या:- इति एवम् = इत्थम्, एतत् वचनम् = इदं वाचम्, निशम्य = आकण्र्य, प्रहर्षसम्भ्रान्तगतिः = प्रसन्नतया सम्भ्रान्तगतिः, नरेन्द्रः = राजा नृपो वा, धात्र्यङ्कगतम् = प्रतिपालिकाक्रोडस्थितम्, कुमारम् = राजपुत्रम्, आदाय = नीत्वा, तपोधनाय = तपस्विने, सन्दर्शयामास = अवलोकयामास।

अर्थ :- इति एवम् = इस प्रकार, एतत् वचनम् = यह वचन, निशम्य = सुनकर, प्रहर्षसम्भ्रान्तगतिः = अत्यन्त प्रसन्नता से शीघ्रगति वाले, नरेन्द्रः = राजा ने, धात्र्यङ्कगतम् = धाय की गोद में स्थित, कुमारम् = राजकुमार को, आदाय = लेकर, तपोधनाय = तपस्वी को, सन्दर्शयामास = दिखलाया।

अनुवाद:- इस प्रकार यह वचन सुनकर प्रसन्नता से शीघ्रगति वाले महाराज शुद्धोदन ने धाय की गोद में स्थित राजकुमार को लेकर मुनि असित को दिखलाया।

टिप्पणी:- प्रहर्षसम्भ्रान्तगतिः - प्रहर्षेण सम्भ्रान्ता गतिः यस्य सः (नरेन्द्रः) (बहुव्रीहिः)। धात्र्यङ्कगतम् - अङ्क गतः - अङ्कगतः (द्वि0 तत्पुरुषः), धात्र्याः अङ्कगतः, तं (ष0 तत्पुरुषः)। तपोधनाय - तपः एव धनं यस्य सः, तस्मै (बहुव्रीहिः)। आदाय - आ+दा+ल्यप्। निशम्य - नि+शम्+ल्यप्।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

2.3.3 शिशु वैशिष्टय का वर्णन—

चक्राङ्कपादं स ततो महर्षिर्जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम्।
सोर्णभ्रुवं वारणवस्तिकोशं सविस्मयं राजसुतं ददर्श।।60।।

अन्वयः- ततः सः महर्षिः चक्राङ्कपादं जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम् सोर्णभ्रुवम् वारणवस्तिकोशम् सविस्मयम् राजसुतम् ददर्श।

व्याख्याः- ततः = तदनन्तरम्, सः महर्षिः = असौ महामुनिः, चक्राङ्कपादम् = चक्राङ्कचरणम्, जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम् = पाशावनद्धाङ्गुलिहस्तचरणम्, सोर्णभ्रवुम् = भ्रूमध्ये रोमयुतम्, वारणवस्तिकोशम् = हस्त्यण्डकोषम्, राजसुतम् = कुमारम्, सविस्मयम् = साश्चर्यम्, ददर्श = दृष्टवान्।

अर्थ :- ततः = तत्पश्चात्, सः महर्षिः = उस महामुनि ने, चक्राङ्कपादम् = चक्र से चिह्नित पैरों वाले, जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम् = जाल की तरह परस्पर मिली हुई अंगुलियों से युक्त हाथ पैर वाले, सोर्णभ्रुवम् = बालों से युक्त भौंहोवाले, वारणवस्तिकोशम् = हाथी के समान अण्डकोश वाले, राजसुतम् = राजपु= को, सविस्मयम् = आश्चर्य पूर्वक, ददर्श = देखा।

अनुवादः- उसके पश्चात् उस महामुनि ने चक्र से चिह्नित पैरों वाले, जाल की तरह परस्पर मिली हुई अंगुलियों से युक्त हाथ पैर वाले, बालों से युक्त भौंहों वाले तथा हाथी के सदृश सूक्ष्म अण्डकोश वाले उस राजपुत्र को आश्चर्य पूर्वक देखा।

टिप्पणीः- जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम् - पाणी च पादौ च पाणिपादम् (द्वन्द्वः), जालम् इव अवनद्धाः अङ्गुलयः यस्मिन् जालावनद्धाङ्गुलिः (बहुव्रीहिः), जालावनद्धाङ्गुलिपाणी पादौ यस्य सः, जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादः, तम् (बहुव्रीहिः)। वारणवस्तिकोशम् - वारणस्य वस्तिकोश इव वस्तिकोशो यस्य सः, तम् (बहुव्रीहिः)। सोर्णभ्रुवम् - ऊर्णाभिः सहिता, या (सोर्णा), सोर्णे भ्रुवौ यस्य सः, सोर्णभ्रूः, तम् (बहुव्रीहिः)। सविस्मयम् - विस्मयेन सह (अव्ययीभावः)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

अलंकारः- उपमा अलंकार ।

4.4 सारांशः-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप ने जाना कि महर्षि असित का राजमहल में राजा के सम्मुख आगमन उनका विधिवत् पूजन, महर्षि एवं राजा का संवाद वर्णन तथा महर्षि द्वाराशिशु वैशिष्ट्य का वर्णन करते हूवे कहा की **'चक्राङ्कपादं स ततो महर्षिर्जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम्, सोर्णभ्रुवं वारणवस्तिकोशं सविस्मयं राजसुतं ददर्श'**अर्थात् महामुनि ने उस शिशु के चक्र से चिह्नित पैरों को, जाल की तरह परस्पर मिली हुई अंगुलियों से युक्त हाथ पैर को, बालों से युक्त भौंहों को तथा हाथी के सदृश सूक्ष्म अण्डकोश वाले उस राजपुत्र को देखा। इन सभी दृष्टांतों को देखकर कवि के काव्यशास्त्री होने के साथ ही उनके सामुद्रिकशास्त्री एवं ज्योतिषशास्त्री होने का भी प्रमाण हमें प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने से प्राप्त होता है।।

4.5 शब्दावलीः-

शब्द	=	**अर्थ**
इक्ष्वाकवः	=	इक्ष्वाकुवंश के
अबला	=	असमर्थ
द्विजैः	=	ब्राह्मणों के
जराम्	=	वृद्धावस्था
शाक्येश्वरस्य	=	शाक्यों के स्वामी (शुद्धोधन)
नरेन्द्रसद्म	=	राजमहल में
दरिद्राः	=	धन से रिक्त

शक्रध्वजस्य इव = देवराज इन्द्र की ध्वजा के समान
तपोधनाय = तपस्वी को
च्यवनः = ये महर्षि भृगु एवं पुलोमा के पुत्र थे।
अत्रिः = ऐसा माना जाता है कि ये ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। ऋषि अत्रि वेद के कई सूक्तों के द्रष्टा है।
आत्रेयः = ये सिद्ध पुरुष थे। लोक-लोकान्तर में इनकी अप्रतिहत गति थी।

4.6 बोध प्रश्नः-

1 . अबलाः शब्दध में कोन सा समास है।

क- द्वन्द्व य समास ख-तत्पुारूष समास
ग- तृ0तत्पुरुषः घ-बहुव्रीहिः समास

2. महर्षि एवं राजा का संवाद वर्णन किस सर्ग में है।

क- प्रथम सर्ग ख-द्वितीय सर्ग
ग-तृतीयय सर्ग घ- चतुर्थ सर्ग

3 . अवाप्य शब्द में प्रत्यय है।

क-टाप् ख- ल्यप्
ग- अण् घ-इक्

4. महर्षि असित के आगमन का वर्णन किस सर्ग में है।

क- द्वितीय सर्ग ख-प्रथम सर्ग
ग-तृतीयय सर्ग घ- चतुर्थ सर्ग

बोध प्रश्नों के उत्तर-

1. घ-बहुव्रीहिः समास
2. क- प्रथम सर्ग
3. ख- ल्यप्
4. ख-प्रथम सर्ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1988 ई. प्रथम भाग प्राक्कथन पृ0 7-8
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 70-73
3. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कपिलदेव द्विवेदी

4.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. बुद्धचरितम्, महाकवि अश्वघोष
4. वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी शब्दकोश।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. चतुर्थ इकाई का वैशिष्ट्य लिखिए।
2. किन्ही दो श्लोकों की विस्तृत व्यातख्या कीजिए।
3. महर्षि एवं राजा के संवाद वर्णन को वर्णित कीजिए।

खण्ड– प्रथम, इकाई – 05
बुद्धचरितम् प्रथम सर्ग (भगवत्प्रसूति) श्लोक संख्या– 61 से सर्गान्त पर्यन्त तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की पांचवी इकाई है। इस इकाई में श्लोक संख्या 61 से सर्गान्त पर्यन्त तक की व्याख्या की गई है। महाकवि अश्वघोष ने प्रस्तुत इकाई में पुत्रोत्सव प्रसंग वर्णन, मांड्लिक कर्मों का वर्णन तथा परिवार सहित कपिलवस्तु आगमन का वर्णन किया गया है।

अत: इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप उक्त वर्णनों के प्रसंगों का सम्यक रूप से अध्ययन करने में समर्थ होंगे।

5. 2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर कुशलता से दे सकेंगे।
- पुत्रोत्सव प्रसंग को रेखांकित कर सकेंगे।

❖ राजा शुद्धोधन एवं रानी मायादेवी का कपिलवस्तु में आगमन के कारण को जान सकेंगे।

5.3 श्लोंक संख्या 61 से सर्गान्त पर्यन्तक तक(भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

धात्र्यङ्कसंविष्टमवेक्ष्य चैनं देव्यङ्कसंविष्टमिवाग्निसूतुम्।
बभूव पक्ष्मान्तविचंचिताश्रुः निश्वस्य चैव त्रिदिवोन्मुखोऽभूत्।।61।।

अन्वयः- देव्यङ्कसंविष्टम् अग्निसूनुम् इव धात्र्यङ्कसंविष्टम् एनम् अवेक्ष्य (असितः) पक्ष्मान्तविचंचिताश्रुः बभूव निश्वस्य च त्रिदिवोन्मुखः एव अभूत्।

व्याख्या:- देव्यङ्कसंविष्टम् = देवीपार्वतीक्रोडसुप्तम्, अग्निसुतम् इव = कार्तिकेयसदृशम्, धात्र्यङ्कसंविष्टम् = प्रतिपालिकाङ्के सुप्तम्, एनम् = कुमारम्, अवेक्ष्य = अवलोक्य (असितः), पक्ष्मान्तविचंचिताश्रुः = नेत्रतीराद्विगलिताश्रुः, बभूव = अभवत्, निश्वस्य च = दीर्घं श्वसित्वा च, त्रिदिवोन्मुखः एव = स्वर्गोन्मुखः, आकाशं प्रति, अभूत् = बभूव।

अर्थ :- देव्यङ्कसंविष्टम् = देवी अर्थात् पार्वती की गोद में सोया हुआ, अग्निसूनुम् इव = कार्तिकेय के समान, धात्र्यङ्कसंविष्टम् = धाय की गोद में सोये हुए, एनम् = इस कुमार को, अवेक्ष्य = देखकर, (असित) पक्ष्मान्तविचंचिताश्रुः = ने= की बरौनियों पर आँसू, बभूव = आ गए, निश्वस्य = लम्बी सांस लेकर, च = और, त्रिदेवोन्मुखः = आकाश की तरफ उन्मुख (देखने लगे), एव = ही, अभूत् = हुए।

अनुवाद:- देवी पार्वती की गोद में सोये हुए कार्तिकेय के समान धाय की गोद में सोये हुए उस राजकुमार को देखकर महर्षि असित के आँख की बरौनियों पर आँसू आ गये और लम्बी सांस लेकर आकाश की ओर देखने लगे।

टिप्पणी:- देव्याङ्कसंविष्टम् - देव्याः अङ्कः देव्याङ्कः (ष0तत्पुरुषः), देव्याङ्के संविष्टम् (सं0तत्पुरुषः)। अग्निसूनुम् - अग्नेः सूनुः, तम् (ष0तत्पुरुषः)। धात्र्यङ्कसंविष्टम् - धात्र्यङ्के संविष्टम् (सं0तत्पुरुषः)। पक्ष्मान्तविचंचिताश्रुः - पक्ष्मान्ते विचंचितानि अश्रूणि यस्य सः (बहुव्रीहिः) निश्वस्य - नि+श्वस्+ल्यप्।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

दृष्ट्वासितं त्वश्रुपरिप्लुताक्षं स्नेहात्तनूजस्य नृपश्चकम्पे।
सगद्गदं वाष्पकषायकण्ठः पप्रच्छ सः प्रांजलिरानताङ्गः।।62।।

अन्वयः:- अश्रुपरिप्लुताक्षम् असितं दृष्ट्वा तु तनूजस्य स्नेहात् नृपः चकम्पे वाष्पकषायकण्ठः आनताङ्गः प्रांजलिः सः सगद्गदं पप्रच्छ।

व्याख्या:- अश्रुपरिप्लुताक्षम् = नयनाम्बुपूरितनेत्रम्, असितम् = मुनिविशेषम्, दृष्ट्वा तु = अवलोक्य तु, तनूजस्य = पुत्रस्य, स्नेहात् = अनुरागात्, नृपः = राजा, चकम्पे = अकम्पत, वाष्पकषायकण्ठः = अश्रुरुद्धगलः, आनताङ्गः = नतकायः, प्रांजलिः = सांजलिः, सः = नृपः, सगद्गदम् = परममुदितम्, पप्रच्छ = अपृच्छतम्।

अर्थ :- अश्रुपरिप्लुताक्षम् = आँसुओं से भरे हुए ने= वाले, असितम् = मुनि असित को, दृष्ट्वा तु = देखकर, तनूजस्य = पु= के, स्नेहात् = स्नेह से, नृपः = राजा, चकम्पे = कांप उठा, वाष्पकषायकण्ठः = अश्रु से रुंधे गले वाले, आनताङ्गः = झुके हुए अंगों वाले, प्रांजलि = हाथ जोड़े, सः = उस राजा ने, सगद्गदम् = गद्गद् स्वर में, पप्रच्छ = पूछा।

अनुवाद:- आँसुओं से भरे हुए नेत्र वाले मुनि असित को देखकर पुत्र-स्नेह से राजा काँप उठा। आँसुओं से अवरुद्ध गले वाले और झुके अंगों वाले अंजलिबद्ध उस राजा ने गद्-गद् स्वर में (असित से) पूछा।

टिप्पणी:- अश्रुपरिप्लुताक्षम् - अश्रुभिः परिप्लुतो अक्षिणी यस्य, सः, तम् (बहुव्रीहिः)। वाष्पकषायकण्ठः - वाष्पेण कषायः कण्ठः यस्य सः (बहुव्रीहिः)। आनताङ्गः- आनतानि अङ्गानि (बहुव्रीहिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार ।

अल्पान्तरं यस्य वपुः सुरेभ्यो बह्वद्भुतं यस्य च जन्म दीप्तम्।
तस्योत्तमं भाविनमात्थ चार्थं तं प्रेक्ष्य कस्मात्तव धीर वाष्पः।।63।।

अन्वयः - धीर! यस्य वपुः सुरेभ्यः अल्पान्तरं यस्य च जन्म दीप्तं बह्वद्भुतं च तस्य भाविनम् अर्थम् उत्तमम् आत्थ, तं प्रेक्ष्य कस्मात् तव वाष्पः?

व्याख्या:- - धीर = हे धीर! (असित!), यस्य = बालकस्य, वपुः = शरीरम्, सुरेभ्यः = देवेभ्यः, अल्पान्तरम् = स्वल्पान्तरम्, यस्य च = बालकस्य च, जन्म = उत्पत्तिः, दीप्तम् = देदीप्यमानम्, बह्वद्भुतं च = बह्वपूर्वं च, तस्य = अमुष्य, भाविनम् = स्वस्तनम्, आगामिनं वा,अर्थम्, उत्तम् = श्रेष्ठम्, आत्थ = उक्तम्, तम् = अमुम्, प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा, कस्मात् = किमर्थम्, तव = ते, वाष्पः = अश्रुपातः।

अर्थ :- धीर = हे धीर! (हे मुनि असित), यस्य = जिसका, वपुः = शरीर, सुरेभ्यः = देवताओं से, अल्पान्तरम् = थोड़ा ही अन्तर वाला है, यस्य च = और जिसका, जन्म = जन्म, दीप्तम् = देदीप्यमान, बह्वद्भुतं च = और बहुत अद्भुत, तस्य = उसका, भाविनम् = भावी, अर्थम् = अर्थ को,उत्तमम् = उत्तम, आत्थ = कहा है, तम् = उसको, प्रेक्ष्य = देखकर, कस्मात् = कैसे (क्यों) तव = तुम्हारे, वाष्पः = आँसू (आ गये)।

अनुवादः - हे धीर (हे मुनि असित) जिसके शरीर को देवताओं के थोड़े ही अन्तर वाला, जिसके जन्म को देदीप्यमान एवं बहुत अद्भुत तथा भावी अर्थ को उत्तम कहा है उसे देखकर आपको आँसू क्यों आये।

टिप्पणी:- बह्वद्भुतम् - बहु+अद्भुतम् (यण् सन्धिः)। दीप्तम् - दीप्+क्त (नपुं0)। तस्योत्तमम् - तस्य+उत्तमम् (गुणसन्धिः)। प्रेक्ष्य - प्र+ईक्ष्+ल्यप्। खल्विमम् - खलु+इमम् (यण् सन्धिः) उपैति - उप+इ (लट्, प्र0पु0ए0व0), लब्धा - लभ्+क्त (स्त्री0)।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अपि स्थिरायुर्भगवन् कुमारः कच्चिन्न शोकाय मम प्रसूतः।
लब्धा कथंचित्सलिलांजलिर्मे न खल्विमं पातुमुपैति कालः।।64।।

अन्वयः - भगवन्! अपि कुमारः स्थिरायुः? कच्चित् मम शोकाय न प्रसूतः, कथंचित् लब्धा मे सलिलांजलिः खलु इमं पातुं कालः न उपैति?

व्याख्या:- भगवन् = हे मुनि!, अपि कुमारः = राजकुमारः, स्थिरायुः = दीर्घायुः, कच्चित् = क्वचित्, मम = मे, शोकाय = परितापाय, न प्रसूतः = न जनितः, कथंचित् लब्धा = दुष्करतया प्राप्ता, मे = मह्यम्, सलिलांजलिः = जलांजलिः, खलु = तु, इमम् = जलांजलिम्, पातुम् = पानाय, कालः = समयः, न उपैति = नैव समुपैति।

अनुवादः - हे मुनि! राजकुमार दीर्घायु है न? कहीं मेरे शोक के लिए तो उत्पन्न नहीं हुआ है? कहीं जो जलांजलि बड़ी कठिनाई से मुझे प्राप्त हुई है, इसे पीने के लिए काल तो नहीं आ रहा है? अर्थात् मेरी मृत्यु के बाद जलांजलि के लिए कुमार जीवित तो रहेगा?

टिप्पणी:- जलांजलिः - जलस्य अंजलिः (षष्ठी तत्पुरुषः)। स्थिरायुर्भगवन् - स्थिरायुः+भगवन् (रुत्व विसर्ग सन्धिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अप्यक्षयं मे यशसो निधानं कच्चिद् ध्रुवो मे कुलहस्तसारः।
अपि प्रयास्यामि सुखं परत्र सुप्तोऽपि पुत्रेऽनिमिषैकचक्षुः।।65।।

अन्वयः- अपि मे यशसः निधानम् अक्षयम्? कच्चित् मे कुलहस्तसारः ध्रुवः? अपि सुप्तः अपि पुत्रे अनिमिषैकचक्षुः परत्र सुखं प्रयास्यामि ?

व्याख्या:- अपि = कच्चित्, मे = मम, यशसः = कीर्तेः, निधानम् = कोषः, अक्षयम् = क्षयरहितम्, कच्चित् = क्वचित्, मे = मम, कुलहस्तसारः = वंशकरार्जनम्, ध्रुवः = स्थिरः, अपि = क्वचित्, सुप्तः = शयानः, अपि = अपि च, पुत्रे = सुते, अनिमिषैकचक्षुः = उन्मिषितैकनेत्रम्, परत्र = लोकांतरम्, सुखम् = सुखपूर्वकम्, प्रयास्यामि = यास्यामि।

अर्थ:- अपि = क्या, मे = मेरा, यशसः = ख्याति, निधानम् = कोश, अक्षयम् = क्षयरहित, कच्चित् = कहीं, मे = मेरे, कुलहस्तसारः = वंश के हाथों की कमाई (राजपाट), ध्रुवः निश्चल, अपि = क्या, सुप्तः अपि = सोया हुआ भी, पुत्रे = पु= में, अनिमिषैकचक्षुः = एक आँख को खुले रखने वाले, पर= = परलोक को, सुखम् = सुखपूर्वक, प्रयास्यामि = जाऊँगा।

अनुवादः - मेरा यश रूपी कोष क्षय रहित तो है न? मेरे कुल द्वारा कमाया हुआ राजपाट निश्चल है न? पुत्र के सोने पर भी उसके लिए एक आँख खुला रखने वाला मैं परलोक सुखपूर्वक तो जाऊँगा?

टिप्पणी:- अनिमिषैकचक्षुः - एकः चक्षुः (कर्मधारय समासः), नास्ति निमेषो यस्मिन् तत् अनिमिषम्, अनिमिषम् एकचक्षुः यस्य सः (बहुव्रीहि समासः)। कुलहस्तसारः - कुलस्य हस्तसारः (ष0तत्पुरुषः)। सुप्तः - स्वप्+क्त प्रत्ययः।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

कच्चिन्न मे जातमफुल्लमेव कुलप्रवालं परिशोषभागि।
क्षिप्रं विभो ब्रूहि न मेऽस्ति शान्तिः स्नेहं सुते वेत्सि हि बान्धवानाम्।।66।।

अन्वयः - कच्चित् मे जातं कुलप्रवालम् अफुल्लम् एव न परिशोषभागि? विभो! क्षिप्रं ब्रूहि, मे शान्तिः न अस्ति, हि सुते बान्धवानां स्नेहं वेत्सि।

व्याख्या:- कच्चित् = क्वचित्, मे = मम, जातम् = उत्पन्नम्, कुलप्रवालम् = वंशप्ररोहः, अफुल्लम् एव = अविकचम् एव, न = नो, परिशोषभागि = शुषकांशकः, विभो = हे स्वामिन्!, क्षिप्रम् = शीघ्रम्, ब्रूहि = वद, मे = मह्यम्, शान्तिः = प्रशमः, न = नो, अस्ति = वर्तते, हि = यतः, सुते = पुत्रे, बान्धवानाम् = सजातीयानाम्, स्नेहम् = अनुरागम्, वेत्सि = जानासि।

अर्थ :- कच्चित् = क्या, मे = मेरा, जातम् = उत्पन्न, कुलप्रवालम् = कुल का अंकुर, अफुल्लम् एव = बिना खिले ही, न = नहीं, परिशोषभागि = सूख जायेगा, विभो = हे स्वामी, क्षिप्रम् = शीघ्र, ब्रूहि = बताइए, मे = मुझे, शान्तिः = शान्ति, न = नहीं, अस्ति = है, हि = क्योंकि, सुते = पु= में (पु= के प्रति), बान्धवानाम् = बन्धुओं का, स्नेहम् = प्रेम, वेत्सि = जानते ही हो।

अनुवादः - क्या यह उत्पन्न मेरे कुल का अङ्कुर (पुत्र) बिना खिले ही सूख तो नहीं जायेगा? हे स्वामी! शीघ्र बतायें मुझे शान्ति नहीं है क्योंकि पुत्र के प्रति बन्धुजनों का स्नेह आप जानते ही हैं।

टिप्पणी:- कुलप्रवालम् - कुलस्य प्रवालः, तम् (षष्ठी तत्पुरुषः)। कच्चिन्न - कच्चित्+न (हल् सन्धिः)। ब्रूहि - ब्रू (लोट्, मध्यम पुरुष एकवचनम्), मेऽस्ति - मे+स्ति (पूर्वरूपसन्धिः), शान्तिः - शम्+क्तिन् (स्त्री0)।, स्नेहम् - स्निह् + घञ् प्रत्ययः।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- रूपक एवं हेतु अलंकार ।

इत्यागतावेगमनिष्टबुद्ध्या बुद्ध्वा नरेन्द्रं स मुनिर्बभाषे।

मा भून्मतिस्ते नृप काचिदन्या निःसंशयं तद्यदवोचमस्मि।।67।।

अन्वयः:- अनिष्टबुद्ध्या इति आगतावेगं नरेन्द्रं बुद्ध्वा सः मुनिः बभाषे। मा भूत् मतिः ते नृप! काचित् अन्या निःसंशयम् तत् यत् अवोचम् अस्मि।

व्याख्या:- अनिष्टबुद्ध्या = अनपेक्षिताशङ्कया, इति = एवम्, आगतावेगम् = आकुलम्, नरेन्द्रम् = नृपम्, बुद्ध्वा = ज्ञात्वा, सः = असौ, मुनिः = राजर्षिः, बभाषे = उवाच, नृप = हे राजन्!, ते = तव, मतिः = बुद्धिः, काचित् = काऽपि, अन्या = अपरा, मा भूत् = ना भूत्, यत् = यत्किंचित्, अवोचम् = अवादिषम्, तत् = अदः, निसंशयम् = निःशंकम्, (भविष्यति)।

अर्थ :- अनिष्टबुद्ध्या = अनिष्ट की आशंका से, इति = ऐसा, आगतावेगम् = व्याकुल होने वाले, नरेन्द्रम् = राजा को, बुद्ध्वा = जानकर, सः = उस, मुनिः = मुनि ने, बभाषे = कहा, नृप = हे राजन्! ते = तुम्हारी, मतिः = बुद्धि, काचित् = कोई, अन्या = अन्य प्रकार की, मा भूत् = नहीं हो, यत् = जो, अवोचम् = (मैंने) कहा, तत् = वह, निःसंशयम् = निःसन्देह (होगा)।

अनुवादः:- अनिष्ट की आशंका से इस प्रकार व्याकुल राजा को जानकर उस असित मुनि ने कहा - हे राजन्! आपकी बुद्धि अन्य प्रकार की न हो, जो कुछ मैंने कहा है, वह निःसन्देह होगा।

टिप्पणी:- निःसंशयम् - संशयेन रहितम् (अव्ययीभाव समासः)। इत्यागतावेगम् - इति+आगतावेगम् (यण् सन्धिः)। बुद्ध्या - बुध्+क्तिन् (तृ0ए0व0), बुद्ध्वा - बुध् + क्त्वा।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अलंकार:- अनुप्रास अलंकार ।

नास्यान्यथात्वं प्रति विक्रिया मे स्वां वंचनां तु प्रति विक्लवोऽस्मि।
कालो हि मे यातुमयं च जातो जातिक्षयस्यासुलभस्य बोद्धा।।68।।

अन्वय:- अस्य अन्यथात्वं प्रति मे विक्रिया न तु स्वां वंचनां प्रति विक्लवः अस्मि, हि मे यातुं कालः जातः, अयं च असुलभस्य जातिक्षयस्य बोद्धा।

व्याख्या:- अस्य = राज्ञः, अन्यथात्वं प्रति = अनिष्टं प्रति, मे = मह्यम्, विक्रिया = विकृतिः, न = नो, तु = तर्हि, स्वां वंचनां प्रति = निजं विप्रलम्भं प्रति, विक्लवः = भयाक्रान्तः, अस्मि = वर्ते, हि = यतः, मे = मम, यातुम् = गन्तुम्, कालः = समयः, जातः = आगतः, अयं = एषः, च = अपि च, असुलभस्य = दुर्लभस्य, जातिक्षयस्य = जन्मक्षयस्य, बोद्धा = ज्ञाता, (अस्मि)।

अर्थ :- अस्य = राजा के, अन्यथात्वं प्रति = अनिष्ट के प्रति, मे = मुझको, विक्रिया = विकृति, न = नहीं है, तु = तो, स्वां वंचनां प्रति = अपने वंचित होने के प्रति, विक्लवः = भयाक्रान्त, अस्मि = हूँ, हि = क्योंकि, मे = मेरे, यातुम् = जाने का (मृत्यु का), कालः = समय, जातः = हो गया है, अयं च = और यह, असुलभस्य = दुर्लभ का, जातिक्षयस्य = जन्मनाश का, बोद्धा = ज्ञाता (है)।

अनुवाद:- इसके अनिष्ट के प्रति मुझमें विकार (अश्रुपात) नहीं हुआ है। मैं वंचित हो रहा हूँ, इसलिए विकल (उत्साह शून्य) हूँ। क्योंकि मेरे जाने का (मृत्युकाल) समय आ गया है और यह दुर्लभ जन्मनाश (निर्वाण) का ज्ञाता हुआ है।

टिप्पणी:- असुलभस्य - न सुलभः, तस्य (नञ् तत्पुरुषः)। जातिक्षयस्य - जातेः क्षयः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुषः)। नास्यान्यथात्वम् - न+अस्य+अन्यथात्वम् (दीर्घ सन्धिः)। विक्लवोऽस्मि - विक्लवः+अस्मि (उत्व, गुण, पूर्वरूप सन्धिः), जातः - जन् + क्त (पु0)। बोद्धा - बुध् + तृच्।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिङ्ग अलंकार ।

विहाय राज्यं विषयेष्वनास्थस्तीव्रैः प्रयत्नैरधिगम्य तत्त्वम्।

जगत्ययं मोहतमो निहन्तुं ज्वलिष्यति ज्ञानमयो हि सूर्यः।।69।।

अन्वयः- विषयेषु अनास्थः राज्यं विहाय तीव्रैः प्रयत्नैः तत्त्वम् अधिगम्य जगति मोहतमः निहन्तुं हि अयं ज्ञानमयः सूर्यः ज्वलिष्यति।

व्याख्या:- विषयेषु = रूपरसादिषु इन्द्रियाणां विषयेषु, अनास्थः = अनासक्तः, राज्यम् = राष्ट्रम्, विहाय = त्यक्त्वा, तीव्रैः = अत्यधिकैः, प्रयत्नैः = आयासैः, तत्त्वम् = सारम्, अधिगम्य = सम्प्राप्य, जगति = संसारे, मोहतमः = मोहान्धकारम्, निहन्तुम् = नाशयितुम्, हि = निश्चयेन, अयम् = कुमारः, ज्ञानमयः = चिन्मयः, सूर्यः = भानुः (राजपुत्रः), ज्वलिष्यति = द्योतिष्यते।

अर्थ :- विषयेषु = विषयों में (इन्द्रियादि), अनास्थः = अनासक्त होकर, राज्यम् = राज्य को, विहाय = त्यागकर, तीव्रैः प्रयत्नैः = अत्यधिक प्रयत्न से, तत्त्वम् = तत्त्व को, अधिगम्य = जानकर/समझकर, जगति = संसार में, मोहतमः = मोहरूप अन्धकार को, निहन्तुम् = नष्ट करने के लिए, हि = निश्चय ही, अयम् = यह, ज्ञानमयः = ज्ञानरूप, सूर्यः = सूर्य (राजकुमार), ज्वलिष्यति = प्रकाशित होगा।

अनुवाद:- विषयादि भोगों से विरक्त होकर, राज्य को त्यागकर, अत्यधिक प्रयासों से तत्त्वज्ञान प्राप्तकर संसार में मोहरूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए यह ज्ञानरूप सूर्य (राजकुमार) प्रकाशित होगा।

टिप्पणी:- विषयेष्वनास्थस्तीव्रैः - विषयेषु+अनास्थः+तीव्रैः(यणसन्धिः, विसर्गसन्धिः)। प्रयत्नैरधिगम्य - प्रयत्नैः+अधिगम्य (रुत्वविसर्गसन्धिः)। जगत्ययम् - जगति+अयम् (यण् सन्धिः)। निहन्तम् - नि+हन्+तुमुन्। ज्ञानमयः - ज्ञान+मयट्। अधिगम्य - अधि+गम्+ल्यप्। प्रयत्नैः - प्र+यत्+नङ् (तृ0वि0ब0व0)। ज्वलिष्यति - ज्वल् (लृट्, प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- रूपक तथा काव्यलिङ्ग अलंकार ।

दुःखार्णवाद् व्याधिविकीर्णफेनाज्जरातरङ्गान्मरणोग्रवेगात्।
उत्तारयिष्यत्ययमुह्यमानमार्तं जगज्ज्ञानमहाप्लवेन।।70।।

अन्वयः- व्याधिविकीर्णफेनात् जरातरङ्गात् मरणोग्रवेगात् दुःखार्णवात् उह्यमानम् आर्तं जगत् अयं ज्ञानमहाप्लवेन उत्तारयिष्यति।

व्याख्या:- व्याधिविकीर्णफेनात् = रुजाव्याप्ताम्बुकफात्, जरातरङ्गात् = वृद्धावस्थाभङ्गात्, मरणोग्रवेगात् = निधनतीव्रप्रवेगात्, दुःखार्णवात् = दुःखसागरात्, उह्यमानम् = क्षर्यमाणम्, आर्तम् = उपहतम्, जगत् = संसारम्, अयम् = एषः कुमारः, ज्ञानमहाप्लवेन = बोधविशालोडुपेन, उत्तारयिष्यति = पारं नेष्यति।

अर्थ :- व्याधिविकीर्णफेनात् = रोग या विपत्ति से व्याप्त फेन से, जरातरङ्गात् = वृद्धावस्थारूपी तरङ्ग से, मरणोग्रवेगात् = मृत्युरूपी तीव्र वेग वाले, दुःखार्णवात् = दुःखरूपी सागर से, उह्यमानम् = बहते हुए, आर्तम् = पीड़ित, जगत् = संसार को, अयम् = यह, ज्ञानमहाप्लवेन = ज्ञानरूपीविशाल नाव से, उत्तारयिष्यति = पार लगायेगा अर्थात् उद्धार करेगा।

अनुवाद:- व्याधि (विपत्ति) रूप फेन से व्याप्त, वृद्धावस्था रूप तरंगों वाला मृत्युरूप तीव्र वेग वाला, दुःख रूप सागर से बहते हुए पीड़ित संसार को यह (कुमार) ज्ञानरूपी विशाल नौका के द्वारा पार उतारेगा अर्थात् संसार के प्राणियों का उद्धार करेगा।

टिप्पणी:- ज्ञानमहाप्लवेन - ज्ञानमेव महाप्लवः तेन (कर्मधारयः)। दुःखार्णवात् - दुःखानाम् अर्णवः, तस्मात् (ष0तत्पुरुषः)। उत्तारयिष्यति - उत्+तृ+णिच् (लृट्, प्र0पु0ए0व0)। ज्ञानम् - ज्ञान+ल्युट्।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- रूपक अलंकार ।

प्रज्ञाम्बुवेगां स्थिरशीलवप्रां समाधिशीतां व्रतचक्रवाकाम्।
अस्योत्तमां धर्मनदीं प्रवृत्तां तृष्णार्दितः पास्यति जीवलोकः।।71।।

अन्वयः:- अस्य प्रवृत्तां प्रज्ञाम्बुवेगाम् स्थिरशीलवप्रां समाधिशीतां व्रतचक्रवाकाम्। अस्य उत्तमाम् धर्मनदीम् प्रवृत्ताम् तृष्णार्दितः पास्यति जीवलोकः।

व्याख्याः- अस्य = कुमारस्य, प्रवृत्ताम् = प्रवर्तिताम्, प्रज्ञाम्बुवेगाम् = बुद्धिजलप्रवाहाम्, स्थिरशीलवप्राम् = अचलशीलकूलांम्, समाधिशीताम् = समाधानशीतलाम्, व्रतचक्रवाकाम् = व्रतकोकाम्, उत्तमाम् = श्रेष्ठाम्, धर्मनदीम् = धर्मसरितम्, तृष्णार्दितः = लिप्सापीडितः, जीवलोकः = प्राणिलोकः, पास्यति = आचमिष्यति।

अर्थ :- अस्य = कुमार का, प्रवृत्ताम् = प्रवर्तित, प्रज्ञाम्बुवेगाम् = प्रज्ञारूपी जल प्रवाह वाली, स्थिरशीलवप्राम् = अचलीशीलरूप तट वाली, समाधिशीतम् = समाधिरूप शीतलता युक्त, व्रतचक्रवाकाम् = व्रतरूप चकवा (पक्षी) से युक्त, उत्तमाम् = श्रेष्ठ, धर्मनदीम् = धर्मरूपी नदी को, तृष्णार्दितः = लालसा से पीड़ित, जीवलोकः = जीवलोक, पास्यति = पीयेंगे।

अनुवादः- इस कुमार के द्वारा प्रवर्तित, प्रज्ञा रूप जल प्रवाह वाली अचलशील रूप तट वाली, समाधि रूप शीतलता से युक्त, व्रतरूप चकवा पक्षी से युक्त, उत्तम धर्मनदी के जल का पान तृष्णा से पीड़ित जीवलोक करेगा।

टिप्पणीः- धर्मनदी - धर्म एव नदी (कर्मधारयः)। तृष्णार्दितः - तृष्णया अर्दितः (तृतीया तत्पुरुषः)। जीवलोकः - प्र+वृत्+क्त+टाप्+अम्। अस्योत्तमाम् - अस्य+उत्तमाम् (गुणसन्धिः)।

छन्दः- उपजाति छन्द ।

अलंकारः- रूपक अलंकार ।

दुःखार्दितेभ्यो विषयावृतेभ्यः संसारकान्तारपथस्थितेभ्यः।
आख्यास्यति ह्येष विमोक्षमार्गं मार्गप्रनष्टेभ्य इवाध्वगेभ्यः।।72।।

अन्वयः- एषः हि दुःखार्दितेभ्यः विषयावृतेभ्यः संसारकान्तारपथस्थितेभ्यः मार्गप्रनष्टेभ्यः अध्वगेभ्यः इव विमोक्षमार्गम् आख्यास्यति।

व्याख्याः- एषः = अयं कुमारः, हि = निश्चयेन, दुःखार्दितेभ्यः = क्लेशपीडितेभ्यः, विषयावृत्तेभ्यः = इन्द्रियादिविषयलिप्तेभ्यः, संसारकानतारपथस्थितेभ्यः = जगत्काननमार्गावलम्बितेभ्यः, मार्गप्रनष्टेभ्यः = पथभ्रष्टेभ्यः, अध्वगेभ्यः = पथिकेभ्यः, इव = यथा, विमोक्षमार्गम् = मुक्तिपथम्, आख्यास्यति = वक्ष्यति।

अर्थ :- एषः = यह (कुमार), हि = निश्चित ही, दुःखार्दितेभ्यः = कष्ट से पीड़ित जनों के लिए, विषयावृतेभ्यः = इन्द्रियादिविषयों से लिप्त, संसारकान्तारपथस्थितेभ्यः = संसार रूपी विशाल अरण्यमार्ग पर स्थित लोगों के लिए, मार्गप्रनष्टेभ्यः = मार्ग से भटके हुए, अध्वगेभ्यः = पथिकों के लिए, इव = समान, विमोक्षमार्गम् = मुक्ति का मार्ग, आख्यास्यति = बतायेगा।

अनुवादः - यह कुमार क्लेश से पीड़ित, विषयभोगों में लिप्त तथा संसार रूपी अरण्य मार्ग पर अवस्थित लोगों को मार्ग से भटके हुए पथिकों के समान मोक्ष-मार्ग बतायेगा।

टिप्पणीः- दुःखार्दितेभ्यः - दुःखैः अर्दितेभ्यः (तृ0तत्पुरुषः)। विषयावृत्तेभ्यः - विषयैः आवृतेभ्यः (तृ0 तत्पुरुषः)। संसारकान्तारपथस्थितेभ्यः - संसार एव कान्तारः (कर्मधारयः), तस्य पथे स्थितेभ्यः (तत्पुरुषः)। ह्येषः - हि+एषः (यण् सन्धिः)।

छन्दः- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अलंकारः- उपमा एवं रूपक अलंकार।

विदह्यमानाय जनाय लोके रागाग्निनायं विषयेन्धनेन।
प्रह्लादमाधास्यति धर्मवृष्ट्या महामेघ इवातपान्ते।।73।।

अन्वयः:- आतपान्ते वृष्ट्या महामेघ एव अयं लोके विषयेन्धनेन रागाग्निना विदह्यमानाय जनाय धर्मवृष्ट्या प्रह्लादम् आधास्यति।

व्याख्या:- आतपान्ते = निदाघावसाने, वृष्ट्या = वर्षया, महामेघ इव = जलद सदृशः, अयम् = एषः कुमारः, लोके = जगति, विषयेन्धनेन = इन्द्रियादिविषयैधेन, रागाग्निना = अनुरागवह्निना, विदह्यमानाय = ज्वल्यमानाय, जनाय = मनुजाय, धर्मवृष्ट्या = धर्मवर्षया, प्रह्लादम् = आह्लादम्, आधास्यति = आधास्यते।

अर्थ :- आतपान्ते = ग्रीष्मऋतु की समाप्ति पर, वृष्ट्या = वर्षा के द्वारा, महामेघ इव = महामेघ के समान, अयम् = यह कुमार, लोके = संसार में, विषयेन्धनेन = विषयरूपी इंधन से, रागाग्निना = आसक्तिरूपी अग्नि से, विदह्यमानाय = जलने वाले, जनाय = लोगों के लिए, धर्मवृष्ट्या = धर्म की वर्षा के द्वारा, प्रह्लादम् = आनन्द को, आधास्यति = प्रदान करेगा।

अनुवाद:- ग्रीष्मऋतु के अन्त में वर्षा से महामेघ के समान यह कुमार संसार में विषयरूपी ईंधन और आसक्तिरूपी अग्नि से जल रहे लोगों को धर्म की वर्षा से आह्लादित करेगा।

टिप्पणी:- धर्मवृष्ट्या - धर्म एव वृष्टिस्तया (कर्मधारयः)। विषयेन्धनेन - विषय एव इन्धनं तेन (कर्मधारयः)। महामेघः - महान्तश्चासौ मेघः (कर्मधारयः)। आधास्यति - आ+धा धातुः (लृट् लकारः प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- रूपक एवं उपमा अलंकार ।

तृष्णार्गलं मोहतमः कपाटं द्वारं प्रजानामपयानहेतोः।
विपाटयिष्यत्ययमुत्तमेन सद्धर्मताडेन दुरासदेन।।74।।

अन्वयः:- अयं प्रजानाम् अपयानहेतोः मोहतमः कपाटं तृष्णार्गलं द्वारम् उत्तमेन दुरासदेन सद्धर्मताडेन विपाटयिष्यति।

व्याख्या:- अयम् = एषः (कुमारः), प्रजानाम् = राज्यनिवासिनाम्, अपयानहेतोः = गमनाय, मोहतमः = मोहान्धकारम्, कपाटम् = अररम्, तृष्णार्गलम् = लिप्साकपाटावष्टम्भकमुसलम्, द्वारम् = कपाटम्, उत्तमेन = श्रेष्ठेन, दुरासदेन = दुर्धर्षेण, सद्धर्मताडेन = सुधर्मप्रहारेण, विपाटयिष्यति = त्रोटयिष्यति।

अर्थ :- अयम् = यह कुमार, प्रजानाम् = निवासियों के, अपयानहेतोः = बाहर जाने के लिए, मोहतमः = मोहान्धकार रूपी, कपाटम् = किवाड़ को, तृष्णार्गलम् = तृष्णा रूपी अर्गला वाले, द्वारम् = दरवाजे को, उत्तमेन = श्रेष्ठ, दुरासदेन = दुरुह, सद्धर्मताडेन = धर्मप्रहार से, विपाटयिष्यति = फाड़ देगा।

अनुवाद:- राजकुमार प्रजा के बाहर निकलने (मोक्षा) के लिए मोहान्धकार रूपी किवाड़ को एवं तृष्णारूपी अर्गला वाले दरवाजे का उत्तम तथा दुरूह धर्म के प्रहार से तोड़ डालेगा।

टिप्पणी:- तृष्णार्गलम् - तृष्णा एव अर्गलस्तम् (कर्मधारयः)। मोहतमः - मोह एव तमः (कर्मधारयः)। विपाटयिष्यति - वि+पट्+णिच् (लृट्, प्र0पु0ए0व0)। विपाटयिष्यत्ययम् - विपाटयिष्यति+अयम् (यण् सन्धिः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- रूपक अलंकार ।

स्वैर्मोहपाशैः परिवेष्टितस्य दुःखाभिभूतस्य निराश्रयस्य।
लोकस्य संबुध्य च धर्मराजः करिष्यते बन्धनमोक्षमेषः।।75।।

अन्वयः:- एषः धर्मराजः च संबुध्य स्वैः मोहपाशैः परिवेष्टितस्य दुःखाभिभूतस्य निराश्रयस्य लोकस्य बन्धनमोक्षं करिष्यते।

व्याख्या:- एषः = अयम् (कुमारः), धर्मराजः = धर्मस्य राजा (तथागतः), संबुध्य = बुद्धत्वं प्राप्य, स्वैः = स्वकीयैः, मोहपाशैः = स्नेहजालैः, परिवेष्टितस्य = आवेष्टकस्य, दुःखाभिभूतस्य = क्लेशार्दितस्य, निराश्रयस्य = आश्रयरहितस्य, लोकस्य = जगतः, बन्धनमोक्षम् = निरोधरहितम्, करिष्यते = करिष्यति।

अर्थ :- एषः = यह (कुमार), धर्मराजः = धर्मराज, च = और, संबुध्य = बुद्धत्व को प्राप्त कर, स्वैः = अपने, मोहपाशैः = मोहजाल से, परिवेष्टितस्य = बँधे हुए का, दुःखाभिभूतस्य = कष्ट से पीड़ित का, निराश्रयस्य = आश्रय रहित का, लोकस्य = जगत् का, बन्धनमोक्षम् = बन्धनमुक्त, करिष्यते = करेगा।

अनुवादः:- और यह धर्म का राजा बुद्धत्व प्राप्त करके अपने मोहपाश से बँधे हुए, दुःख से पीड़ित एवं आश्रय हीन जगत् का बन्धन खोलगा।

टिप्पणी:- मोहपाशैः - मोह एव पाशस्तैः (कर्मधारयः)। स्वैर्मोहपाशैः - स्वैः+मोहपाशैः (रूत्व विसर्ग सन्धिः)। दुःखाभिभूतस्य - दुःखैः अभिभूतस्य (तृ0तत्पुरुषः)। निराश्रयस्य - आश्रयेण रहितस्य (अव्ययीभावः)।बन्धनमोक्षम् - बन्धनात् मोक्षम् (पं0 तत्पुरुषः)। संबुध्य - सम्+बुध्+ल्यप्। करिष्यते - कृ आत्मनेपदी धातु (लृट्, प्र0पु0ए0व0)।

छन्दः:- उपजाति छन्द ।

तन्मा कृथाः शोकमिमं प्रति त्वमस्मिन्स शोच्योऽस्ति मनुष्यलोके।
मोहेन वा कामसुखैर्मदाद्वा यो नैष्ठिकं श्रोष्यति नास्य धर्मम्।।76।।

अन्वयः:- तत् त्वम् इमं प्रति शोकं मा कृथा, अस्मिन् मनुष्यलोके सः शोच्यः अस्ति यः मोहेन वा कामसुखैः वा मदात् अस्य नैष्ठिकम् धर्मं न श्रोष्यति।

व्याख्या:- तत् त्वम् = अतः भवान्, इमं प्रति = कुमारं प्रति, शोकम् = परितापम्, मा कृथाः = मा कार्षीः, अस्मिन् = एतस्मिन्, मनुष्यलोके = जीवलोके, सः = असौ, शोच्यः = विमृश्यः, अस्ति = विद्यते, यः मोहेन = यः भ्रमेन, वा = अथवा, कामसुखैः = मदनमोदैः, वा = च, मदात् = दर्पात्, अस्य = एतस्य, नैष्ठिकं धर्मम् = शाश्वतं सद्धर्मम्, न = नो, श्रोष्यति = निशमिष्यति।

अर्थ :- तत् त्वम् = अतः तुम, इमं प्रति = इसके प्रति, शोकम् = शोक को, मा कृथाः = न करें, अस्मिन् = इस, मनुष्यलोके = मनुष्य लोक में, सः = वह, शोच्यः = सोचने योग्य, अस्ति = है, यः = जो, मोहेन = मोह से, वा = अथवा, कामसुखैः = कामजन्य सुख से, वा = या, मदात् = मद के कारण, अस्य = इसका, नैष्ठिकं धर्मम् = शाश्वत् धर्म को, न = नहीं, श्रोष्यति = सुनेगा।

अनुवादः:- अतः तुम (आप) इसके (बालक के) विषय में शोक न करें। इस मनुष्य लोक में वह (मनुष्य) सोचने योग्य है जो मोह से अथवा कामजन्य सुख से या मद (घमण्ड) के कारण इसके (कुमार के) शाश्वत् धर्मोपदेश को नहीं सुनेगा।

टिप्पणी:- मनुष्यलोके - मनुष्याणाम् लोकः, तस्मिन् (ष0तत्पुरुषः)। तन्मा - तत्+मा (हल् सन्धिः)। शोच्योऽस्ति - शोच्यः + अस्ति (उत्व, गुण, पूर्वरूप सन्धिः)। श्रोष्यति - श्रु परस्मैपदी धातु (लृट्, प्र0पु0ए0व0)। नास्य - न + अस्य (दीर्घसन्धिः)। कामसुखैर्मदात् - कामसुखैः+मदात् (रुत्व विसर्ग सन्धिः)।

छन्दः:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अलंकारः:- काव्यलिंग अलंकार ।

भ्रष्टस्य तस्माच्च गुणादतो मे ध्यानानि लब्ध्वाप्यकृतार्थतैव।
धर्मस्य तस्या श्रवणादहं हि मन्ये विपत्तिं त्रिदिवेऽपि वासम्।।77।।

अन्वयः:- तस्मात् गुणात् च भ्रष्टस्य अतः ध्यानानि लब्ध्वापि से अकृतार्थता एव, हि तस्य धर्मस्य अश्रवणात् त्रिदिवे वासम् अपि अहं विपत्तिं मन्ये।

व्याख्या:- तस्मात् = अमुष्मात्, गुणात् = स्वभावात्, च = अपि च, भ्रष्टस्य = विरहितस्य, अतः = अनेन कारणेन, ध्यानानि = चित्तस्थैर्यानि, लब्ध्वापि = सम्प्राप्य च, मे = मम, अकृतार्थता = अक्षमता एव (अस्ति)। हि = यतः, तस्य धर्मस्य = अमुष्य नैष्ठिकसर्द्धमस्य, अश्रवणात् = श्रवणरहितात्, त्रिदिवे वासम् अपि = स्वर्गवासम् अपि, अहम् = ऋषिः असितः, विपत्तिम् = कष्टप्रदम्, मन्ये = स्वीकुर्वे।

अर्थ :- तस्मात् = उससे, गुणात् = गुण से, च = और, भ्रष्टस्य = वंचित, अतः = इसलिए, ध्यानानि = ध्यानयोग, लब्धावपि = प्राप्त करने पर भी, मे = मेरी, अकृतार्थता एवं = असफलता ही है, हि = क्योंकि, तस्य धर्मस्य = उस शाश्वत धर्म का, अश्रवणात् = श्रवण न करने के कारण,त्रिदिवे वासम् अपि = स्वर्गवास को भी, अहम् = असित मुनि, विपत्तिम् = विपत्ति को, मन्ये = मानता हूँ।

अनुवाद:- और उस गुण से (धर्म) भ्रष्ट (वंचित रहने के कारण), अतः ध्यानयोग को प्राप्त करके भी अक्षमता ही है, क्योंकि उस शाश्वत् धर्मोपदेश का श्रवण न करने के कारण स्वर्गवास को भी मैं विपत्ति मानता हूँ।

टिप्पणी:- लब्ध्वा - लभ्+क्त्वा। अकृतार्थता - नञ्+कृतार्थ+तल्। वासम् - वस्+घञ्। तस्माच्च - तस्मात्+च (हल् सन्धिः)। लब्ध्वाप्यकृतार्थतैव - लब्धा+अपि (दीर्घसन्धिः) + अकृतार्थता (यण्सन्धिः) + एव (वृद्धिसन्धिः)। अश्रवणात् - न श्रवणात् (नञ् तत्पुरुषः)।

छन्द:- इन्द्रवज्रा छन्द ।

अलंकार:- विभावना, काव्यलिङ्ग तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

इति श्रुतार्थः ससुहृत्सदारस्त्यक्त्वा विषादं मुमुदे नरेन्द्रः।
एवं विधोऽयं तनयो ममेति मेने स हि स्वामपि सारवत्ताम्।।78।।

अन्वयः:- नरेन्द्रः इति श्रुतार्थः ससुहृत् सदारः विषादं त्यक्त्वा मुमुदे। अयं मम तनयः एवं विधः इति स हि स्वामपि सारवत्तां मेने।

व्याख्या:- नरेन्द्रः = राजा, इति = इत्येवम्, श्रुतार्थः = भार्थम् श्रुत्वा, ससुहृत् = सुमित्रम्, सदारः = सहधर्मिणी, विषादम् = दुःखम्, त्यक्त्वा = परित्यज्य, मुमुदे = ररंज, अयम् = एषः, मम = मे, तनयः = पुत्रः, एवं विधः = एतादृशः इति = एवं विचार्य, सः = असौ, हि = निश्चयेन, स्वाम् अपि = आत्मानमेव, सारवत्ताम् = सौभाग्यशालिनम्, मेने = अमन्यत।

अर्थ :- नरेन्द्रः = राजा, इति = इस प्रकार, श्रुतार्थः = कही गई बात सुनकर, ससुहृत् = मि= सहि, सदारः = पत्नी सहित, विषादम् = दुःख को, त्यक्त्वा = छोड़कर, मुमूदे = आनन्दित हुआ, अयम् = यह, मम = मे, तनयः = पु=, एवं विधः = ऐसा है, इति = ऐसा विचार कर, सः = वह, हि = निश्चित रूप से, स्वाम् अपि = अपने आप को भी, सारवत्ताम् = सौभाग्यशाली, मेने = माना।

अनुवाद:- राजा शुद्धोदन इस प्रकार की बातें सुनकर मित्रों एवं पत्नी माया सहित शोक त्यागकर प्रसन्न हुआ। यह मेरा पुत्र इस प्रकार होगा - यह सोचकर उसने (राजा ने) अपने आपको सौभाग्यशाली माना।

टिप्पणी:- सदारः - दारैः सहितः (अव्ययीभावः)। त्यक्त्वा - त्यज्+क्त्वा। विषादम् - वि+सद्+घञ्। मुमुदे - मुद् आत्मनेपदी धातुः (लिट्, प्र0पु0ए0व0)। मेने - मन् आत्मनेपदी धातुः (लिट्, प्र0पु0ए0व0)। ससुहृत् - सुहृद्भिः सहितः (अव्ययीभावः)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार ।

आर्षेण मार्गेण तु पास्यतीति चिन्ताविधेयं हृदयं चकार।

न खल्वसौ न प्रियधर्मपक्षः संताननाशात्तु भयं ददर्श।।79।।

अन्वयः- तु आर्षेण मार्गेण यास्यति इति हृदयं चिन्ताविधेयं चकार, न खलु प्रियधर्मपक्षः न, तु सन्ताननाशात् भयं ददर्श।

व्याख्या:- तु = परन्तु, आर्षेण = मुनिना, मार्गेण = पथेन, यास्यति = गमिष्यति, इति हृदयम् = एवं मनसि, चिन्ताविधेयं चकार = अचिन्तयत्, न खलु प्रियधर्मपक्षः न = (सः नृपः) धर्मप्रियः नास्ति इत्येवं न, तु = अपितु, सन्ताननाशात् = पुत्रविनाशात्, भयम् = भीतिम्, ददर्श = आलोकयांचकार, ईक्षांचक्रे वा।

अर्थ :- तु = किन्तु, आर्षेण = ऋषियों के, मार्गेण = मार्ग पर, यास्यति = चलेगा, इति हृदयम् = ऐसा हृदय में, चिन्ताविधेयं चकार = चिन्तन किया, न खलु प्रियधर्मपक्षः न = (वह राजा) धर्मप्रिय नहीं था ऐसा नहीं, तु = अपितु, सन्ताननाशात् = पु= के नाश के कारण, भयम् = भय को, ददर्श = देखा।

अनुवादः- किन्तु 'यह (पुत्र) ऋषियों के मार्ग का अनुसरण करेगा' इससे उसे (राजा को) हृदय में चिन्ता हुई। वह राजा धर्मप्रिय नहीं था - ऐसी बात नहीं है, अपितु सन्तान के नाश के कारण उसे भय प्रतीत हुआ।

टिप्पणी:- मार्गेण - मृज्+घञ्+टा। चकार - कृ धातुः (लिट् प्र0पु0ए0व0)। यास्यति - या धातुः (लृट् प्र0पु0ए0व0)। खल्वसौ - खलु+असौ (यण्सन्धिः)। यास्यतीति - यास्यति+इति (दीर्घसन्धिः)। सन्ताननाशात् - सन्तानस्य नाशात् (ष0तत्पुरुषः)। आर्षेण - ऋषीणाम् अयम् (ऋषि+अण्, तृ0ए0व0)।

छन्द:- उपजाति छन्द ।

अलंकार:- काव्यलिंग अलंकार ।

अथ मुनिरसितो निवेद्य तत्त्वं सुतनियतं सुतविक्लवाय राज्ञे।
सबहुमतमुदीक्ष्यमाणरूपः पवनपथेन यथागतं जगाम।।80।।

अन्वयः- अथ मुनिः असितः सुतविक्लवाय राज्ञे सुतनियतं तत्त्वं निवेद्य सबहुमतम् उदीक्ष्यमाणरूपः पवनपथेन यथागतं जगाम।

व्याख्या:- अथ = तदनन्तरम्, मुनिः असितः = मुनिविशेषः, सुतविक्लवाय = पुत्रविह्वलाय, राज्ञे = नृपाय, सुतनियतम् = पुत्रानिवार्यम्, तत्त्वम् = तथ्यम्, निवेद्य = निवेदनं कृत्वा, सबहुमतम् = ससम्मानम्, उदीक्ष्यमाणरूपः = अवलोक्यमानस्वरूपः, पवनपथेन = वायुमार्गेण, यथा = येन प्रकारेण, आगतम् = आगतवान्, (तथैव = तेनैव प्रकारेण), जगाम = प्रतस्थौ।

अर्थ :- अथ = इसके पश्चात्, मुनिः असितः = ऋषि असित, सुतविक्लवाय = पुत्र के लिए व्याकुल, राज्ञे = राजा के लिए, सुतनियतम् = पुत्र के नियत (अवश्यम्भावी), तत्त्वम् = तत्त्व को, निवेद्य = बताकर, सबहुमतम् = सम्मानपूर्वक, उदीक्ष्यमाणरूपः = देखे जाते हुए, पवनपथेन = वायुमार्ग से, यथा = जिस प्रकार, आगतम् = आये थे, (तथैव = उसी प्रकार), जगाम = चले गये।

अनुवादः- तत्पश्चात् मुनि असित, पुत्र के विषय में व्याकुल राजा से पुत्र के नियत (अवश्यम्भावी) तत्त्व को बताकर, (लोगों के द्वारा) बहुत सम्मानपूर्वक देखे जाते हुए वायु मार्ग से जैसे आये थे वैसे ही चले गये।

टिप्पणी:- आगतम् - आ+गम्+क्त। जगाम - गम् (लिट् प्र0पु0ए0व0)। सुतविक्लवाय - सुताय विक्लवस्तस्मै (चतुर्थीतत्पुरुषः)। सबहुमतम् - बहुमतेन सहितम् (अव्ययीभावः)। पवनपथेन - पवन एव पथस्तेन (कर्मधारयः)। यथागतम् - यथा+आगतम् (दीर्घसन्धिः)।

छन्द:- प्रस्तुत पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द है।

लक्षण:-'अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'। पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण, यगण (12 अक्षर) और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरू (13 अक्षर) होते हैं।

अलंकार:- अनुप्रास अलंकार।

2.3.1 पुत्रोत्सव प्रसंग वर्णन—

कृतमतिरनुजासुतं च दृष्ट्वा मुनिवचनश्रवणे च तन्मतौ च।
बहुविधमनुकम्पया स साधुः प्रियसुतवद्विनियोजयांचकार।।81।।

अन्वयः- कृतमतिः सः साधुः अनुजासुतं दृष्ट्वा अनुकम्पया प्रियसुतवत् मुनिवचनश्रवणे च तन्मतौ बहुविधं विनियोजयांचकार।

व्याख्या:- कृतमतिः = धीमान्, सः साधुः = असौ मुनिः (असितः), अनुजासुतम् = भगिनिकापुत्रम् (भागिनेयम्), दृष्ट्वा = अवलोक्य, अनुकम्पया = करुणया, प्रियसुतवत् = प्रियपुत्र इव, मुनिवचनश्रवणे = बुद्धवाक्यावधाने, च = तथा, तन्मतौ = तस्याभिमतौ बुद्धस्य पथौ, बहुविधम् = अनेकधा, विनियोजयांचकार = लगयांचकार।

अर्थ :- कृतमतिः = बुद्धिमान्, सः साधुः = उस असित मुनि ने, अनुजासुतम् = बहन के पु= को (भानजे को), दृष्ट्वा = देखकर, अनुकम्पया = दयावश, प्रियसुतवत् = प्रिय पु= के समान, मुनिवचनश्रवणे = मुनि (बुद्ध) के वचन सुनने, च = और, तन्मतौ = उसके मत पर चलने के लिए, बहुविधम् = अनेक प्रकार से, विनियोजयांचकार = नियुक्त किया।

अनुवाद:- कृतार्थ बुद्धि उन साधु (असित) ने अपनी बहन के पुत्र (भानजे) को देखकर दयावश पुत्र सदृश मुनि (बुद्ध) से वचन सुनने तथा उसके मत पर चलने के लिए अनेक प्रकार से अनुशासित (नियुक्त) किया।

टिप्पणी:- दृष्ट्वा - दृश्+क्त्वा। वचन - वच्+ल्युट्। कृतमतिरनुजासुतम् - कृतमतिः+अनुजासुतम् (रुत्व विसर्गसन्धिः)। अनुजासुतम् - अनुजायाः सुतम् (ष0तत्पुरुषः)। तन्मतौ - तस्य मतौ (षष्ठी तत्पुरुषः)। मुनिवचनश्रवणे - मुनेः वचनानां श्रवणे (षष्ठी तत्पुरुषः)। विनियोजयांचकार - वि+नि+युज् (लिट् प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द।

नरपतिरपि पुत्रजन्मतुष्टो विषयगतानि विमुच्य बन्धनानि।
कुलसदृशमचीकरद्यथावत् प्रियतनयस्तनयस्य जातकर्म।।82।।

अन्वयः- प्रियतनयः नरपतिरपि पुत्रजन्मतुष्टः विषयगतानि बन्धनानि विमुच्य तनयस्य जातकर्म कुलसदृशं यथावत् अचीकरत्।

व्याख्या:- प्रियतनयः = प्रियपुत्रः, नरपतिः = राजा, अपि = अपि च, पुत्रजन्मतुष्टः = तनयोत्पन्नपरितुष्टः, विषयगतानि = राज्यगतानि, बन्धनानि = बन्दिजनान्, विमुच्य = परित्यजय, तनयस्य = पुत्रस्य, जातकर्म = जातक्रिया (संस्कारभेदः), कुलसदृशम् = कुलानुरूपम्, यथावत् = विधिवत्, अचीकरत् = कारयांचकार।

अर्थ :- प्रियतनयः = पु=प्रेमी, नरपतिः = राजा ने, अपि = भी, पु=जन्मतुष्टः = पु= जन्म से प्रसन्न, विषयगतानि = राज्य से सम्बन्धी, बन्धनानि = बन्धनों को (कैदियों को), विमुच्य = मुक्त करके, तनयस्य = पु= का, जातकर्म = जातकर्म संस्कार, कुलसदृशम् = कुल के अनुरूप, यथावत् = विधिवत्, अचीकरत् = करवाया।

अनुवादः- पुत्रस्नेही राजा ने भी पुत्र जन्म से प्रसन्न होकर राज्य के सभी बन्धनों (कैदियों) को मुक्त करके पुत्र का जात कर्म संस्कार अपने कुलानुरूप यथाविधि करवाया।

टिप्पणी:- गतानि - गम्+क्त+जस् (नपुं0)। विमुच्य - वि+मुच्+ल्यप्। नरपतिः - नराणां पतिः (षष्ठी तत्पुरुषः)। पुत्रजन्मतुष्टः - पुत्रजन्मना तुष्टः (तृतीया तत्पुरुषः)। नरपतिरपि - नरपतिः+अपि (रुत्व विसर्ग सन्धिः)। प्रियतनयस्तनयस्य - प्रियतनयः + तनयस्य (सत्वविसर्गसंधिः)। अचीकरत् - कृ+णिच् (लुङ् प्र0पु0ए0व0)।

छन्दः- पुष्पिताग्रा छन्द ।

2.3.2 मांड्लिक कर्मों का वर्णन—

दशसु परिणतेष्वहः सु चैव प्रयतमनाः परया मुदा परीतः।
अकुरुत जपहोममङ्गलाद्याः परमभवाय सुतस्य देवतेज्याः।।83।।

अन्वयः- परया मुदा परीतः प्रयतमनाः दशसु अहःसु परिणतेषु एव सुतस्य परमभवाय जपहोममङ्गलाद्याः देवतेज्याः अकुरुत।

व्याख्या:- परयामुदा = परमप्रीत्या, परीतः = गृहीतः, प्रयतमनाः = पवित्रचेताः (असौ राजा), दशसु = इति संख्या, एकाधिकनवम्, अहःसु = दिवसेषु, परिणतेषु = विगतेषु, व्यतीतेषु, एव = इति अव्ययपदम्, सुतस्य = पुत्रस्य, परमभवाय = परमकल्याणाय, जपहोममङ्गलाद्याः = जपहवनमङ्गलक्रियायाः, देवतेज्याः = देवानां सुराणां, यजनक्रियाः, अकुरुत = व्यधत्त।

अर्थ :- परयामुदा = परमानन्द से, परीतः = विभोर होकर, प्रयतमनाः = पवि= हृदय वाले (उस राजा ने), दशसु अहः सु = दस दिन, परिणतेषु = व्यतीत होने पर, सुतस्य = पु= के, परमभवाय = परम कल्याण के लिए, जपहोममङ्गलाद्याः = जप, होम, मंगल आदि, देवतेज्या = देवयज्ञ, अकुरुत = किया।

अनुवादः- परमानन्द से अभिभूत होकर पवित्र हृदय वाले उस राजा ने दस दिन व्यतीत होने पर पुत्र के परमकल्याण के लिए जप, होम, मंगल आदि देव यज्ञ किया।

टिप्पणी:- प्रयतमनाः - प्रयतं मनो यस्य सः (बहुव्रीहि समासः)। देवतेज्याः - देव एव देवता, देवतानाम् इज्यः, ताः (षष्ठी तत्पुरुषः)। अकुरुत - कृ उभयपदी धातुः (आत्मनेपदे लङ्, प्र0पु0ए0व0)। परिणतेष्वहःसु - परिणतेषु+अहःसु (यण् सन्धिः)। चैव - च+एव (वृद्धिसन्धिः)।

छन्दः- पुष्पिताग्रा छन्द ।

अलंकारः- अनुप्रास अलंकार ।

अपि च शतसहस्रपूर्णसंख्याः स्थिबलवत्तनयाः सहेमशृंगी।
अनुपगतजराः पयस्नीर्गाः स्वयमददात्सुतवृद्धये द्विजेभ्यः।।84।।

अन्वयः- अपि च स्थिरबलवत्तनयाः सहेमशृंगी अनुपगतजराः पयस्विनीः शतसहस्रपूर्णसंख्याः गाः स्वयं सुतवृद्धये द्विजेभ्यः अददात्।

व्याख्या:- अपि च = तथा, स्थिरबलवत्तनयाः = दृढशक्तिमत्वत्साः, सहेमशृंगी = सकनकशृंगी, अनुपगतजराः = वार्द्धक्यरहिताः, पयस्विनीः = क्षीरिणीः, शतसहस्रपूर्णसंख्याः = एकलक्षसंख्यकाः, गाः = धेनूः, स्वयम् = नृपः, सुतवृद्धये = पुत्राभिवृद्धये, द्विजेभ्यः = ब्राह्मणेभ्यः, अददात् = ददौ।

अर्थ :- अपि च = और, स्थिरबलवत्तनयाः = पुष्ट एवं बलवान् बछड़े, सहेमशृंगी = स्वर्ण से गढ़ी हुई सींगों वाली, अनुपगतजराः = वृद्धावस्था से रहित, पयस्विनीः = दुधारू (दूध देने वाली), शतसहस्रपूर्णसंख्याः = एक लाख संख्या की, गाः = गायें, स्वयम् = राजा ने, सुतवृद्धये = पु= की उन्नति के लिए, द्विजेभ्यः = ब्राह्मणों को, अददात् = दी (प्रदान की)।

अनुवाद:- और जिनके बछड़े पुष्ट एवं बलवान् थे, ऐसी सोने से मढ़े हुये सींगो वाली, वृद्धावस्था से रहित एवं दुध देने वाली एक लाख गायें स्वयं (राजा शुद्धोदन ने) पुत्र की अभिवृद्धि के लिए ब्राह्मणों को प्रदान की।

टिप्पणी:- सहेमशृंगी - हेम्ना सहितमिति सहेम, सहेम शृङ्गं यस्याः सा (बहुव्रीहिः)। अनुपगतजराः - न उपगतमिति अनुपगतम् (नञ् तत्पुरुषः)। अनुपगता जरा याभिस्ताः (बहुव्रीहिः)। सुतवृद्धये - सुतस्य वृद्धये (षष्ठी तत्पुरुषः)। पयस्विनीर्गाः - पयस्विनीः + र्गाः (रुत्व विसर्ग सन्धिः)। अनुपगत - नञ्+क्तिन्+ङे (चतुर्थी एकवचनम्)। अददात् - दा धातुः (लङ् प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द ।

बहुविधविषयास्ततो यतात्मा स्वहृदयतोषकरीः क्रिया विधाय।
गुणवति नियते शिवे मुहूर्ते मतिमकरोन्मुदितः पुरप्रवेशे।।85।।

अन्वयः:- मुदितः यतात्मा स्वहृदयतोषकरीः बहुविधविषयाः क्रियाः विधाय ततः नियते गुणवति शिवे मुहूर्ते पुरप्रवेशे मतिम् अकरोत्।

व्याख्या:- मुदितः = प्रसन्नचित्त, यतात्मा = जितेन्द्रि राजा ने, स्वहृदयतोषकरीः = निजचित्तपरितोषकरीः, बहुविधविषयाः क्रियाः = अनेकधानि कत्र्तव्यानि कार्याणि, विधाय = कृत्वा, ततः = तस्मात् स्थानात् (वनात्), नियते = शास्त्रोक्ते, गुणवति = गुणयुक्ते, शिवे मुहूर्ते = शुभे मुहूर्ते, पुरप्रवेशे = नगरप्रवेशे, मतिम् = बुद्धिम्, अकरोत् = कृतवान्।

अर्थ :- मुदितः = प्रसन्नचित्त, यतात्मा = जितेन्द्रि राजा ने, स्वहृदयतोषकरीः = अपने हृदय को संतुष्ट करने वाली, बहुविधविषयाः क्रियाः = अनेक प्रकार की क्रियायें, विधाय = करके, ततः = वहाँ से, नियते = शास्त्रोक्त, गुणावति = गुणयुक्त, शिवे मुहूर्ते = शुभ मुहुर्त में, पुरप्रवेशे = नगर में प्रवेश करने का, मतिम् = विचार, अकरोत् = किया।

अनुवाद:- प्रसन्नचित्त उस जितेन्द्रिय राजा ने अपने हृदय को संतुष्ट करने वाली अनेक प्रकार की क्रियायें करके वहाँ से शास्त्र सम्मत गुण युक्त शुभ मुहूर्त में नगर में प्रवेश करने का विचार किया।

टिप्पणी:- स्वहृदयतोषकरी - स्वस्य हृदयम् तस्य तोषः (षष्ठी तत्पुरुषः), स्वहृदयतोषं करोति इति। नियते - नि+यम्+क्त+ङि। गुणवति - गुण+मतुप्+ङि। मतिम् - मन्+क्तिन्+अम्। मुदितः - मुद्+क्त+सु। विधाय - वि+धा+ल्यप्। अकरोत् - कृ धातुः (लङ्लकारः, प्र0पु0ए0व0)। यतात्मा - यतः आत्मा येन सः (बहुव्रीहिः) ।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द ।

2.3.3 परिवार सहित कपिलवस्तु आगमन वर्णन—

द्विरदरदमयीमथो महार्हां सितसितपुष्पभृतां मणिप्रदीपाम्।
अभजत शिविकां शिवाय देवी तनयवती प्रणिपत्य देवताभ्यः।।86।।

अन्वयः:- अथो तनयवती देवी शिवाय देवताभ्यः प्रणिपत्य द्विरदरदमयीं महार्हां सितसितपुष्पभृतां मणिप्रदीपां शिविकाम् अभजत।

व्याख्या:- अथो = अनन्तरम्, तनयवती = पुत्रवती, देवी = महिषी, शिवाय = कल्याणाय, देवताभ्यः = देवेभ्यः, प्रणिपत्य = प्रणम्य, द्विरदरदमयीम् = गजदन्तनिर्मितम्, महार्हाम् = महार्धाम्, सितसितपुष्पभृताम् = अतिशयधवलकुसुमालंकृताम्, मणिप्रदीपाम् = रत्नदीपाम्, शिविकाम् = शिरस्काम्, अभजत = अभजत्।

अर्थ :- अथो = तत्पश्चात्, तनयवती = पु=वती, देवी = रानी, शिवाय = कल्याण के लिए, देवताभ्यः = देवताओं को, प्रणिपत्य = प्रणाम करके, द्विरदरदमयीम् = हाथीदांत से निर्मित, महार्हाम् = बहुमूल्य,

सितसितपुष्पभृताम् = अत्यन्त उज्ज्वल पुष्प से सुसज्जित, पणिप्रदीपाम् = मणिप्रदीपों से, शिविकाम् = पालकी पर, अभजत = चढ़ी।

अनुवाद:- इसके बाद पुत्रवती रानी माया कल्याण के लिए देवताओं को प्रणाम करके हाथी-दाँत से निर्मित बहुमूल्य, अतशय श्वेत-पुष्पों से सुसज्जित मणिमय प्रदीपों से युक्त पालकी पर चढ़ी।

टिप्पणी:- द्विरदरदमयीम् - द्वौ रदौ येषां ते द्विरदाः, द्विरदानां रदाः द्विरदरदाः, तेषां विकारः इति,महार्हाम् - महांश्चासौ अर्हस्ताम् (कर्मधारयः)। मणिप्रदीपाम् - मणिश्च प्रदीपश्च ते, तेषां समाहारः, ताम् मणिप्रदीपाम् (द्वन्द्वः)। तनयवती - तनय+मतुप्+ङीप्।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द ।

अलंकार:- अनुप्रास और यमक अलंकार ।

पुरमथ पुरतः प्रवेश्य पत्नीं स्थविरजनानुगतामपत्यनाथाम्।
नृपतिरपि जगाम पौरसंघैर्दिवममरैर्मघवानिवाच्र्यमानः।।87।।

अन्वयः:- अथ स्थिविरजनानुगताम् अपत्यनाथां पत्नीं पुरतः पुरं प्रवेश्य नृपतिः अपि अमरैः (अच्र्यमानः) मघवान् दिवम् इव पौरसंघैः अच्र्यमानः (पुरं) जगाम।

व्याख्या:- अथ= तत्पश्चात्, स्थविरजनानुगताम् = वृद्धिजनानुव्रजाम्, अपत्यनाथाम् = पुत्रेण सह, पत्नीम् = भार्याम्, पुरतः = आदौ, पुरम् = नगरम्, प्रवेश्य = प्रवेशं कारयित्वा, नृपतिः अपि = नृपः अपि, अमरैः = देवैः, (अच्र्यमान), मघवान् = इन्द्रः, दिवम् इव = स्वर्गम् इव, पौरसंघैः = नगरजनैः, अच्र्यमानः = स्तुत्यमानः, (पुरम्), जगाम = इयाय।

अर्थ :- अथ = उसके बाद, स्थविरजनानुगताम् = वृद्धजनों से अनुगत, अपत्यनाथाम् = पु= के साथ, पत्नीम् = पत्नी को, पुरतः = आगे (पहले), पुरम् = नगर में, प्रवेश्य = प्रवेश कराकर, नृपतिः अपि = राजा भी, अमरैः = देवताओं के द्वारा (पूजित होते हुए), मघवान् = इन्द्र, दिवम् इव = स्वर्ग में प्रवेश के समान, पौरसंघैः = नगर के लोगों के द्वारा, अच्र्यमानः = पृजित होते हुए (नगर में), जगाम = प्रवेश किया।

अनुवाद:- इसके बाद वृद्धजनों से अनुगत पुत्र के साथ पत्नी को पहले नगर में प्रवेश कराकर राजा भी देवताओं से (पूजित होते हुए) इन्द्र के स्वर्ग में प्रवेश करने के समान नागरिकों से पूजित होते हुए (नगर में) गये, अर्थात् नगर में प्रवेश किया।

टिप्पणी:- प्रवेश्य - प्र+विश्+णिच्+ल्यप्। अनुगताम् - अनु+गम्+क्त+टाप्+अम्। नृपतिः - नृणां पतिः (षष्ठीतत्पुरुषः)। स्थविरजनानुगताम् - स्थविरजनैरनुगताम् (तृतीयातत्पुरुषः)। पौरसंघैः - पौराणां संघैः (षष्ठीतत्पुरुषः)। जगाम - गम् (लिट् प्र0पु0ए0व0)। अपत्यनाथाम् - अपत्यानां नाथा, ताम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

भवनमथ विगाह्य शाक्यराजो भव इव षण्मुखजन्मना प्रतीतः।
इइमिदमिति हर्षपूर्णवक्त्रो बहुविधपुष्टियशस्करं व्यधत्त।।88।।

अन्वयः:- अथ भवनं विगाह्य शाक्यराजः षण्मुखजन्मना भव इव हर्षपूर्णवक्त्रः प्रतीतः इदम् इति हर्षपूर्णवक्त्रः बहुविधपुष्टियशस्करम् व्यधत्त।

व्याख्या:- अथ = तदनन्तरम्, भवनम् = सदनम्, विगाह्य = प्रविश्य इत्यर्थः, शाक्यराजः = शाक्यकुलोत्पन्नः नृपः, षण्मुखजन्मना भवः = कार्तिकेयोत्पत्या शिवः, इव = यथा, हर्षपूर्णवक्त्रः =

प्रसन्नवदनः, प्रतीतः = भावितः, इदम् इदम् इति = एवं कुरु इत्थं कुरु इति भावः, बहुविधपुष्टियशस्करम् = नानाविधं पुष्टिकारकं कीर्तिकारकं च (कर्म), व्यधत्त = अकारयतेति भावः।

अर्थ :- अथ = तत्पश्चात्, भवनम् = भवन में, विगाह्य = प्रवेश कर, शाक्यराजः = शाक्यराजा ने, षण्मुखजन्मना भव इव = कार्तिकेय के जन्म से प्रसन्न शिव के समान, हर्षपूर्णवक्त्रः = प्रसन्न मुख वाले, प्रतीतः = प्रतीत होते हुए, इदम् इदम् इति = ऐसा करो, ऐसा करो, इस प्रकार, बहुविधपुष्टियशस्करम् = अनेक प्रकार के पुष्टिकारक एवं यशस्कर कर्म को, व्यधत्त = करवाये।

अनुवाद:- तत्पश्चात् भवन में प्रवेश करके शाक्यराज ने कार्तिकेय के जन्म से प्रसन्न शंकर के समान हर्ष से परिपूर्ण मुख वाले प्रतीत होते हुए 'यह करो' 'यह करो' (कहकर) अनेक प्रकार के पुष्टिकारक एवं यशस्कर कर्म करवाये।

टिप्पणी:- प्रतीतः - प्रति+इण्+क्त+सु। हर्ष - हृष्+घञ्। पुष्टि - पुष्+क्तिन्। षण्मुखजन्मना - षण्मुखस्य जन्मना (षष्ठी तत्पुरुषः)। हर्षपूर्णवक्त्रः - हर्षेण पूर्णं वक्त्रं यस्य सः (बहुव्रीहिः)। व्यधत्त - वि+धा धातुः (लङ् लकार प्र0पु0ए0व0)।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द ।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

इति नरपतिपुत्रजन्मवृद्ध्या सजनपदं कपिलाह्वयं पुरं तत्।
धनदपुरमिवाप्सरोऽवकीर्णं मुदितमभून्नलकूबरप्रसूतौ।।89।।

अन्वयः:- इति नरपतिपुत्रजन्मवृद्ध्या सजनपदं कपिलाह्वयं तत् पुरं नलकूबरप्रसूतौ अप्सरः अवकीर्णं धनदपुरम् इव अभूत्।

व्याख्या:- इति = एवम् प्रकारेण, नरपतिपुत्रजन्मवृद्ध्या = कुमारोत्पत्तिसमृद्ध्या, सजनपदम् = जनपदैर्युतम्, कपिलाह्वयम् = कपिलवस्तु इत्यभिधानम्, तत् = अदः, पुरम् = नगरम्, नलकूबरप्रसूतौ = नलबूकरयोः जन्मनि, अप्सरोऽवकीर्णम् = मैनकाप्रभृत्यप्सरोभिः परिपूर्णम्, धनदपुरम् = कुबेरनगरम् अलकापुरीमित्यर्थः, इव = यथा, अभूत् = सुशोभितमभवत्।

अर्थ :- इति = इस प्रकार, नरपितिपु=जन्मवृद्ध्या = राजकुमार के समृद्धकारी जन्म से, सजनपदम् = जनपदों सहि, कपिलाह्वयम् = कपिल नाम, तत् = वह, पुरम् = नगर, नलकूबरप्रसूतौ = नलकूबर के जन्म से, अप्सरः अवकीर्णम् = मेनकादि अप्सराओं से पूर्ण, धनदपूरम् = कुबेर नगर (अलकापुरी), इव = जैसा, अभूत = हुआ (सुशोभित हुआ)।

अनुवाद:- इस प्रकार राजकुमार (सर्वार्थसिद्ध) के समृद्धकारी जन्म से जनपदों सहित कपिलवस्तु नामक नगर, नलकूबर के जन्म पर अप्सराओं से पूर्ण कुबेर की (अलकापुरी) नगरी के समान सुशोभित हुआ।

टिप्पणी:- नरपतिपुत्रजन्मवृद्ध्या - नरपतेः पुत्रस्य जन्मवृद्ध्या (षष्ठीतत्पुरुषः)। सजनपदम् - जनपदैः सहितम् (अव्ययीभावः)। धनदपुरम् - धनं ददातीति धनदः, तस्य पुरम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। नलकूबरप्रसूतौ - नलकुबरयोः प्रसूतौ (षष्ठीतत्पुरुषः)। वृद्ध्या - वृध्+क्तिन्+टा। अवकीर्णम् - अव+कृ+क्त। मुदितम् - मुद्+क्त। प्रसूतौ - प्र+सू+क्तिन्+ङि (सप्तमीविभक्तिः एकवचनम्)।

छन्द:- पुष्पिताग्रा छन्द।

अलंकार:- उपमा अलंकार ।

5.4 सारांश:-

संस्कृत वांग्मय के प्राचीनतम काव्यों में अश्वघोष उन कवियों में से हैं, जिनके रचनाकाल के विषय में विद्वानों ने अधिक मतभेद नहीं है। महाकवि अश्वघोष संस्कृत वांग्मय की प्राचीनतम परम्परा में

विपुल वांग्मय के निर्माण कर्ता भी हैं। महाकवि के ग्रन्थ लेखन की श्रृंखला में कई ग्रन्थ हैं जिनमें से कई काव्यों का निर्धारण महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित किया गया हैं। इसी क्रम में गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की अन्तिम इकाई है।

इस इकाई में आपने पुत्रोत्सव के प्रसंग में राजा द्वारा अपराधियों को कारागार से मुक्त करने, तथा जातकर्म संस्कार वर्णन, मांड्लिक कर्मों का वर्णन (ऐहलौकिक एवं पारलौकिक सुख की कामना से जाप होमादि शुभकर्म सम्पन्न कराने का वर्णन) तथा परिवार सहित कपिलवस्तु आगमन के दृष्टान्त का अवलोकन करने का अवसर प्राप्त होगा।

5.5 शब्दावली:-

शब्द	**=**	**अर्थ**
अग्निसूनुम्	=	कार्तिकेय के समान
अनिमिषैकचक्षुः	=	एक आँख को खुले रखने वाले
विभो	=	स्वामी
कामसुखैः	=	कामजन्य सुख
सारवत्ताम्	=	सौभाग्यशाली
देवतेज्या	=	देवयज्ञ
द्विजेभ्यः	=	ब्राह्मणों को
देवताभ्यः	=	देवताओं को
मघवान्	=	इन्द्र
शाक्यराजः	=	शाक्यराजा

5.6 बोध प्रश्न :-

1. राजा एवं रानी के कपिलवस्तु प्रत्यागमन का वर्णन किस सर्ग में है।

क- द्वितीय सर्ग   ख-प्रथम सर्ग
ग-तृतीयय सर्ग   घ- चतुर्थ सर्ग

2 . पाणिपादम् शब्द में कोन सा समास है।

क- द्वन्द्व समास   ख-तत्पुरूष समास
ग- तृ0तत्पुरुषः   घ-बहुव्रीहिः समास

3 . दीप्तम् शब्द में प्रत्यय है।

क-क्त   ख- ल्यप्
ग- अण्   घ-इक्

4. जलाञ्जली में कोन सा समास है।

क- द्वन्द्व समास   ख-तत्पुरूष समास
ग- ष0तत्पुरुषः   घ-बहुव्रीहिः समास

बोध प्रश्नों के उत्तर-

1. ख-प्रथम सर्ग
2. क- द्वन्द्व समास
3. क-क्त
4. ग- ष0तत्पुरुषः

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1988 ई. प्रथम भाग प्राक्कथन पृ0 7-8

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 70-73

3. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कपिलदेव द्विवेदी

5.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें:-

1. बुद्धचरितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास

3. बुद्धचरितम्, महाकवि अश्वघोष

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. पंचम इकाई का वैशिष्ट्य लिखिए।

2. किन्ही दो श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

3. पुत्रोत्सव संवाद वर्णन कीजिए।

चतुर्थ सेमेस्टर/SEMESTER-IV
खण्ड – द्वितीय
नैषधीयचरितम्

खण्ड द्वितीय का परिचय

गद्य एवं पद्य काव्य का यह द्वितीय खण्ड है। इस खण्ड में छ: इकाइयॉ है। इस खण्ड की सभी इकाइयॉ महाकवि श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् महाकाव्य से सम्बन्धित हैं। महाकवि श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि है। उनके द्वारा रचित नैषधीयचरितम् एक प्रमुख महाकाव्य है। इस खण्ड में आप महाकवि श्रीहर्ष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जन्म स्थान,वंश परिचय, स्थितिकाल, भाषा शैली, नैषध महाकाव्य के पात्रों का परिचय, उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त करने के साथ ही नैषधीयचरितम् महाकाव्य का कथासार तथा महाकाव्य के महाकाव्यत्व से परिचित होंगे।

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में 22 सर्ग हैं। इसमें भारतीय जीवन की प्रसिद्ध नल दमयन्ती की कथा है। यह केवल सुधावधीरणी ही नहीं है, कलिनाशिनी भी है—**'कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च, ऋतुपर्णस्य राजर्षे कीर्तनं कलिनाशनम्'**माना जाता है कि यह त्रेता युग की कथा है। निषदराज नल का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी है और यहां अनेक पुराणों में भी उक्त कथा पाई जाती है— मत्स्य, स्कन्ध, वायु, पद्म, अग्नि आदि में और महाभारत में भी।

सोमदेव भट्ट के कथासरित्सागर में भी यह कथा है। समीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष स्वकाव्य रचना में मुख्यतया महाभारत की कथा को आधार बनाया। इस प्रकार यह कहना समीचीन लगता है, कि नैषधीयचरितम् का उपजीव्य महाभारत का नलोपाख्यान है। जो महाभारत के वनपर्व के उनतीसवें अध्याय (58-78) में है।

प्रारम्भ में वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण की प्रस्तुति के साथ कथा का प्रारम्भ होता है। महाकाव्यव का नामकरण चरितनायक नैषध (नल) के नाम पर ही नैषधीयचरितम् अथवा नैषधमहाकाव्य किया गया है, जो यथा नाम- तथा गुण के अनुसार अपने नाम की गुणात्मक सार्थकता को भी व्यक्त कर रहा है।

इस महाकाव्य की कथावस्तु पुर्णतया ऐतिहासिक है। राजा नल को दमयन्ती की प्राप्ति इस महाकाव्य का फल है। प्रात: काल, सांय काल, रात्रि, चन्द्रमा, विवाह, समुद्र, सरोवर, उद्यान आदि अनेक महाकाव्योहपयोगी विषयों का वर्णन यथा स्थान महाकाव्य में किया गया है। जिसका अध्ययन आप इस खण्ड में करेंगे। साथ ही नैषधीयचरितम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग का भवानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या भी आपके अध्ययन्नार्थ प्रस्तुत की जा रही है।

खण्ड – द्वितीय, इकाई – प्रथम
महाकवि श्रीहर्ष एवं नैषधीयचरितम्

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना:-

प्रिय शिक्षार्थियो,

स्नातकोत्तर संस्कृत पाठ्यक्रम के चतुर्थ सेमेस्टर द्वितीय प्रश्न पत्र गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित द्वितीय खण्ड में आपका स्वागत है। इस खण्ड में आप नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत खण्ड की इकाइयों में महाकवि श्रीहर्ष एवं नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग का भावनुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्यात्मक परिचय प्राप्त करेंगे। इससे पूर्व के खण्ड में आपने महाकवि अश्वघोष द्वारा विरचित बुद्धचरितम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग का अध्ययन किया। आशा है उक्त खण्ड की विषयवस्तु से आप भली-भॉति परिचित हो चुके होंगे। प्रस्तुत इकाई में आप महाकवि श्रीहर्ष एवं नैषधीयचरितम् महाकाव्य के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

महाकाव्य के लक्षण के अनूरूप काव्य का कथानक इतिहास एवं पुराणों के कथानकों पर आधारित होता है। परन्तु कवि अपने आर्कषक मनोहर कल्पना से काव्य में नवीनता लाता है, कहा भी गया है—

अपारे काव्य संसारे कविरेक: प्रजापति ।
यथेदं रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।
श्रृंगारी चेत्कवि: काव्ये सर्वं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्।

'तच्चिन्ताणिमन्त्र चिन्तवनफले'उक्त चिन्ताकमणि मन्त्र के फल को कवि ने नैषधीयचरितम् का प्रदुर्भाव कहा है। महाकवि श्रीहर्ष विश्वविख्यात कवि हैं, नैषध इनका उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इस महाकाव्य में नल-दमयन्ती की कथा का वर्णन है। राजा नल धीरोदात्त नायक हैं, दमयन्ती परकीया नायिका हैं। 22 सर्गों में निबद्ध यह महाकाव्य लोकोत्तर चमत्कार, रस, अलंकार, ध्वनि, पदलालित्यता के लिए काव्यों में श्रेष्ठ माना जाता है। काव्य में प्रधान रस श्रृंगार है, करूण आदि अंग रस हैं। स्थायी भाव रति है। वैदर्भी रीति प्रधान है, कही- कहीं गौडी भी है। गुण प्राय: प्रसाद है, कही- कहीं माधुर्य व ओज भी हैं ।

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप जानेंगे कि महाकाव्य किसे कहते हैं। साथ ही श्रीहर्ष के जन्म, स्थिति काल, व्यक्तित्व एवं उनकी रचनाओं तथा काव्य कला का अध्ययन कर सकते है।

1.2 उद्देश्य:-

इस इकाई की सहायता से आप—

- ❖ नैषधीयचरितम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ श्रीहर्ष के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेंगे।
- ❖ श्री हर्ष की रचनाओं के बारे में बता सकेंगे।
- ❖ महाकाव्य के लक्षणों से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ श्रीहर्ष की काव्यविधा, रचना शैली से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि श्री हर्ष का जन्म कब और कहां हुआ।
- ❖ प्रस्तुत इकाई की सहायता से आप श्रीहर्ष एवं नैषधीयचरितम् विषयक प्रश्नों के उत्तर सरलतापूर्वक प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.3 महाकवि श्रीहर्ष एवं नैषधीयचरितम्

1.3.1 महाकवि श्रीहर्ष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व:-

श्रीहर्ष संस्कृत के महाकवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। उनका व्यक्तित्व अनुपम एवं उच्चकोटि का है। महाकवि की उत्कृष्ट काव्य कला से प्रभावित होकर उन्हें कविता कामिनी का हर्ष कहा गया है। अलंकार विन्यास में निपुण श्रीहर्ष ने अपनी भारती को अलंकारों द्वारा इस प्रकार विभूषित किया है कि उसकी भव्य मूर्ति देखते ही बनती है। अतिश्योक्ति की मनोहर उद्धावना में उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, विरोधाभास, श्लेष के समुचित प्रयोग में श्रीहर्ष अद्वितीय है। उन्होंने यमक की छटा द्वारा कन्दर्प स्तुति इस प्रकार की है-

लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार
श्रृंगारसान्तरभृशान्तभावान्।
पञ्चेन्द्रियाणि जगतामिषुपञ्चकेल
संक्षोभयनं वितनुतां वितनुर्मदं वः।।

कालिदासोत्तर कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम है, जिन्होंने सुकुमार मार्ग की सरसता और विचित्र मार्ग की प्रौढ़ि का समन्वय करके एक अद्भुत महाकाव्य की रचना की। भारवि ने जिस महाकाव्य पद्धति का प्रवर्तक किया और माघ ने जिसे आगे बढ़ाया उसे आंशिक रूप से ही श्रीहर्ष ने स्वीकार किया वर्णनों की विपुलता में श्रीहर्ष उन कवियों से आगे बढ़ गये। श्रीहर्ष में कवि प्रतिभा अवश्य है। वह भी उच्च दर्जे की है। नैषधीयचरितम् के टीकाकार श्रीविद्याधर ने उनकी बहुज्ञता एवं वैदुष्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला है-

अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवहः साहित्य सारो नयौ।
वेदार्थावगतिः पुराणपठितिर्यस्यान्यशास्त्रण्यपि।।
नित्यं स्युः स्फुरितार्थ दीप विहताज्ञानान्धकारण्यसौ।
व्याख्यातुं प्रभवत्ययुं सुविषमं सर्गं सुधीः कोविदः।।

महाकवि श्रीहर्ष में सहृदयता एवं वैदुष्य का मणिकाञ्चन योग है। उन्हें अपने वैदुष्य पर गर्व है। दमयन्ती स्वयम्वर में राजाओं के परिचय के निमित्त उन्होंने जिस सरस्वती का आह्वान किया है। वह वस्तुतः उनकी अपनी सरस्वती है। महाकवि श्रीहर्ष ने सरस्वती के स्वरूप वर्णन के ब्याज से अपने व्यक्तित्व को अभिव्यंजित किया है।

महाकवि श्रीहर्ष आस्तिक स्वभाव के साधु पुरुष थे। उन्हें वेदों पर अत्यधिक श्रद्धा थी। उनके महाकाव्य में अनेक वैदिक विषयों की समन्विति सहज देखी जा सकती है। भारतीय धर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिशास्त्र, दर्शन, व्याधकरण, संगीत, काव्यतशास्त्र पर उनकी अत्यधिक श्रद्धा थी। महाकवि श्रीहर्ष के महाकाव्य नैषध में ज्योतिषशास्त्र के कई उदाहरण इस प्रकार देखे जा सकते हैं—

रथादसौ सारथिना सनाथाद्राजाडवतीर्याशु पुरं विवेश।
निर्गत्य बिम्बादिव भानवीयात्सौधाकरं मण्डलमंशु संघः।।

अर्थात् राजा नल सारथि से युक्त रथ से ठीक उसी प्रकार उतरे जैसे सूर्य किरण समूह सूर्यमण्डल से निकलकर चन्द्रमण्डल में प्रवेश करता है। वैसे ही शीघ्र कुण्डिनपुर में प्रवेश किया। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य में ज्योतिष, धर्मशास्त्र, पुराण, को महत्वपूर्ण स्थान देकर अपने आस्तिक एवं परमतत्त्व को प्रतिपादित किया है। महाकाव्य के अनुशीलन से यह प्रतीत होता है कि वे ज्योतिष, धर्मशास्त्र, पुराण, काव्यशास्त्र आदि में पारंगत थे।

श्रीहर्ष अत्यन्त ही भावुक एवं उदात्त वृत्ति के कवि रत्न थे। 'हंस' के करुण-विलाप में उनका करुण हृदय प्रतिबिम्बित हुआ है। उनका सिद्धान्त है कि उपकारी का प्रत्युपकार शीघ्र ही करना चाहिए। कृतज्ञता मानव को पवित्र बनाती है। वे अत्यन्त धार्मिक एवं सदाचारी हैं। उनका अभिमत है कि मनुष्य को विपत्ति में पड़कर भी धर्म से विचलित नहीं होना चाहिये। उनके महाकाव्य में वेद शास्त्रादि के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, संगीतशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, नाट्यशास्त्र, राजनीति कला, शिल्प, विज्ञान, शकुन, देव पूजा, सुपात्र, तुरग्लक्षण, वर्णाश्रम, चित्रकला आदि के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग मिलते हैं, जिससे उनके बहुज्ञ होने का परिचय मिलता है। महाकवि श्रीहर्ष भगवती वागीश्वरी और अपनी माता के अनन्य भक्त थे।

महाकवि श्रीहर्ष ने ज्ञान मार्ग द्वारा परब्रह्म को प्राप्त करने के लिये पूर्ण प्रयास किया है, इसमें वे सफल भी हुए हैं। अतएव उनका व्यक्तित्व अलौकिक है, जिसका अनुसरण व्यक्तित्व को उत्कृष्ट कोटि का बना सकता है।

1.3.2 महाकवि श्रीहर्ष का जन्मस्थान एवं वंश परिचयः-

संस्कृत साहित्य के उद्भट् विद्वान् महाकवि श्रीहर्ष का जीवनवृत्त संस्कृत के अन्य कवियों के समान अनुमान का विषय मात्र नहीं है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपनी रचनाओं में अपने जीवनवृत्त का स्पष्ट उल्लेख किया है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने माता-पिता के सम्बन्ध में अपनी प्रसिद्ध रचना नैषधीयचरितम् में सर्गान्त के प्रत्येक पद्य में स्पष्ट निर्देश किया है, जैसे कि इस श्लोक से प्रमाणित होता है-

श्रीहर्ष कविराज राजिमुकुटालंकारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी चयम्।
तच्चिन्तामणिमन्त्र चिन्तनफले श्रृंगारभंगया
महाकाव्ये चारूणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः।।

श्रीहीर और मामल्लदेवी नाम दम्पत्ति को इनके माता-पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाकवि श्रीहर्ष के पिता विद्वान् एवं दार्शनिक थे। वे काशी के गहड़वालवंशीय राजा विजयचन्द्र के प्रमुख राज्याश्रित थे। एक किंवदन्ती के अनुसार श्रीहीर काशी के राजा विजयचन्द्र के प्रधान पण्डित थे। इन्हें राजा के ही सम्मुख मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक श्री उदयनाचार्य ने शास्त्रा र्थ में पराजित किया था। इसकी पुष्टि चाण्डूपण्डित की टीका के प्रारम्भ की पंक्तियों से भी होती है-

प्रथमं तावत्कविर्विजिगीषु-----------।

श्री उदयन से पराजित पिता ने राजदरबार में पुत्र से कहा यदि तुम सुपुत्र हो तो मेरे विजेता को पराजित कर मेरे इस महान मनस्ताप को दूर करोगे। पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्रीहर्ष शास्त्रों के अगाध सागर का मन्थन करने लगे। उन्होंने तर्क, न्याय, व्याकरण, वेदान्त, योग, आदि शास्त्रों का ही अध्ययन नहीं किया अपितु एक वर्ष तक एकाग्रचित्त से चिन्तामणि मन्त्र जप से प्रसन्न त्रिपुरा देवी के वरदान से असाधारण प्रतिभा एवं विलक्षण पाण्डित्य भी प्राप्त किया। परन्तु इस प्रखर पाण्डित्य से उनकी वाणी बड़े-बड़े पण्डितों की बुद्धि भी सीमा से भी परे हो गई। फलतः उन्होंने पुनः आराधना कर त्रिपुरादेवी का साक्षात्कार किया और अपनी इस कठिनाई का उपाय पूछा। देवी ने इन्हें अर्द्धरात्रि व्यतीत होने पर आर्द्रवस्त्र से मस्तक को आच्छादित कर दधि पीने की आज्ञा दी क्योंकि कफ बाहुल्य से बुद्धि स्वयं मन्द हो जाएगी। फलतः विद्वान् तुम्हारी वाणी को समझने में समर्थ होंगे। चिन्तामणि मन्त्र का संकेत कवि ने अपने काव्य में स्वयं किया है-

आवाम वामार्द्धे सकलमुभयाकार घटनाद्
द्विधाभूतं रूपं भगवदभिदेयं भवतियत्।।
तदन्तर्मत्र मे स्मरहरमयं सेन्दुममलं
निराकारं शश्भज्जप नरपते! सिध्यतु सते।।14/85

चिन्तामणि मन्त्र के महत्व का ही प्रतिपादन कवि ने नहीं किया अपितु नैषध को उसी मन्त्र चिन्तन का परिणाम भी बताया है-

तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तफले श्रृंगारभंगया महा-
काव्ये चारूणिः नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः।।1/145

श्रीहर्ष विलक्षण प्रतिभा एवं प्रखर पाण्डित्य को प्राप्त कर सरस्वती की अखण्ड आराधना में संलग्न हुए और अनेक ग्रन्थों की रचना कर गुणग्राही कन्नौरजाधिपति के दरबार में जाकर उनका प्रशस्ति गान किया-

गोविन्द नन्दनतया च वपुः श्रिया च
मस्मिन नृपे कुरूत कामधियं तरूण्यः
अस्त्रीकरोति जगतां विजये स्मरः स्त्री-
रस्त्री जनः पुनरनेन विधीयते स्त्री।।

उन्होंने अपने पिता को पराजित करने वाले उदयनाचार्य को भी ललकारा-

साहित्ये सुकुमारवस्तूनि दृढन्यास ग्रहग्रन्थिले
तर्के वा मयि संविधातरि समंलीलायते भारती।
शया वाडस्तु मदूत्तरच्छदवती दर्भाट रैरास्तृता।
भूमिर्वाहृदयग्मो यदि पतिस्तुल्या रतिर्यो षिताम्।।

विद्वान् उदयनाचार्य ने श्रीहर्ष के इस अद्भुत पाण्डित्य एवं विलक्षण प्रतिभा को देखकर अपनी पराजय स्वीकार कर श्रीहर्ष की प्रशंसा की-

हिंसाः सन्ति सहस्रशोऽपि विपिने शौण्डीर्यवीर्योद्धता-
स्तस्यै कस्य पुनः स्तुवीमहि महः सिंहस्य विश्वोत्तरम्।
केलिः कौल कुलैर्मदो मदकलैः कोलाहलं नामलैः
संहर्षो महिषैश्चयस्य मुमचे साहड् कृतेहुंकते।।

इसी राजा के आश्रय में श्रीहर्ष ने अपने अन्यतम काव्य नैषध की रचना की और उसके परीक्षण के लिए तात्कालिक प्रसिद्ध शारदापीठ गये। वहाँ से उसका परीक्षण करा एवं कश्मीर नरेश माधवदेव की मुद्रा में मुद्रित सफलता का प्रमाण पत्र लेकर लौटे।

महाकवि श्रीहर्ष किस प्रदेश के थे इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है- स्वर्गीय प्रो- नीलकमल भट्टाचार्य बंगाल को इनकी जन्मस्थली सिद्ध करते हैं। तथा आचार्य मिट्ठूलालशास्त्री कान्यकुब्ज मानते हैं। कुछ विद्वान् श्रीहर्ष की माता मामल्लदेवी के नाम के आधार पर इनको दक्षिण भारत का सिद्ध करते हैं। विद्यापति ने पुरुष परीक्षा में श्रीहर्ष को गौड़देशवासी बताया है। श्रीहर्ष गौड़ेश्वर से प्राप्त सम्मान को विशेष महत्व देते हैं-

ताम्बूलद्वयमासनं चलभते यः कान्य कुब्जेश्वराद्
यः साक्षात् कुरूते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्ष कवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्।।

अतः श्रीहर्ष कान्यकुब्ज (कन्नौयज) के थे। उनका निवास स्थान कान्यकुब्ज या काशी रहा होगा।

1.3.3 महाकवि श्रीहर्ष का समय:-

संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र महाकवि श्रीहर्ष का सम्बन्ध विद्वानों ने कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के साथ माना है। गहड़वाल नृपतियों की राजधानी कन्नौज थी, किन्तु काशी विजय के बाद उन्होंने काशी को ही अपनी राजधानी बनाया प्राचीन लेखमाला के अनुसार जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र श्रीहर्ष के आश्रयदाता थे। विजयचन्द्र की यश प्रशस्ति श्रीहर्ष ने अपनी विजय प्रशस्ति नामक रचना में की है। लेखमाला के 22 वें लेख के अनुसार जयचन्द्र का यौवराज्य दान पत्रनुसार संवत् 1225 अर्थात् 1169 ई0 सिद्ध होता है।

श्रीहर्ष के काल सम्बन्धी मत-मतान्तर का खण्डन करते हुए श्री बूलर महोदय ने भी इस मत का समर्थन किया है कि श्रीहर्ष जयचन्द्र के ही समकालीन थे।

रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई ब्रान्च की विद्वत्सभा द्वारा प्रकाशित 1875 के प्रबोध ग्रन्थ से भी इसी मत की पुष्टि होती है कि श्रीहर्ष जयचन्द्र के समकालीन थे। श्रीहर्ष ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य में व्यक्ति विवेककार महिम भट्ट का नामोल्लेख किया है—

दोषं व्यक्ति विवेकेऽमुं कविलोकविलोचने।
काव्यमीमांसिषु प्राप्त महिमा महिमाऽऽदृत।।

महिमभट्ट अभिनवगुप्त के परवर्ती कवि जान पड़ते हैं क्योंकि महिमभट्ट ने व्यक्ति विवेक में अभिनव गुप्त का नामोलेख किया है—

अत्र केचित्तु विद्वन्मानिः----मान्यमाना 'व्यड्न्त् इति
द्विवचनेनेदमाहुः यद्यम्यविवक्षितवाच्ये शब्द एवं व्यजकः
तथाप्यर्थस्य सहकारिता नत्रुटयति। यदाहुस्तद्भ्रान्तिमूलम।।

इसलिए महिम भट्ट का काल 1020 ई0 से परवर्ती ही सिद्ध होता है। व्यक्ति विवेक के टीकाकार ख्यातिलब्ध अलंकारशास्त्री रुप्यक का समय 1110-1150 ई0 तक माना जाता है।

अत एव महिमभट्ट का काल 1100 ई0 तक माना जा सकता है, इस प्रकार व्यक्तिविवेक को उद्धृत करने वाले श्रीहर्ष महिमभट्ट (1100) ई0 के परवर्ती ही होंगे।

श्रीहर्ष के व्यक्तित्व में कवि, दार्शनिक, योगी, ज्योतिषी आदि न जाने कितने रूपों का सामंजस्य था। उनकी रचनाएँ इस कथन को सार्थक करती हैं। श्रीहर्ष ने अनेक रचनाएँ की, जिनका उल्लेख अपनी प्रसिद्ध रचना नैषधीयचरितम् के सर्गान्त पद्यों में किया है।

नैषधमहाकाव्य का प्रथम नामोल्लेख अपनी कृतियों में करने वालों में महेन्द्रसूरि हैं। हेमचन्द्र के अनेकार्थसंग्रह की टीका में नैषध महाकाव्य के अनेक पद्य उदाहरण के रूप में दिये हैं। महेन्द्रसूरि जो हेमचन्द्र के शिष्य एवं उनके अनेकार्थसंग्रह के टीकाकार हैं। उनका समय हेमचन्द्र के समय 1088 ई0 से 1172 ई0 के मध्य निश्चित है।

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर श्रीहर्ष का समय बारहवीं शताब्दी का मध्य एवं उत्तरार्द्ध भाग मानना समीचीन होगा।

1.3.4 महाकवि श्रीहर्ष की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय:-

महाकवि श्रीहर्ष ने अनेक ग्रंथों की रचना की इन ग्रन्थों का नाम महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य फ्नैषधीयचरितम्य् में उल्लेखित किया है।

1- स्थैर्यविचारण प्रकरणः- यह रचना दार्शनिक विषय पर लिखी हुई जान पड़ती है। इसमें बौद्धों के क्षणिक वाद का निराकरण किया गया होगा। सम्प्रति यह ग्रन्थ अप्राप्य है-

तुर्यःस्थैर्यविचारण प्रकरण भ्रातर्ययं तन्महा-
काव्येऽत्र व्यभगलन्नहलस्य् चरिते सर्गो निसर्गौज्ज्वीजः।। नै04/123।।

2- विजयप्रशस्तिः- इस ग्रन्थ में जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र की, जो उस समय योद्धा तथा विजयी वीर होने के अतिरिक्त कवि के आश्रयदाता भी थे, प्रशंसा में यह प्रशस्ति ग्रंथ प्रणीत किया गया है। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है-

तस्य श्री विजयप्रशस्तिरचनातातस्य नव्येमहाकाव्ये
काव्ये चारूणि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत्पाञ्चमः।। नै05/138।।

3- खण्डनखण्डखाद्यः- श्रीहर्ष का यह प्रसिद्ध ग्रन्थ वेदान्त शास्त्र का अनुपम रत्न है। इसमें न्यायिक तर्क प्रणाली का अनुकरण कर लेखक ने न्याय सिद्धान्तों का खण्डन तथा अद्वैत सिद्धान्तों का मण्डन किया है-

षष्ठः खण्डनखण्डतयोऽपि सहजात् क्षोदक्षमे तन्महाकाव्ये--------(नै06/113)

4- गोडोर्वीशकुलप्रशस्तिः- विजय प्रशस्ति की तरह यह भी प्रशस्ति है, जिसको महाकवि ने (बंगाल) गौड़भूमि के किसी राजा की प्रशंसा में बनाया था—

गोडोर्वीशकुलप्रशस्तिभणिति भ्रातर्ययं तन्महाकाव्ये (नै07/110)

5- अर्णवर्णनः- इस रचना में समुद्र के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है-

संदृब्धार्णवर्णनस्य नवमस्तस्य व्यरंसीन्महाकाव्ये (नै04/160)

6- छिन्दप्रशस्तिः-‘छिन्द’ नामक राजा के संदर्भ में प्रणीत काव्य कृत्ति जान पड़ती है। छिन्द किसी देश का राजा था। उसका निवास स्थान कहाँ था, यह बिल्कुल अज्ञात है—

यातः सप्तशः स्वसु सुसदृशि छिन्दप्रशस्तेर्महाकाव्ये (नै017/222)

7- शिवशक्तिसिद्धिः- यह ग्रंथ शिव एवं शक्ति की साधना के विषय में लिखा गया तथा तन्त्रशास्त्र विषयक प्रतीत होता है। नैषधीयचरितम् महाकाव्यय् के 16/18 से तथा खण्डनखण्डखाद्य के मंगलाचरण से कवि की भगवान शिव के अर्धनारीश्वर रूप के प्रति सहज अनुरक्ति स्पष्ट है। कहीं-कहीं इसका दूसरा नाम शिवभक्तसिद्धि भी है—

यातोऽस्तिमिञ्शवशक्तिसिद्धिभगिनीसौभ्रात्रभव्ये महाकाव्ये--- (नै018/154)

8- नवसाहसांकचरितचम्पूः- सम्भवतः राजाभोज के पिता ‘नवसाहसाड्क’ उपाधि वाले सिन्धुराज का रचित होगा। पद्मगुप्त ने भी नवसाहसाड्क चरित महाकाव्य में सिन्धुराज के चरित का वर्णन किया है। श्रीहर्ष ने इसे चम्पूकाव्य बताया है—

नवसाहसांकचरिते चम्पूकृतोऽयं महाकाव्ये--------(नै022/149)

9- नैषधीयचरितम्:- नैषधीयचरितम् महाकाव्य संस्कृत साहित्य के बृहत्त्रयी संज्ञक महाकाव्यों में सर्वोत्कृष्ट रत्न है। यह महाकवि श्रीहर्ष की विद्वता तथा पाण्डित्य को प्रदर्शित करने वाला आकार ग्रन्थ है। श्रीहर्ष महादार्शनिक, वैयाकरण, ज्योतिष आदि सिद्धान्त पारङ्गत दार्शनिक थे। इनके वैदुष्य के अनेक रूप नैषध महाकाव्य में देखने को मिलते हैं। इन्होंने भारवि की अलंकार प्रधान एवं अर्थ गाम्भीर्य युक्त शैली को अपने काव्य में पराकाष्ठा प्रदान की है। इनके काव्य में कालिदास के सुन्दर उपमा प्रयोग, भारवि के अर्थगाम्भीर्य तथा दण्डी के पद लालित्य का सुष्ठु समन्वय एकत्र दिखाई पड़ता है—

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः
उदिते नैषधे भानौ क्व माघः? क्व भारविः?।।

नैषधीयचरितम् महाकाव्य पुराणों एवं महाभारत में वर्णित प्रसिद्ध नल-दमयन्ती के प्रणय आख्यान को लेकर लिखा गया है। इसकी मुख्य कथावस्तु महाभारत के वनपर्व में वर्णित नलोपाख्यान से ली गयी है। इस महाकाव्य में निषध देश के अधिपति राजा 'नल' के चरित्र का उत्तम रीति से वर्णन किया गया है, जो यशस्वी, पराक्रमी विविध शास्त्र ज्ञाता एवं सदाचारी थे।

इस महाकाव्य में राजा नल-दमयन्ती की प्रणय कथा तथा विवाहादि का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। अतः इस महाकाव्य का अंगीरस श्रृंगार है एवं करुण, हास्य आदि रसों की अंग रूप में योजना की गयी है। पुरुषार्थ चतुष्टय में इस महाकाव्य का मुख्य फल काम-पुरुषार्थ है। इस महाकाव्य में 22 सर्ग, 2828 श्लोक हैं। विविध अलंकारों एवं अतिशयोक्ति के द्वारा कवि ने राजा नल-दमयन्ती की प्रणय-कथा के अतिरिक्त प्रकृति के विविध रूपों का सुन्दर वर्णन किया है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ करते हुए कवि ने वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का प्रयोग किया है। साथ ही राजा नल की कथा को अमृत से भी श्रेयस्कर एवं कलियुग में पापों के विनाश करने वाली रूप में वर्णित किया है।

1.3.5 महाकवि श्रीहर्ष की भाषा शैली:-

संस्कृत काव्य के अपकर्ष-काल में आलोचकों की दृष्टि श्रीहर्ष के महनीय काव्य की ओर आकृष्ट हुई है, क्योंकि अन्धकार युग को आलोक प्रदान करने वाला यही गौरवमय प्रशंसनीय काव्य है। श्रीहर्ष अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा अपने काव्य की मधुरता से स्वतः परिचित थे और इनका उन्हें गर्व भी था। अपने काव्य के लिए नवार्थ घटना के अपरित्याग की अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह भी किया। तथ्य यह है कि नैषधीयचरितम् में वैदग्ध्य तथा पाण्डित्य का परम मञ्जुल योग काव्य की उदात्तता का पूर्ण परिचायक है। श्रीहर्ष विशुद्ध-विदग्ध पदावली के आदरणीय आचार्य हैं। और कल्पना की भव्यता के कारण वर्णन की नवीनता सर्वत्र चमत्कारिणी है। चन्द्रमा के कलट को कवि की भावनामयी दृष्टि नाना रूपों में अटित करती है। नल के यात्र प्रसग् में सेनाओं के द्वारा उत्थापित धूलिराशि से पटित समुद्र के मंथन से उत्पन्ने चन्द्रमा उसी पट को धारण करता है—

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापाऽनलधूममज्म्।
तदेवगत्वा पतितं सुधाऽम्बुधौ दधाति पंकोभवदंकतां विधौ।।

सत्य है कि नैषध की रचना पण्डितों के निमित्त है। श्रीहर्ष ने स्वीकार किया है कि 'पाण्डित्यमन्य' (झूठे पाण्डित्य वाले) गर्वीलों के लिए ही इसके भीतर स्थान-स्थान पर उन्होंने स्वयं 'ग्रन्थग्रन्थि' रख दिया है, जिन्होंने श्रद्धा पूर्वक गुरु की आराधना कर उसकी कृपा से इन ग्रन्थियों को ढीला कर लिया है, उनके लिए नैषध का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यह 'विद्वज्जनाबोध्य' काव्य है। इसीलिए आलोचकों की दृष्टि में पर्याप्त अन्तर है। प्राचीन कवि-पण्डितों की दृष्टि में तो यह माघ तथा भारवि दोनों को परास्त करने वाली साहित्यिक रचना है-

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारवि।।

श्रीहर्ष में कवि प्रतिभा अवश्य है और वह भी ऊँचे दर्जे की है, परन्तु कालिदास की रसभावमयी पद्धति से उसकी कथमपि तुलना नही की जा सकती कालिदास नैसर्गिक तथा रसभाव के द्युतिमान कवि हैं। श्रीहर्ष अलंकृत शैली के सर्वप्रधान काव्य रचयिता है। अलंकारों में श्रीहर्ष ने श्लेष, यमक तथा अनुप्रास के विशेष प्रयोग किये हैं। सायंकाल के समय-चारों ओर फैले हुए अन्धकार के ऊपर बड़ी ही सुन्दर उक्ति कवि ने की है—

ऊर्ध्वार्पितन्युब्जकटाहकल्पे
यद्व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन।

न्यधापि तद्धूममिलद्गुरूत्वं
भूमौ तमः कज्जमस्खलत्किम्।।

इसी प्रकार विभिन्न् अलंकारों के माध्यम से व्या करण, काव्योशास्त्र , ज्योतिष, पुराण, धर्मशास्त्रा दि सम्बन्धी विद्वता को काव्य में स्थान दिया है—

अजस्रमभ्यासमुपेयुषा समं मुदैव देवः कविना बुधेन च।
दधौ पटीयान् समयं नयन्नैयं दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने।।

अतः पांडित्य प्रदर्शन, कल्पना, श्रृंगर वर्णन, अलंकार, काव्यकलेवर इत्यादि दृष्टियों से नैषधीयचरितम्, किरातार्जुनीयम् और शिशुपालवधम् से उत्कृष्ट सिद्ध होता है। किन्तु आचार्य मम्मट ने नैषध की आलोचना करते हुए कहा है कि काव्यप्रकाश के सप्तम उल्लेख को लिखने के पूर्व यदि यह ग्रन्थ मुझको प्राप्त हो जाता तो काव्य दोषों के अन्वेषण में मुझे इतना श्रम न करना पड़ता।

नैषधीचयरितम् महाकाव्य श्रृंगार रस प्रधान है। अतः इनमें सौन्दर्य की पराकाष्ठा देखने को मिलती है और इस पराकाष्ठा को तिङ्गकृत्, तद्धित, उपसर्ग, निपात, सुप् आदि प्रत्ययों के विशिष्ट प्रयोग और अद्भुत बना देते हैं। यथा कवि ने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की सुखद परिणति करते हुये सर्ग के अन्त में आनन्द पद का प्रयोग किया है। आनन्द पद आङ् उपसर्ग पूर्वक टुनदि समृद्धौ, समृद्धिप्रजापश्वादि धातु से घञ् प्रत्यय का संयोग होकर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है प्रसन्नता, हर्ष, सुख, ईश्वर, परमात्मा, शिव इत्यादि। इसका तात्पर्य है कि नैषधीयचरितम् परमात्मा प्राप्ति के सुख के समान आनन्दाधायक और कल्याणकारी महाकाव्य है। स्वयं महाकवि इस बात को प्रथम श्लोक से परिपुष्ट कर देते हैं-

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथास्तथाद्रियन्ते न बुधाः सुधामापि ।
नलः सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः स राशीरासीन्महसां महोज्ज्वलः ।।

श्लोक में पठित निपीय पद कृदन्त है और आर्दियन्ते तिङन्त है। निपीय अर्थात् नितरां आस्वाद्य। नि उपसर्गपूर्वक पीङ् पाने धातु से पाणिनि अष्टाध्यायी पठित ‘समानकर्तृकयोः पूर्वकाले’ सूत्र से क्त्वा प्रत्यय का नियम है किन्तु ‘समासेऽनञ् पूर्व क्त्वोल्यप्’ सूत्र से क्त्वा प्रत्यय का निषेध होकर ल्यप् होने पर निपीय पद निष्पन्न होता है। यदि यहाँ पीङ् धातु के स्थान पर पाने अर्थ की ही पा धातु का प्रयोग किया जाता तो निपाय पद निष्पन्न होता। ऐसी स्थिति में निपीय पद से उत्पन्न वैशिष्ट्य की प्राप्ति नहीं होती। चूंकि निपीय और आद्रियन्ते दोनों का कर्ता समान है। अतः निपीय पूर्वकालिक क्रिया है उसका तात्पर्य यह हुआ कि जब तक नलकथा का आस्वादन नहीं किया जाता तब तक उसकी महिमा अज्ञात रहती है किन्तु जो एक बार नल कथा का आस्वादन कर लेता है, उसकी पुनः पुनः नल कथा में प्रवृत्ति होने से अन्यासक्तियाँ छूट जाती है। आद्रियन्ते आङ् उपसर्गपूर्वक दृङ आदरे धातु से आत्मनेपद का रूप है। इसका तात्पर्य है कि नल कथा के आस्वादनोपरान्त अमृत भी गौण है। अर्थात् अमृत दुर्लभ है और नल कथा अमृत से भी श्रेष्ठ है।

ऐसी स्थिति में अमृत की अपेक्षा नल कथा की अतिशय दुर्लभता और उत्कृष्टता का द्योतन होता है। यही कारण है कि अमृतभोजी देवताओं के हृदय में भी अब अमृत के प्रति आदर नहीं रहा। अतः वे अमृत का तिरस्कार करके नल कथा का पान करने के लिये लोलुप रहते हैं।

श्रीहर्ष के समय पण्डितों ने कवि-मूल्यांकन की कसौटी कलापक्ष को ही निर्धारित किया था। अतः उस युग की दृष्टि से यदि हम नैषधीयचरितम् का मूल्यांकन करें तो निःसदेह यह सर्वोकृष्ट महाकाव्य कहा जा सकता है। नैषध में कलापक्ष की उत्कृष्टता के कारण ही यह भी कहा गया है-

1.4 महाकाव्य के रूप में नैषधीयचरितम्:-

आदिकवि द्वारा रचित रामायण से जिस संस्कृत महाकाव्य- परम्परा का समारम्भत हुआ, उस परम्परा में महाकवि श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य को संस्कृत के महाकाव्यों में उच्च स्थाप प्राप्त है। और कुछ विचारकों का तो कहना है कि संस्कृत के लघुत्रयी, बृहत्त्रयी और पञ्च महाकाव्यों में नैषधीयचरितम् बहुत प्रसिद्ध है, जो तत्कालीन महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर अधिक से अधिक खरा उतरा है । इसी कारण महाकाव्यों की श्रेणी में यह काव्य सर्वोपरि प्रतिष्ठित है । हम 'नैषधीयचरितम्' को एकदम यह स्थान प्रदान करें या न करें पर इतना तो अवश्य है कि इस महाकाव्य ने अपनेगुणों के कारण संस्कृतसाहित्य में विशिष्टिस्थान प्राप्त किया है। और संस्कृतमहाकाव्य की बृहत्त्रयी (किरातर्जुनीयम्, शिशुपालवधम एवं नैषधीयचरितम्) में इसका प्रमुख स्थान है तथा समस्त संस्कृत साहित्य में नैषधीयचरितम् के समान दूसरा कोई ऐसा ओजपूर्ण काव्य नहीं मिल सकेगा ।

1.4.1 महाकाव्य का लक्षण:-

महाकाव्य शब्द महत और काव्य इन दो शब्दों के समास से बना है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है।–

किम्प्रथमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मबनः।
कर्ता काव्स्यद महतः क्वषचासौ मुनिपुंगवः।।

'कर्ता काव्यिस्यय महतः' अर्थात् काव्य कि विशालता, प्रतिष्ठा, श्रेष्ठता ये महाकाव्य शब्द' की ओर संकेत करते हैं। काव्यशास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वानाथ द्वारा रचित साहित्य दर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:—

सर्गबन्धों महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सदृशः क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वितः।।
एकवंशभवा भूपा कुलजा वहवोऽपिव वा।
श्रृंगार वीर शान्तानामेकोड्.गी रस इश्यते।।
अड्गानि, सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः।
इतिासोदभवं वृत्तमन्यद्वा सश्रनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेश्वेकं च फल भवेत।
आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एवं वा।।
क्वाचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टातधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चअन दृश्यकते।।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः।।
रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादयः।
वर्णननीया यथायोगं सासेपाश अभी इह।।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा।
नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु।।

अर्थात् जिसमें सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है। उसमें नायक कोई देवता होता है या उच्चवन्शोंत्पन्न क्षत्रिय एवं वीरता के गुणों से युक्त पुरूष होता है। वह धीरोदात्त प्रकृति का नायक होता है। एक वंश के कई राजा भी किसी एक महाकाव्य के नायक हो सकते है। प्रधान रस श्रृंगार, वीर या शान्त होता है और अन्य रस उसके सहायक होते है। कथावस्तु नाटक के समान होती है। वह ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन के सत्कर्म से सम्बन्धित हो सकती है। पुरुषार्थ-चतुष्ट्य का वर्णन महान काव्यों में किया जाता है और उन चारों पुरुषार्थों में किसी एक पुरुषार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य होता है। उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन प्रधान होता है। वर्ण्य विषय में कहीं दुर्जनों की निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा। सन्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, गोधूली, दिन, अन्धकार प्रेमियों का मिलन और वियोग, आखेट, ऋषि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, आक्रमण, विवाह उपदेश, पुत्रजन्म आदि सभी प्रकार के वर्णन महाकाव्य में होते है। छन्द एक सर्ग में एक ही होता है। सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है। कभी-कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी द्रष्टव्य होते है। महाकाव्य में छन्दों की संख्या आठ से अधिक अथवा कम से कम आठ होनी चाहिए। ये सर्ग न तो बहुत छोटे हो और नहीं बहुत बड़े सर्ग के अन्त में आगे आने वालो कथा की सूचना होती है। महाकाव्य का नामकरण कवि वर्ण्य विषय नायक या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होता है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके अन्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर होता है।

1.4.2 नैषधीयचरितम् महाकाव्य का महाकाव्यत्व:-

महाकाव्य के पूर्वोक्त सभी लक्षण महाकवि श्रीहर्ष की रचना नैषधीयचरितम् में मिलते है। दशरूपककार आचार्य धनञ्जय नायक के समान्यं लक्षण को प्रतिपादित करते हुए कहते है–

नेता विनीतो मधुरस्या्यसभगी दक्ष:प्रियंवद ।
रक्त लोक: शुचिर्वाग्मी रूढवंश: स्थिरो युवा।।
वुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसन्वित:।
शूरो दृढश्चा तेजस्वी शास्त्रतचक्षुश्चि धार्मिक:।।

नायक उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नल है। नल धीरोदात्त नायक की कोटि में आते है। जैसा की दशरूपककार धीरोदात्त नायक का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि-

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान विकत्थनः।
स्थिरा निगूढ़ोहंकारों धीरोदात्तों दृढ़व्रतः।।

महाकाव्य का सम्पूर्ण कथानक सर्गों में विभक्त है, नैषधीयचरितम् के कथानक को 22 सर्गों में विभक्तक किया गया है।

महाकाव्य में कोई कुलीन क्षत्रिय अथवा देवता महाकाव्य नायक होता है कभी-कभी एक ही वंश में अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। वह सभी गुणों से युक्त होने चाहिए। नैषधीयचरितम् का राजा उत्तम कुल में उत्पन्न क्षत्रिय नल है।

श्रृंगार, वीर और शान्तम रसों में से एक रस महाकाव्यी का प्रधान होता है। नैषधीयचरितम् का प्रधान रस श्रृंगार है। महाकाव्य के अन्य रस अप्रधानरूप में होने चाहिए। नैषधीयचरितम् में अंग अर्थात् अप्रधान रस के अतिरिक्त शेष सभी रसों का समावेश है।

महाकाव्य में नाटक की सभी सन्धियों का प्रयोग किया जाता है। इस महाकाव्य में इन पाचों सन्धियों का प्रयोग हुआ है।

महाकाव्य कि कथा इतिहास पर आधारित कवि की कल्पना से प्रसूत व किसी प्रचीन आख्यान पर आधारीत होती है। इस महाकाव्य में वे सभी गुण का समावेश है। महाकाव्य में साधारणत: धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष का वर्णन होता है, परन्तु विशेष रूप से इस में से किसी एक का सम्पूर्ण फल प्राप्ति के रूप में वर्णन होता है। महाकवि हर्ष द्वारा रचित महाकाव्य नैषधीयचरितम् में काम नामक वर्ग की प्रधानता एवं शेष तीनों वर्गों की अप्रधानता है।

महाकाव्य के प्रत्येक वर्ग में एक ही प्रकार की छन्द योजना रहती है, सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन कर दिया जाता है। सर्गों का आकार न अधिक बड़ा होता है न अधिक छोटा होता है। महाकाव्य में इस प्रकार के आठ से अधिक सर्ग होते हैं। किसी एक सर्ग में एक से अधिक प्रकार के छन्दों का प्रयोग भी किया जाता है। नैषधीयचरितम् में एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक वर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन है। इसके प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया गया है, अन्त में क्रमश: दोधक, बसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित छन्दों से सर्ग समाप्त होता है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में आगामी सर्ग के कथानक की सूचना होती है। इस नियम का निर्वाह नैषधीयचरितम् के प्रत्येक सर्ग में प्राप्त होता है।

महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण किया जाता है जो नमस्कार, आशीर्वाद, अथवा कथावस्तु का निर्देश होता है। मंगलाचरण मुख्य कथा का मार्ग प्रशस्त करता है। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् में कथावस्तु का निर्देशात्मक मंगलाचरण किया है। इसके प्रथम छन्द से ही पता चलता है कि इसमें राजा नल सम्बन्धी कथानक है। इस महाकाव्य का प्रथम छन्द निम्नलिखित है—

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां, तथाऽऽद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि ।
नल: सितच्छत्रि तकीर्तिमण्डलः, स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः ॥

महाकाव्य में संध्या, सूर्योदय, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, दिवस, प्रातः, मध्यान्ह, सागर, नगर युद्ध, यात्रा, विजय, क्रीडा, उद्यान, बिहार, मंत्र आदि विविध विषयों का वर्णन होता है । श्री हर्ष ने अपने महाकाव्य नेतृत्व में इसमें से अधिकांश का वर्णन किया है ।

महाकाव्य का नामकरण से कथानक नायक कवि अथवा किसी व्यक्ति के नाम के आधार पर होता है, किन्तु सर्गों का नामकरण सर्गगतकथा के आधार पर ही होना चाहिए। श्रीहर्ष ने महाकाव्य का राजा नल के नाम पर किया है जो इस महाकाव्य का नायक है। राजा नल निषध देश के राजा हैं, नैषध शब्द का अर्थ है- निषध से सम्बन्धित, नैषधीय शब्द का अर्थ है- नैषध का। इस प्रकार इस महाकाव्य का नाम नैषधीयचरितम्, राजा नल से सम्बन्धित कथा है।

महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष में से एक का होना है, इसमें धर्म तथा न्याय की विजय और अन्याय का विनाश होना चाहिए। नैषधीयचरितम् में काम की उपलब्धि वर्णित है। इन सभी लक्षणों के साथ-साथ कवि को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि वह अपने महाकाव्य की समाप्ति के द्वारा मानव के लिए कोई आशापूर्ण सन्देश अवश्य दें इस प्रकार स्पष्ट है कि नैषधीयचरितम् महाकाव्य शास्त्री लक्षणों से युक्त एवं सर्वाड्गपूर्ण महाकाव्य है।

1.4.3 नैषधीयचरितम् महाकाव्य की कथावस्तु का आधार:-

नल दमयन्ती की कहानी भारतीय जीवन की प्रसिद्ध कथा है। यह केवल सुधावधारणी ही नहीं है, कलिनाशिनी भी है—

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षे कीर्तनं कलिनाशनम्॥

माना जाता है कि यह त्रेता युग की कथा है। निषदराज नल का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी है और यहां अनेक पुराणों में भी पाई जाती है- मत्स्य, स्कन्ध, वायु, पद्म, अग्नि आदि में और महाभारत में भी। सोमदेव भट्ट के कथासरित्सागर में भी यह कथा है। समीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष स्वकाव्य रचना में मुख्यतया महाभारत की कथा को आधार बनाया है इस प्रकार यह कहना समीचीन लगता है कि नैषधीयचरितम् का उपजीव्य महाभारत का नलोपाख्यान है। जो महाभारत के वनपर्व के उनतीसवें अध्याय (58-78) में है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में 143 पद्य हैं व सर्ग का प्रारम्भ वंशस्थ छन्द है व सर्ग कि समाप्ति दोधक वृत्त से हो रही है। इस महाकाव्य में सर्ग के अन्तिम प्रत्येक पद्य में आनन्द पद का प्रयोग किया है। अत: यह आनन्दांऽक महाकाव्य नाम से भी जाना जाता है।

1.4.4 नैषधीयचरितम् महाकाव्य के पात्रों का परिचय:-

नैषधीयचरितम् में प्रधान पात्र नल और दमयन्ती हैं। प्रतिनायक के रूप में इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, जो आगे चलकर नल के सहायक हो जाते हैं। वस्तुतः 'नलोपाख्यान' का प्रतिनायक तो कली है, जिसका उपयोग ही नैषधीचरितम में अवाञ्छित रहा है रहा है। केवल सत्रह सर्ग में उसका रोष दिखाया, जिसमें चार्वाक दर्शन का दर्शन तो हो जाता है, शेष के लिए अवसर ही नहीं आया। शेष सामान्य पात्र हैं विदर्भ नरेश भीम, स्वयम्वर में एकत्र नरेश और देवी सरस्वती तथा दमयन्ती की सखियां, इन सब की प्रसंगत: चर्चा आ गई है। भीम एक हित चिन्तक पिता है, देवी सरस्वती वाग्देवी है, जिन्होंकने स्वयम्वर में दमयन्ती का दिशानिर्देश किया। कला आदि सखियां राजनंदनी की उपयुक्त परिचारिकाएँ हैं, राज मर्यादा को समझने वाली हैं। एक विशिष्ट पात्र है पक्षी हंस जो एक कुशल दूत का कार्य करता है और जिसकी कथा के मध्य में करुण प्रसंग की मार्मिक अभिव्यक्ति हो गई है। इस प्रकार 'नैषध' में मानव-मानवीय देव-देवी और मानवेतर प्राणी प्रकार के पात्र हैं, जो यद्यपि संख्या में थोड़े हैं तथापि गुणों में प्रभूत हैं।

नल (नायक) - राजा नल परम्परा के अनुसार नल सद्वंशोत्पन्न कुलीन क्षत्रिय हैं, जिसे पुराण आदि में पुण्यश्लोक कहा गया है, जो प्रातः स्मरणीयों में प्रथम है-

पुण्य श्लोको नलो राजा पुण्य श्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः॥

नैषधीयचरितम् के आरंभ में तीन श्लोक में नल का वर्णन किया गया है –

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां, तथाऽऽद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।
नलः सितच्छत्रि तकीर्तिमण्डलः, स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः॥
रसैः कथा यस्य सुधाऽवधीरिणी, नलः स भूजानिरभूद्गुणाद्भुतः।
सुवर्णदण्डैकसितातपत्रित-ज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः॥
पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे, स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि, स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति॥

यहां उसके रूप, गुण, समृद्धि, बल, वैभव, प्रभाव, श्री, शोभा, कान्ति, उदारता, वीरता, दानशीलता, आदि गुणों का विस्तार से उद्घाटन किया गया है। वे चतुर्दश विद्याओं के ज्ञाता हैं-

अधीतिबोधाचरणप्रचारणै, र्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान्कुतः स्वयं, न वेद्मि विद्यासु चतुर्दश स्वयम्॥

वे कला मर्मज्ञ हैं महोज्ज्व ल हैं और महसां राशि हैं। वे धीरोदात्त नायक हैं- आत्मप्रशंसा की श्लाघा न करने वाले, क्षमावान, अतिगम्भीर, निन्दा प्रशंसा हर्षशोकादि से अप्रभावित, स्वाभिमानी और वचनपालक है। वे अनुराग की गंभीरता, करुणार्द्रता, कलाविलाश प्रियता, दानशीलता, दृढ़प्रतिज्ञता आदि के दर्शन इस काव्यत में अनेक स्थानों पर हुए हैं। दमयन्ती के प्रति उनका अनुराग गूढ ही रहा, उन्होंने उसे प्रकट न होने देने के लिए एकांत उद्यान सेवन उचित समझा, उन्होंने दमयंती की उसके पिता से याचना भी नहीं कि । वचन निर्वाह करने के लिए, देवों को दान करने के लिए, उन्हों ने ऐसा दूत कार्य किया, जो स्वनयं उनके लिए स्वाकर्थ विघातक था । उनकी करुणा शीलता हंस प्रसंग में व्यक्त हुई, उनकी करूणाशीलता और उदार व्येवहार के कारण ही हंस ने उनका दूतत्वग स्वीहकारा। काव्य में उनके चरित्र का विकास दिखाया गया है, जो काव्यन के नाम और चरित को प्रमाणित करता है। जिसका उदात्तदता और महत्ता का चरित पाठकों पर व्यापक सत्प्रंभाव पड़ता है ।

दमयन्ती (नायिका) - नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के अनुसार सुख की मूल स्त्रियां होती हैं, उनके भिन्न-भिन्न स्वभाव होते हैं। इनके प्रकृत्यानुसारी तीन भेद होते हैं- कुलीना (आभ्यन्तरा) बाह्या (वेश्या) और कृतशौचा (बाह्याभ्यंतरा) अभ्यान्तर स्त्री पात्रों में महादेवी देवियॉ और उनका समस्त परिचारिका मण्डल आता है। दमयन्ती की सखियां भी इसी मंडल की अभ्यांतर पात्रियॉ हैं।

नैषधीयचरितम् में प्रधान पात्री दमयन्ती भी कुलीना नायिका है, अपने कोमार्यकाल में वह (अन्या) अनूठा परकीया है, विवाहोपरान्त वह स्वा (स्वीया) हो जाती है। नायक सम्बन्ध में वह आरम्भ से विरहोत्कठिता है, विवाह उपरान्त वह प्रिय की प्रिया है, नैषधीयचरितम् में दमयन्ती को रूप गुण की दृष्टि से विश्व में सर्वोत्कृष्ट चित्रित किया गया है उनका नाम ही दमयन्ती इसलिए पड़ा है कि वह अपनी तनुश्री से त्रिलोकी की सुन्दरियों के सौन्दर्याभिमान का दमन करने वाली है—

भुवनत्रयसुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम्।
उदियायसतस्त्नुहश्रियादमयन्तीतिततोऽभिवांदधौ।।

नैषधीयचरितम् के द्वितीय सर्ग मैं उनके गुण रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है और उस विवरण के पश्चात हंस वाणी में यह बताया गया है कि दमयन्ती नल के बिना शोभा न पासकेगी और नल का यह रूप उसके बिना निष्फल है। इस प्रकार नल- दमयन्ती को परस्परानुकूलता बनाई गयी। नल नरश्रेष्ठ हैं और दमयन्ती त्रैलोक्यसुन्दरी है-

प्रीयं प्रियां च त्रिजगज्जयिश्रियौ, लिखाधिलीलागृहभित्ति कावपि ।
इति स्म सा कारुवरेण लेखितं, नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते ॥

वह नल के सदृश हैं- 'सदृशी तव शूर सा' हन्स दूत ने इसी सब का ध्यान रखते हुए कहा है-

धन्या सि वैदर्भि गुणेरूदारैर्यया समाकृष्य त् नैषधोऽपि।
इत: स्तुवति: का खलु चन्द्रिका या यदब्धिमप्युसत्तदरलीकरोति।।

वह विदर्भकुमारी धन्य है, जिसने धैर्यधन निषधराज को भी आकृष्ट कर लिया। जैसे चांदनी गंभीर सागर को भी उत्तरल कर देती है, वैसे ही दमयन्ती ने नलकूप उत्तरल कर दिया। इससे अधिक उसके विषय में और कहा ही किया जा सकता है?

दमयन्ती को अनेक स्थानों पर विविध स्वरूपों का तनुश्री का तथा अंग सुषमा का विशद चित्रण हुआ है, जिससे वह सर्वदा श्रेष्ठ आदर्श नायिका प्रमाणित होती है । आरंभ में वह मुग्धा अनुरागिनी नायिका है। उसका नल के प्रति अनुराग इतना दृण है कि विश्व में नल के आगे वह किसी को मान्यता नहीं देती, न किसी राजा सम्राट को, न इंद्रादि देवताओं को। उसका चित्र तो केवल नल की कामना करता है- 'चेतो न लंकामयते मदीयम्' यदि नल नही तो फिर अनल से जल जाना हि ठीक है।-

'चेतोऽनलं न कामयते मदीयम्'विवाह होने के बाद उसका अनुराग पूर्णता को प्राप्त हो जाता है और वह नल को तृतीय पुरुषार्थ वारिधि में तैरने वाली नौका बन जाती है और फिर दिवानिश आनन्द उल्लास विलास का सागर उमड पड़ता है। दमयन्ती विश्व काव्य की अविस्मरणीय नायिका है जिसके बाह्याभ्यन्तर श्रृंगार से नैषधीयचरितम् मंडित है।

1.4.5 नैषधीयचरितम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग का कथारसार:-

भूप: कोपि नलोनलद्युतिरभूत्तमत्रानुरागं दधौ
वैदर्भी दमयन्तिका गुणरूचि: सोप्यास तस्यां स्पृथही ।
जातु स्वारन्ततविनोदनाय लीलाटवीं पर्यटन्
हैमं हंसमसौ निगृह्य तरसा दूनं दयालुर्जहौ।

प्रस्तुत सर्ग में श्रीहर्ष ने नायकनायिका का परिचय दिया है। निषध देश के राजा महाराजा नल के गुणों का वर्णन । उनके गुणों को दूत, द्विज और बन्दी आदि से सुनकर विदर्भ देश के नरेश भीम की पुत्री दमयन्ती का उनमें पूर्वराग का वर्णन । उसी तरह दमयन्ती के लोकोत्तर सौन्दर्य और गुण गुणों को सुनकर उन पर नल के अनुराग का वर्णन । दमयन्ति के विरहसे आकुल होकर सभाभवन में रहने में नल की असमर्थता। मन बहलाने के लिए बगीचे में जाने के लिए उनकी इच्छा। नल के घोड़े का वर्णन । घुड़सवार अपने वयस्कों के साथ उपवन में नल की यात्रा का वर्णन । उपवन के साथ वहां के तालाब का सविस्तार से वर्णन । वहां पर एक सुनहरे हंस को देखकरन नल द्वारा उनका ग्रहण । मनुष्य वाणी में नल की निंदा कर अपनी माता, हंसी और बच्चों की शोचनीयता को प्रकाश कर हंसका अतिकरूण विलाप करना । उससे आर्द्रचित होकर सहृदय नल का उसे छोड़ देना ।

1.5 महाकवि श्रीहर्ष की काव्यिप्रतिभा एवं दार्शनिकता:-

'मा निषाद प्रतिष्ठास्त्व मगम: शाश्वाती: समा: ।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधी: काममोहीतम्'।।

मानव के अन्त:करण में जब विशिष्ट परिस्थतिजन्य चिन्त न होता है, तब उसके हृदय से काव्यकत्व का प्रस्फुटन अनायास ही होने लगता है। यद्यपि कवि निरंकुश होता है जैसा कि ईशावास्योनपनिषद में कहा गया है 'कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू' अर्थात् कवि अपने जगत् का स्वतन्त्र सम्राट होता है और यह तो सर्वविदित तथ्य है कि काव्य मनीषियों की रचनाएं ईश्वर की सृष्टि की तरह कभी जीर्ण भी नहीं होती। नैषध महाकाव्यक भी कुछ ऐसा ही महाकाव्यए है जो कवि कि चिन्तन शीलता, अलौकिक भावानुभूति को आलोकित करता है। महाकवि श्रीहर्ष का दार्शनिक दृष्टिकोण पूर्ण अद्वैती है। नैषधीयचरितम् के 17 वें सर्ग में उनके दार्शनिक पान्डित्य का दर्शन किया जा सकता है। यहां चार्वाक मत का मण्डन तथा खण्डन इतनी पौढ़ता से किया गया है कि यह सर्ग किसी साहित्यिक ग्रन्थ न होकर के दार्शनिक ग्रन्थ के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है।

महाकवि श्रीहर्ष के वैशेषिक दर्शन के दृष्टिकोण में वह कहते हैं कि यह दर्शन अन्धकार निरुपक दर्शन है, उनका कहना है कि जिस दर्शन का आदि प्रवर्तक ही उलूक नामधारी आचार्य है वही तो अंधकार के निरूपण करने में समर्थ हो सकता है। इस उक्ति में उनके पांडित्य का भी विशेष पुट है- 'ननु दशमं द्रव्यं तम: कुतो नोक्त्म्' वे न्यायशास्त्र के रचयिता महर्षि गौतम को इसलिए गौतम मानते हैं कि वह मुक्त दशा से चेतन प्राणियों को विशेष गुण से हीन बतलाकर उनकी पत्थर के समान निर्जीव स्थिति को स्वीकार करते हैं।–

मूक्तेत य: शिलात्वा य शास्त्रकमूचे सचेतसाम् ।

गोतमं तमवेक्ष्यै व यथा वित्थं तथैव स: ।।

नैषधकार का अपना मत अद्वैत वेदान्त है और इसका उन्होंने स्थान-स्थान पर वर्णन भी किया है। जैसे स्वयंवर में नल की आकृति धारण करने वाले पांच नलों में से सत्यभूत पंचम नल में दमयन्ती की श्रद्धा नहीं उत्पन्न हुई क्योंकि माया नलों का रूप इतना आकर्षक था कि उसकी दृष्टि इन्हीं को देखने में फंसी रह गई।

श्री हर्ष के ऊपर प्राचीन कवियों में से कालिदास तथा माघ का प्रभाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। दमयन्ती के स्वयम्बर की कल्पना का जनक इन्दुमती स्वयम्बर ही है। कालिदास ने जहां एक सर्ग के भीतर ही इन्दुमती के स्वयम्बर का वर्णन प्रस्तुत किया, वहां श्री हर्ष ने बडे – बडे चार सर्गों में दमयन्ती का स्वयम्वर वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ किया, यहां भारतवर्ष के ही गणमान्य महिपाल नहीं आते प्रत्युत: नाग, यक्ष, राक्षस लोग भी पधारते हैं। माघ का प्रभाव प्रभात वर्णन के ऊपर स्पष्टत: विद्यमान है। अन्तर है शैली का। माघ ने प्रभात वर्णन में स्वाभाविकता का साम्राज्य है, तो हर्ष के वर्णन में अतिशयोक्ति का भव्य विन्यास देखने को मिलता है।

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास नैसर्गिकता के द्युतिमान् कवि हैं, महाकवि श्रीहर्ष अलंकृत शैली के सर्वश्रेष्ठ काव्य रचयिता हैं। श्रीहर्ष श्रृंगार कला के कवि हैं परंतु उनका श्रृंगार वर्णन कवि हृदय का स्वाभाविक उद्गम न होकर के वात्स्यायन शास्त्रीय सूत्रों पर आधारित है। श्रृंगार के संयोग-वियोग दोनों पक्षों का चित्रण यहां बड़े ही उत्कृष्टता के साथ किया गया है, नैषध के चतुर्थ सर्ग में उनके विप्रलम्ब श्रृंगार का वर्णन मिलता है।

महाकवि नई-नई घटनाओं को काव्याकार देने में बड़े ही चतुर हैं, नैषध महाकाव्य में नख-शिख वर्णन इसका स्पष्ट प्रमाण है। वहां अंगो के वर्णन में एक नवीन स्फूर्ति दिखाई पड़ती है। अलंकारों में महाकवि श्रीहर्ष श्लेष, अनुप्रास तथा यमक के विशेष शौकीन हैं । श्लेष की पराकाष्ठा वहां दिखाई देती है जहॉ वह एक ही पद्य में पंञ्चनली का प्रथक वर्णन करते हैं, ये वैदर्भी रीति के कवि हैं, जिनकी इन्होंने स्वयं **'धन्यासी वैदर्भी गुणैरूदारे'** के द्वारा सुन्दर प्रशंसा की है। प्रकृति वर्णन में इन्होंने जहां लोकव्यवहार से अप्रस्तुत विधान का संग्रह किया है, वह अवश्य ही रुचिकर हुआ है। संध्या काल के समय चारों ओर फैलने वाले अंधकार के ऊपर बड़े ही सुंदर उक्ति कवि ने प्रस्तुनत की है।–

ऊर्ध्वार्पितान्युब्जो कटाह कल्पेध यद् व्यो म्नि दीपेन दिनाधिपेन ।
न्यधापि तद्धूममिलद्गुरूत्वं भूमौ तम: कज्जदलमस्खमलत् किम्।।

अलौकिक प्रेम की भव्य भावना का साधन प्रस्तुत करने वाल अद्वैतवादी कवि का यह एक रहस्यमय काव्य है। काव्य में दमयंती तथा नल का हंस के द्वारा मिलन, गुरु के द्वारा जीव तथा ब्रह्म के परम मंगलमय सहयोग का भव्य प्रदर्शन है,

इस प्रकार कवि अपनी काव्यवप्रतिभा, दार्शनिकता एवं अन्य काव्योत्पादक गुणों से अपने पांडित्य के लिए जितने प्रसिद्ध हैं, उतने ही वह अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा, विलक्षण वर्णन तथा रसमयी उक्तियों के लिए विख्यात हैं।

1.6 सारांश:-

बृहत्त्रयी में परिगणित नैषधीयचरितम् संस्कृत साहित्य की अनुपम और विलक्षण कृति है। इसे विद्वानों की परमौषधि के रूप में माना जाता है। जैसा कि कहा गया है- **'नैषधं विद्वदौषधम्'** बृहत्त्रयी में अन्य ग्रन्थद्वय के रूप में किरातार्जुनीयम् और शिशुपालवधम् की गणना होती है। शिशुपालवधम् के रचयिता महाकवि माघ और किरातार्जुनीयम् के रचयिता श्री भारवि है। वस्तुतः दोनों ही ग्रन्थ उत्कृष्ट

कोटि के और विलक्षण हैं। किन्तु प्रसिद्ध है कि श्रीहर्ष द्वारा नैषधीयचरितम् की रचना के उपरान्त ये दोनों महाकाव्य गौण हो जाते हैं।

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः ।
उदिते नैषधे काव्ये क्वमाघः क्व च भारविः ।।

श्री हर्ष ने नैषधीयचरितम् में राजा नल और दमयन्ती की कथा को बाईस सर्गों में निरूपित किया है। कल्पनाओं का संचार इस प्रकार का है कि श्रोता और अध्येता दोनों ही सुरा सागर में मग्न हो जाते हैं। यह महाकाव्य श्रृंगार रसोद्दीपक हैं। महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् में न केवल नल दमयन्ती की कथा को अपना आधार बनाया प्रत्युत समाज और लोक से सम्बद्ध अनेक परम्पराओं, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ चतुष्टय, षोडश संस्कार और भारतीय संस्कृति को भी सम्यक रूप से निरूपित किया है।

1.7 शब्दावली:-

शब्द	**अर्थ**
प्रजापति	ब्रह्मा
उत्कृष्ट	श्रेष्टतम
पारंगत	अत्यधिक ज्ञान से युक्त
कालिदासोत्तर	कालिदास के बाद के कवि
विपुलता	आधिक्यलता (विशालता)
मणिकाञ्चन	शोभा एवं सौन्दर्य को बढाने वाला
दिनेश्वर	भगवान सूर्य
कविना	शुक्र (काव्य कर्ता)
बुधेन	बुध (चन्द्रमा का पुत्र) विद्वान
क्षितिरक्षिणः	राजा नल

1.8 बोध प्रश्नः-

1- बहुविकल्पीय प्रश्नः-

क- नैषधीयचरितम् के रचनाकार हैं ?

(क) श्री हर्ष (ख) भारवि
(ग) वाण (घ) माद्य

ख- नैषधीयचरितम् किस विधा की रचना हैं ?

(क) महाकाव्य (ख) खण्ड काव्य
(ग) नाटक (घ) गद्यकाव्य

ग- नैषधीयचरितम् में कितने सर्ग हैं ?

(क) बीस (ख) इक्कीस
(ग) बाईस (घ) तेईस

घ- आनन्दांऽक महाकाव्य के नाम से प्रसिद्ध है?

(क) किरातार्जुनीयम् (ख) रघुवंशम्
(ग) शिशुपालवधम् (घ) नैषधीयचरितम्

ङ्- नैषधीयचरितम् की नायिका कौन हैं ?

(क) दमयन्ती (ख) शकुन्तला

(ग) गमयन्ती (घ) शमयन्ती

च- नैषधीयचरितम् का नायक कौन हैं ?

(क) नल (ख) राम

(ग) अनल (घ) हर्ष

छ- नैषधीयचरितम् का नायक किस श्रेणी का हैं ?

(क) धीरललित (ख) धीरप्रशान्त

(ग) धीरोदात्तत (घ) धीरोद्धत

ज- नैषधीयचरितम् के रचयिता श्री हर्ष के पिता का क्या नाम हैं ?

(क) धीर (ख) हीर

(ग) वीर (घ) समीर

झ- श्री हर्ष किस राजा के राजकवि थे ?

(क) कान्य कुब्जेश्वीर विजय चन्द्र (ख) जयचन्द्र

(ग) धारानरेश (घ) क एवं ख दोनों

ञ- श्री हर्ष का स्थिति काल माना गया है ?

(क) 12 वीं शताब्दी (ख) 11 वीं शताब्दी

(ग) 10 वीं शताब्दी (घ) 8 वीं शताब्दी

2-रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

(क) श्रीहर्ष का समय....................................... माना गया है।

(ख) नैषधीयचरितम्..विभक्त है।

(ग) बृहत्त्रयी के अन्तर्गत .... महाकाव्य है।

(घ) साहित्य दर्पण के रचनाकर............................है।

(ङ) महासत्वोऽतिगम्भीरः...................................विकत्थनः।

(च) स्थिर निगूढ़ोहंकारों.....................................दृढ़व्रतः।

(छ) महाकवि श्रीहर्ष ....और अपनी माता के अनन्य भक्त थे।

(ज) नैषधीयचरितम् की कथावस्तु महाभारत के ....से ली गयी है।

3- निम्नलिखित वाक्यों में से सही तथा गलत का चयन कीजिए :-

(क) श्रीहर्ष श्रीहीर के पुत्र थे। ( )

(ख) नल धीरोदत्त नायक की श्रेणी में उद्धत है ( )

(ग) नैषधीयचरितम् खण्ड काव्य है। ( )

(घ) श्रीहर्ष मामल्ल्देवी के पुत्र थे। ( )

(ङ) कवि ने वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का प्रयोग किया है। ( )

(च) निपीय पद कृदन्त है । ( )

(छ) आर्दियन्ते तिङन्त है। ( )

(ज) महाकाव्य शब्द महत और काव्य इन दो शब्दों के समास से बना है। ( )

(झ) प्रथम सर्ग का प्रारम्भ दोधक वृत्त से हो रहा है। ( )

(ञ) प्रथम सर्ग का समापन वंशस्थ छन्द से हो रहा है। ( )

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय,शारदा निकेतन,वाराणसी।
2. संस्कृत साहित्य का आधुनिक इतिहास- डा0 राधावल्लाभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. संस्कृसत साहित्य की रूप रेखा
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी
5.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

1.10 सहायक पुस्तकें:-

1.साहित्य दर्पण - आचार्य विश्व नाथ
2.दशरूपक -आचार्य धनंजय
3.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष
4.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वेर प्रकाशन

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर:-

1- क-(क) श्री हर्ष
ख- (क) महाकाव्य
ग- (ग) बाईस
घ- (घ) नैषधीयचरितम्
ङ्- (क) दमयन्ती
च- (क) नल
छ- (ग) धीरोदात्त
ज- (ख) हीर
झ- (क) कान्याकुब्जेश्वनर विजयचन्द्र (ख) जयचन्द्र
ञ- (क) 12 वीं शताब्दी
2-
क- संवत् 1225 अर्थात् 1169 ई0
ख- सर्गो में
ग-किरातर्जुनीयम्, शिशुपालवधम एवं नैषधीयचरितम्
घ- आचार्य विश्वनाथ
ङ्- क्षमावान
च- धीरोदात्त
छ- भगवती वागीश्वरी
ज- वनपर्व में वर्णित नलोपाख्यान
3-
क- सही
ख- सही
ग- गलत
घ- सही
ङ्- सही

च- सही

छ- सही

ज- सही

झ- गलत

ञ- गलत

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न :-

1. महाकवि श्रीहर्ष का ऐतिहासिक परिचय दीजिए ?

2. महाकवि श्रीहर्ष की भाषा शैली का विशद वर्णन कीजिए ?

3. महाकवि श्रीहर्ष की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?

खण्ड – द्वितीय, इकाई – 2
नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग – श्लोक संख्या – 1 से 40 तक
(भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सत्रार्द्ध द्वितीय प्रश्न पत्र के द्वितीय खण्ड की द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने नैषधीयचरितम् एवं महाकवि श्री हर्ष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हुए। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 01 से 40 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या को विस्तार से अध्ययन करेंगे साथ ही राजा नल के गुणों का वर्णन, उनकी विद्या व्यसनता का वर्णन, राजा के प्रताप एवं सेना का वर्णन, राजा की वीरता एवं शत्रुता का वर्णन, उनकी गुप्तचर व्यवस्था उनके यश एवं तेज का वर्णन, राजा नल की दानवीरता उनकी शास्त्रज्ञता का वर्णन, राजा नल के शारीरिक लक्षणों का वर्णन, उनकी युवावस्था का वर्णन, उनके यौवन आगमन से शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि का वर्णन, राजा के मुख सौन्दर्य का वर्णन, नल के प्रति मानवीय स्त्रियों के भावों का वर्णन, दमयन्ती को नल विषयक श्रवणानुराग तथा नल के प्रति दमयन्तीय का रागातिरेक वर्णन, दमयन्ती के द्वारा नल को स्वप्न में देखने आदि विषयक वर्णनों को आप प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जानेंगे।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में काव्य एवं नाटककारों में महाकवि श्री हर्ष का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि महाकवि ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है तथापि यहॉ नैषधीयचरितम् महाकाव्य का अध्ययन समीचीन है । नैषधीयचरितम् महाकवि श्रीहर्ष की सशक्त रचना है। यह संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों में प्रमुख स्थान रखने वाला महाकाव्य है। सनातन परम्परा के अनुसार कवि ने ग्रन्थारम्भ में त्रिविध मंगलाचरणों में से वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप बता सकेंगे कि किस प्रकार कवि ने काव्य के गागर में भावना के सागर को भर दिया है । साथ ही आप कवि की भावपूर्ण भाषा एवं शैली का विश्लेषण कर सकेंगे ।

2.2 उद्देश्य:-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- ❖ ग्रन्थ के आरम्भ में किस कोटि के मंगलाचरण का प्रयोग किया गया है, इस विषय को जान सकेंगे।
- ❖ राजा नल के गुणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ राजा नल की वीरता एवं गुप्तचर व्यवस्था का उल्लेख कर सकेंगे।
- ❖ राजा नल की दानवीरता, शास्त्रज्ञता से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ राजा नल की युवावस्था एवं शारीरिक सौन्दर्य पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- ❖ नल के प्रति मानवीय स्त्रियों के भावों को रेखांकित कर सकेंगे।
- ❖ राजा नल के अद्वितीय सौन्दर्य को रेखांकित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में कौन से छन्द का प्रयोग किया गया है, इस बारे में जान सकेंगे।

2.3 श्लोक संख्या 1 से 40 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

2.3.1 राजा नल के गुणों का वर्णन—

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां
तथाऽऽद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि ।

नल: सितच्छत्रि तकीर्तिमण्डलः
स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः ॥1॥

अन्वय:- यस्य क्षितिरक्षिणः कथां निपीय बुधाः सुधाम् अपि तथा न आद्रियन्ते सितच्छत्रि तकीर्तिमण्डलः महसां राशि: महोज्ज्वलः स: नल: आसीत्।

व्याख्य:- यस्य = प्रकृतस्य (धरानरेशस्यव नलस्यह), क्षितिरक्षिणः = पृथ्वीपालस्य = कथानायक स्य नलस्य इति भाव:, कथाम् = उपाख्यानं (यशोगाथा) निपीय = नितरामास्वाद्य (सादरं पित्वा), बुधाः = विद्वांस (मतिमन्ति:) सुधाम् अपि = अमृतम अपि, तथा = तेन प्रकारेण, न आद्रियन्ते = न आदरं कुर्वन्ति, (बुधा: सुधाम् उपेक्ष्य नल कथां बहु: मन्यन्ति इति भाव:) सितच्छत्रि तकीर्तिमण्डल: = शुक्लपत्री कृतयशोमण्डजल:, महसां = तेजसां, राशि: = समूह, महोज्ज्वलः = उत्स्वदीप्यिमान:, नित्यतमहोत्सवशालीति भाव:, स: = प्रसिद्ध, नल: = नल नामको राजा, आसीत् = अभवत् ।

अनुवाद:- प्रस्तुत पद्य में राजा नल का यशोवर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहेते है- जिस पृथ्वीपालक (धारानरेश राजा नल) की कथा का पान करके विद्वज्जन् (वा देवता) अमृत का भी वैसा आदर नहीं करते हैं। ऐसे महाराजा नल (अपने) श्वेतछत्र (आतपत्र) के समान यशोमण्डल से युक्त, उत्सवों से देदीप्यमान, अथवा अतिशय श्रृंगार रस वाले तेजस्वी राजा नल हुये। ॥

टिप्पणी:– क्षितिरक्षिणः = क्षितिं रक्षतीति तच्छील: तस्य (क्षिति+रक्ष) उपपदसमास , निपीय = नितरां पीत्वाण (नि + क्ता (ल्यिप्) सितच्छत्रि = सितं च तत् छत्रं = कर्मधारय , कीर्तिमण्डलः = कीर्त: मण्डवलम् (ष0 त0) सितच्छत्रिकीर्तिमण्डलं येन स: = बहुव्रीहि , महोज्ज्वलः = महै: उज्जकवल: = तृ0 त0 ।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्री हर्ष ने राजा नल की कथा को वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए नल कथा को अमृत से भी अधिक श्रेष्ठ सिद्ध किया है। राजा नल की कथा का भली-भॉति अध्ययन कर आनन्द प्राप्त करने वाले विद्वान् लोग अथवा देवलोक में विद्यमान देवगण भी अमृत का उतना आदर नहीं करते हैं जितना कि राजा नल की कथा का आदर करते हैं। अथवा पृथ्वी की रक्षा करने वाले देवता गण भी जिस राजा नल की कथा का पान कर अमृत का भी उतना आदर नहीं किया करते हैं जितना कि राजा नल की कथा का अथवा जिस राजा नल की कथा का भली-भॉति आस्वादन प्राप्त कर स्थित व्यक्तिविशेष के कलयुग में उत्पन्न दोषों का नाश हो जाता है। अथवा जिस राजा की कथा का पान कर विद्वज्जन अथवा देवगण सुधामय अर्थात् चन्द्रमा का भी उतना आदर नहीं करते जितना कि राजा नल की कथा का। ऐसे तेजस्वी अथवा सूर्य के सदृश देदीप्यमान सम्पूर्ण दिशाओं में फैले हुए अपने कीर्तिसमूह रूपी श्वेतक्षत्र से युक्त वे राजा नल अत्यधिक उज्ज्वल चरित्र से परिपूर्ण थे। अथवा जिस राजा नल में अत्यधिक उज्जवल गुणों से विशिष्ट श्रृंगार रस विद्यमान था अथवा जिस राजा नल के अंदर दमयन्ती का कथित रूप श्रृंगार रस अत्यधिक रूप से विद्यमान था ऐसे तेजोराशि अथवा सूर्य सदृश कान्ति से युक्त वे राजा नल अपने चतुर्दिग्व्यापी कीर्ति समूह से उज्जवल चरित्र वाले थे। क्योंकि राजा नल की कथा अमृत की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर थी साथ ही अत्यधिक श्रृंगार रसमय थी, इसी कारण दमयन्ती ने इन्द्र आदि देवताओं का त्याग कर नल को ही वरण करना अधिक उपयुक्त समझा होगा।

अलंकार:- व्यहतिरेक + रूपक = संसृष्टि ।

छन्द:- वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ) इसके प्रत्येकपाद में 12-12 वर्ण होते हैं।

अर्थात् जिस छन्द में क्रमशः जगण (ISI), तगण (SSI), जगण (ISI) और रगण (SIS) हो वह छन्द वंशस्थ कहा जाता है। यथा—

I S I S S I I S I S I S

निपीय यस्य क्षितिर क्षिणः कथां

रसैः कथा यस्य सुधाऽवधीरिणी

नलः स भूजानिरभूद्गुणाद्भुतः ।

सुवर्णदण्डैकसितातपत्रित-

ज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः ॥2॥

अन्वय:- यस्य कथा रसैः सुधाऽवधीरिणी भूजानि स नलः सुवर्णदण्डैकसितातपत्रित-ज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः गुणाऽद्भुतः अभूत।

व्याख्या:- यस्य = नलस्य, कथा = उपाख्यानं (यशोगाथा), रसैः= स्वददैः, श्रृंगारादिरसैर्वा, सुधाऽवधीरिणी = अमृततिरस्कारिणी, भूजानि =भूपतिः, स = पूर्वोक्तः, नलः = नल नामको राजा, सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः = स्वार्णदण्डैणकशुक्लछत्रत्रिदीप्यमानतेजः पंक्तियशोमण्डूलः, गुणाऽद्भुतः = शौर्यदाक्षिण्यादिभिराश्चर्यभूतः, अभूत = आसीत् ।

अनुवाद:- जिस राजा नल की कथा श्रृंगार आदि नव रसों से अथवा मधुर आदि षड् रसों के कारण अमृत को तिरस्कृत करने वाली है। वह राजा नल अपने गुणों के कारण अद्भुत एवं धवल यश को स्वर्ण दण्ड और श्वेत छत्र बना देने वाला अतएव शौर्य और दाक्षिण्य आदि गुणों के कारण अदभुत् राजा हुए।

टिप्पणी:– सुधाऽवधीरिणी = सुधाम् अवधीरयतीति तच्छीला (सुधा+अव+धीर+णिनी) उपपदसमास, भूजानि = भूः जाया यस्यौ सः (बहु0), सुवर्णस्य दण्ड+ः (ष0त0) सितं च तत् आतपत्रम् (कर्मधारय) , प्रतापानाम् आवलिः (ष0त0), ज्वलत्प्रतापावलिश्चर कीर्तिमण्डलं च (द्वन्द्व) गुणाऽद्भुतः= गंणै अद्भुतः (तृ0 त0)

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष नवरसों से युक्त राजा नल की कथा को केवल मधुर रस प्रधान अथवा षड़रस युक्त अमृत की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर सिद्ध करते हुए महा प्रतापी राजा नल का वर्णन करते हैं- जिस राजा नल की कथा श्रृंगार हास्य आदि नवरसों से युक्त होने के कारण केवल मधुर रस से परिपूर्ण अथवा मधुर इत्यादि छः रसों से युक्त अमृत को तिरस्कृत कर देने वाली है अर्थात् जो अमृत की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है अर्थात् नवरसों से युक्त जिस राजा नल की कथा सुधा की सीमा अर्थात् अधिक श्रेष्ठ अमृत को भी नीचा दिखाने वाली है। अथवा जिस राजा नल की कथा बुद्धि में पवित्रता का संचार करने वाली है, सदैव युद्ध में संलग्नता द्योतक तथा पृथ्वी की स्वाजमिनी है। (इन तीनों विशेषण के द्वारा राजा नल की कथा का मंत्र, उत्सांह एवं प्रभुत्व शक्ति सम्पन्न होना ध्वनित होता है।) ऐसा राजा नल समस्त पृथ्वी का स्वामी अथवा पालक अथवा रक्षक था। उसने अपने देदीप्यमान प्रताप को भी अपने श्वेत वर्ण वाले राज्यछत्र का स्वर्णनिर्मित दण्डा तथा अपने कीर्ति समूह को ही श्वेतछत्र बना रखा था और वह गुणों अर्थात् शूर वीरता उदारता आदि अनेक गुणों से युक्त होने के कारण लोकोत्तर गौरवशाली था।

अलंकार:- व्येतिरेक + रूपक + यथासंख्यका = संसृष्टि ।

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे

स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा ।

कथं न सा मद्गिरमाविलामपि

स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ॥3॥

अन्वय:- अत्र युगे यत्कथा स्मृता रसक्षालनया इव जगत् पवित्रम् आतनुते सा अविलाम् अपि स्वसेविनीम् एव मद्गिरं कथं न पवित्रयिष्यति ।

व्याख्या:- अत्र = अस्मिन्, युगे = कलियुग इत्युर्थ:, यत्कथा = यस्यए (राजा नलस्य) उपाख्यानम् , स्मृता =चिन्तिता, रसक्षालनया इव = जलधावनेन इव, जगत् = लोक:, पवित्रम् = विशुद्धम्, आतनुते = करोति, सा = नल कथा, अविलाम् अपि = कलुषाम् अपि, स्वसेविनीम् एव = आत्मतवर्णनपराम् एव, मद्गिरं = मद्वाचं, नैषद वर्णन इति भाव:, कथं = केन प्रकारेण, न पवित्रयिष्यति = पिवत्रां न करिष्यती ? पिवत्रां करिष्यैत्येवेति भाव: ।

अनुवाद:-इस कलियुग में जिस महाराजा नल की कथा जल से प्रक्षालन के समान लोक को पवित्रकर देती है, वह (कथा) कलुष (दोषयुक्ता) होने पर भी अपनी ही सेवा करने वाली मेरी वाणी को भला क्यों नही पवित्र करेगी ? ।

टिप्पणी: – यत्कथा = यस्याक कथा (ष0त0), स्मीता = स्मृं+ क्तत + टाप् , रसक्षालनया = रसेन क्षालना तया (तृ0 त0), आतनुते = आङ् + लट्+ त, स्वसेविनीम् = स्वह+सेव+णिनी+डीप्,

अलंकार:- अर्थापत्ति अलंकार

छन्द:– वंशस्थ छन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.2 राजा नल के विद्या व्यसनताका वर्णन—

अधीतिबोधाचरणप्रचारणै
र्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः ।
चतुर्दशत्वं कृतवान्कुतः स्वयं
न वेद्मि विद्यासु चतुर्दश स्वयम् ॥4॥

अन्वय:- अयम् चतुर्दशसु विद्यासु अधीतिबोधाचरणप्रचारणै उपाधिभिः चतस्र दशा: प्रणयन् स्वयं चतुर्दशत्वं कुत: कृतवान् इति न वेद्मि ।

व्याख्या:- अयम् = नल:, चतुर्दशसु = चतुर्दशसंख्यतकासु, विद्यासु = वेदादिषु, अधीतिबोधाचरणप्रचारणै: = श्रवणाऽर्थज्ञानतदर्थाऽनुष्ठानप्रसारणै:, उपाधिभिः =भेदै:, चतस्र: = चतु: संख्यका:, दशा: = अवस्था:, प्रणयन् = कुर्वन्, स्वयम् = आत्म ना, चतुर्दशत्वं = चतु: संख्यकत्वं, कुत: =कस्मात्, कृतवान् = विहितवान्, इति न वेद्मि= नो जाने, चतुर्दशसंख्यमकानां विद्यानां चतुरावृत्या षट्पञ्चाशत्तिवमापादनीयं, कथं केवलं चतुर्दशत्व मिति भाव।

अनुवाद:-महाराजा नल ने चौदह विद्याओं में शब्दत: अध्ययन , अर्थ का ज्ञान, शास्त्रोक्त कर्म का आचरण और प्रचारण इन चार विधियों के द्वारा चार दिशाओं को प्रस्तुत करते हुए, इस राजा नल ने चौदह विद्याओं में स्वयं चौदह की संख्या होने और चतुर्दशत्वं कैसे किया ? यह मैं नही जानता हूॅ। चौदह विद्याओं को चार भेदों से गुणन करने पर छप्पन भेद होने चाहिए परन्तु चौदह ही कैसे हुए ऐसा विरोध होने पर उन विद्याओं को चतुर्दशत्व अर्थात् अध्ययन आदि से चार अवस्थाओं वाली बनने से उसका परिहार हो जाता है। ॥4॥

टिप्पणी:– चतुर्दशसु = चतुरधिका दश चतुर्दश तासु (मध्यसमपदलोपी समास), अधीतिबोधाचरणप्रचारणै = अधीतिश्च बोधश्च आचरणं च प्रचारण च अधीतिबोधचरणप्रचारणानि ,तै (द्वन्द्व) चतुर्दशत्वं = चतस्र: दशा: यासां ताश्चातुर्दशा (बहु0) तासां भाव: चतुर्दशत्वं कृतवान् = कृ+ क्तवतु, वेद्मि = विद+ लट्+ मिप् ।

विशेष:- प्रस्तुत श्लोक में महाकवि श्रीहर्ष यह बताते हैं कि राजा नल चतुर्दश विद्याओं में पारंगत थे। उन्होंने इन चौदह विद्याओं को अध्ययन, अर्थज्ञान, तदनुसार आचरण तथा प्रचाररूप चार दिशाओं द्वारा छप्पन प्रकार का कर दिया था- राजा नल अखिल विद्याओं के ज्ञाता थे। विद्याओं की संख्या चौदह मानी गई है—**'अंगानि वेदश्चित्वांरों मीमांसा न्यायविस्तीर:। धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्या ह्येता चतुर्दश'।।**

राजा नल ने गुरु मुख से सभी विद्याओं का अध्ययन किया था और तदन्तर उसके विषय में पूर्णतया हृदय ग्राही बना लिया था। विद्या का अध्ययन तथा उसे आत्मसात कर लेने के पश्चात अनुरूप आचरण किये जाने के निमित्त मनुष्य की इच्छा स्वयं ही हुआ करती है। अतः तदनुसार राजा नल ने भी इन चतुर्दश विद्याओं के ज्ञान के आधार पर अपने जीवन का निर्माण किया। जिस वस्तु या विद्या को मनुष्य भली-भॉति समझ लिया करता है और तदनुकूल आचरण भी बना लेता है तो फिर उसके हृदय में यह भावना उत्पन्न हुआ करती है कि जो उत्तम वस्तु अथवा विद्या है उसे सर्वजन हिताय कर देना और श्रेयस्कर होगा। इस दृष्टि से राजा नल ने योग्य एवं विद्वान गुरुओं को यथोचित द्रव्य आदि देकर इन सभी विधाओं का ज्ञान सभी के लिए वितरित कराया। इस भॉती प्रत्येक विद्या का अध्ययन, अर्थज्ञान, तदनुकूल आचरण और प्रचारण इन चार प्रकारों के आधार पर उसने चार-चार प्रकार का बना दिया। अतः सभी विधाओं को (14 गुणा 4 = 56) प्रकार हो गये। इस भॉती उस राजा नल ने उपयुक्त चौदह विद्याओं को चतुर्दशत्व को प्राप्त कर दिया। इस आधार पर यह बात स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि राजा ने चतुर्दश विद्या में से प्रत्येक को चार चार अवस्था में परिणत कर दिया था। जिससे राजा नल का चौदहों विद्याओं का अध्येता, ज्ञाता, आचरणकर्ता तथा प्रचारक होना स्पष्ट हो जाता है।

अलंकार:- विरोधाभास।

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी
त्रयीव नीताड्गगुणेन विस्तरम्।
अगाहताऽष्टादशतां जिगीषया
नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम्॥5॥

अन्वय:- अमुष्य रसनाग्रनर्तकी विद्या त्रयी इव अड्गगुणेन विस्तरम् नीता नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् जिगीषया अष्टादशतां अगाहत।

व्याख्या:- अमुष्य = नलस्य, रसनाग्रनर्तकी = जिह्वाग्रसञ्चारिणी, विद्या = पूर्वोक्ता वेदादिविद्या सूदविद्या च रसनाऽग्रनर्तन धर्मादिति भाव:, त्रयी इव = त्रिवेदी इव, अड्गगुणेन = शिक्षाद्यंगावृत्त्या, विस्तरम् = विद्धं, नीता = प्रापिता सती, नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् = अष्टादशद्विपपृथग्विजयलक्ष्मीनां, जिगीषया = जेतुमिच्छया, अष्टादशतां = अष्टादशसंख्यकत्वम्, अगाहत = अभजत्।

अनुवाद:- नल की जिह्वा के अग्रभाग में नर्तकी के समान विद्या (वेदादिविद्या अथवा पाकविद्या) ने त्रयी (तीनों वेदों) के समान शिक्षा आदि छ: अंगों की गुणनक्रिया से वृद्धि को प्राप्त करायी जाती हुई नल की अठारह द्वीपों की पृथक्-पृथक् विजयलक्ष्मी को जीतने की इच्छा से अठारह संख्या को प्राप्त किया।

टिप्पणी:– रसनाग्रनर्तकी = रसानायाअग्रम् (ष0 त0), नृत्यतीति नर्तकी, रसनाऽग्रे नर्तकी (स0त0) अड्गगुणेन = अड्गानां गुण:तेन (ष0 त0), नीता = नी+क्त+टाप्, नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् = द्वौ अवयवौ यस्यग तत् द्वयम्, द्विर्गता आपो यस्मिन् इति द्वीपम् (बहु0), नवानां द्वयम् (ष0 त0),नवद्वयं च ते द्वीपा: (क0धा0), जयस्य श्रिय: (ष0 त0), अष्टादशतां = अष्टौ च दश च अष्टादश (द्वन्द्व)।

विशेष:- प्रस्तुत श्लोक में महाकवि श्री हर्ष यह स्पष्ट कहते हैं कि राजा नल में श्री और विद्या का एक साथ निवास था। वह अठारह द्वीपों के विजेता थे। तथा वह अठारह प्रकार की विद्याओं पर पूर्ण अधिकार रखते थे— चौदह विद्या, चार वेद, छ: वेदांग और मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र ये चार अर्थात् कुल अठारह विद्यायें राजा नल की जिह्वा के अग्रभाग पर सर्वदा निवास किया करती थी। अर्थात् राजा नल का इन अठारह विद्याओं पर पूर्ण आधिपत्य था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अठारह द्वीपों पर भी पृथक-पृथक रूप से विजय प्राप्त कर ली थी।

इस भाँती इन अठारह विजय लक्ष्मियों पर भी उनका आधिपत्य हो गया था। इस भाँती राजा नल स्वभावत: परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी और विद्या दोनों के ही आश्रय थे। लक्ष्मी तथा सरस्वती का यह विरोध पूर्णरूपेण स्वाभाविक है। संसार में भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जो लक्ष्मीवान् होते हैं वह विद्यावान् अथवा विद्वान नहीं होता और जो विद्वान् होता है वह धनवान नहीं होता। लक्ष्मी तथा सरस्वती का यह विरोध चिरंतन एवं शाश्वत है और सृष्टि के आदि से निरंतर चलता आ रहा है। इतना होने पर भी राजा नल विद्यावान अथवा विद्वान तो थे ही साथ ही लक्ष्मीवान भी यही उनके जीवन का एक उत्कृष्टतम विशेषता है।

अलंकार:- उत्पेक्षा+उपमा = संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

दिगीशवृन्दांऽशविभूतिरीशिता
दिशां स कामप्रसभाऽवरोधिनीम् ।
बभार शास्त्राणि दृशं द्वयाऽधिकां
निजत्रिनेत्राऽवतरत्वबोधिकाम् ॥6॥

अन्वय:- दिगीशवृन्दांऽशविभूति दिशाम् ईशिता स: शास्त्राणि काम प्रसभाऽवरोधिनीम् निजत्रिनेत्राऽवतरत्व बोधिकाम्द्वयाऽधिकांदृशं बभार।

व्याख्या:- नलस्यिश देवांशत्वथ प्रतिपादयति- दिगीशवृन्दांऽशविभूति: = इन्द्रादिदिक्पालतात्रोद्भव:, दिशाम् = प्राच्या दिकाष्ठादनाम्, ईशिता = ईश्वर:, स: = राजा नज:, शास्त्राणि = वेदादिशास्त्राणि, कामप्रसभाऽवरोधिनीं = इच्छाया: कामदेवस्य वा बलाऽवरोधकारिणीं, निजत्रिनेत्राऽवतरत्व - बोधिकां = स्वात्रिनयनाविर्भावज्ञापिकां, स्वामहादेव अवतारत्व, ज्ञापिकां वा, द्वयाऽधिकां = द्वितयाऽतिरिक्तां, दृशं = नेत्रं, बभार = धृतवान्।

अनुवाद:- इन्द्र आदि दिक्पालों के अंश से उत्पन्न अतएव दिशाओं के स्वामी नलने स्वेच्छाचारिताको वा कामदेव को बल से निवारण करने वाली, अपने तीन नेत्रों के अभिभाव का वा महादेव के अवतारत्व का बोध करने वाली दो से अधिक शास्त्र रूप दृष्टि को धारण किया। ॥6॥

टिप्पणी:– दिगीशवृन्दांऽशविभूति = दिशाम् ईशा: (ष0 त0), तेषां वृन्दं (ष0 त0), कामप्रसभाऽवरोधिनीम् = प्रसभेन अवरूणद्धोति प्रसभाऽवरोधिनी कामस्य प्रसभावरोधिनी ताम् (ष0त0), निजत्रिनेत्राऽवतरत्वबोधिकाम् = त्रायाणां नेत्राणाम् अवतरत्वयम् , निजं च तत् त्रिनेत्राऽवतरत्वंम् (क0धा0) बोधयतीति बोधीका निजत्रिनेत्राऽवतरत्वस्या बोधिका ताम् (ष0 त0), द्वयाऽधिकां= द्वौ अवयवौ यस्य तत् , द्वयम् (ष0 त0)।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्री हर्ष राजा नल का आठ दिशाओं के अधिपति होने और शास्त्रज्ञ होने का वर्णन करते हैं। मनुस्मृति के आधार पर सम्पूर्ण दिशाओं का स्वामीयों के अंश समूह द्वारा राजा के शरीर का निर्माण हुआ करता है अथवा संपूर्ण दिग्पालों के अंश समूह से राजा ऐश्वर्य संपन्न हुआ करता है। अतः इसी आधार पर राजा नल का शरीर भी संपूर्ण दिग्पालों के अंश समूह से निर्मित था तथा वह संपूर्ण दिशाओं के अधिकातियों के अंशसमूह कसे ऐश्वर्य संपन्न था, वह संपूर्ण दिशाओं का शासक भी था कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक दिशा का स्वामी दिगपाल तो अपनी दिशा का ही स्वामी हुआ करता है, किंतु राजा नल सभी आठों दिशाओं के स्वामी थे अतएव आठों दिशाओं के शासक थे। इस प्रकार के वे राजा नल शास्त्ररूप तृतीय नेत्र के को प्राप्त कर इच्छा की प्रबलता अर्थात् मन को शास्त्रविरुद्ध कार्य में प्रवृत्त होने से उसी प्रकार रोकते थे जैसे त्रिनेत्रधारी भगवान शंकर ने अपने तृतीय नेत्र से कामदेव की प्रबलता को रोका था। इस भाँती राजा नल शास्त्रज्ञान द्वारा काम की प्रबलता को

रोककर अपने को भगवान शिव का अवतार होने की बात को प्रदर्शित कर रहे थे। वे पूर्णशास्त्रज्ञ होने के कारण शास्त्रविरुद्ध कार्यों के करने संबंधित अपनी इच्छाओं का सदैव दमन किए रहते थे। इस भॉती शास्त्ररूप तृतीयनेत्र को धारण किए हुये थे।

अलंकार:-रूपक

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.3 राजा नल के शासन काल में धार्मिकता—

पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते
कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे।
भुवं यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृश-
न्दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम् ॥7॥

अन्वय:- अमुना कृते सुकृते चतुर्भि: पदै: स्थिरीकृते के तपो न प्रपेदिरे यत् अधर्मोऽपि अङ्घ्रिकनिष्ठया भुवं स्पृशन् कृश: तपस्विताम् दधौ।

व्याख्या:- अथ राज्ञ: नलस्य स्वभभाव: दर्शयति- अमुना = नलेन, कृते = सत्युगे, सुकृते = धर्मे, चतुर्भि: = चतु: संख्य कै:, पदै: =चरणै, स्थिरीकृते =निश्च्लीकृते, के = जना:, तप: = चान्द्रा यणादिरूपंनियमाचरणं, न प्रपेदिरे = न प्राप्तवन्ती:, यत् =यत:, अधर्मोऽपि = धर्मविरोध्यनपि, अङ्घ्रिकनिष्ठया = चरणनिष्ठया, भुवं = भूमिं, स्पृशन् = आमृशन् , कृश: = दुर्बल:, तपस्वितां = तापसत्वं, दीनत्वं च, दधौ = धारयमास।

अनुवाद:- सतयुग में महाराज नल के धर्म को चार चरणों (तपस्या, ज्ञान, यज्ञ, और दान) से स्थिर करने पर किसने तपस्या नहीं कि? जो कि अधर्म भी पैर की छोटी अङ्गुलियों से पृथ्वी का स्पर्श करता हुआ दुर्बल होकर तपस्वी (तपस्या करने वा दीन) हो गया। ।।7।।

टिप्पणी: – कृते्=कृ+क्तक:, अधर्म:= न+ धर्म: (नञ्0 त0), अङ्घ्रिकनिष्ठया=अङ्घ्रे: कनिष्ठा तया (ष0 त0), स्पृशन् = स्पृीश + लट् (शतृ0)

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.4 राजा के प्रताप एवं सेना का वर्णन—

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः
स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम।
तदेव गत्वा पतितं सुधाऽम्बुधौ
दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ॥8॥

अन्वय:- अस्य यात्रासु बलोद्धतं स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम यत् रजः तद् एव गत्वा सुधाऽम्बुधौ पतितं पङ्कीभवत् विधौ अड्कतां दधाति।

व्याख्या :- अस्य = नलस्य, यात्रासु = विजययानेषु, बलोद्धतं = सैन्योत्क्षिप्तंड, स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम = ज्वत्तेजोऽग्निधूममञ्जु, यत् रजः = धूलि:, तद् एव = रज एव, गत्वात = व्रजित्वा, सुधाऽम्बुधौ = क्षीरसमुद्रे, पतितं = निपतितं, पङ्कीभवत् = कर्दमीभवत्सत्, विधौ = चन्द्रमसि, अड्कतां = कलड्कत्वं, दधाति = धारयति।

अनुवाद:- नल की विजय यात्राओं में सेनाओं से उठी हुई और जलते हुए प्रताप रूप अग्नि के समान मनोहर जो धूली है वही जाकर क्षीरसमुद्र में गिर पड़ी और वही कीचड़ होकर चन्द्रमा को कलंक से भाव को धारण कर रही है।

टिप्पणी: – अथ श्लोकसप्तोकेन महाकविर्नलप्रतापं वर्णयति। बलोद्धतं = बलै: उद्धतम् (तृ0त0), स्फुरत्प्रतापानलघूममञ्जिम = प्रताप एव अनल:- स्फुरंश्चाऽसौ प्रतापऽनल (क0धा0), तस्य0 धूम (ष0त0), सुधाऽम्बुधौ = सुधाया अम्बुधि: तस्मिन् (ष0त0), पतितं = पत: + क्त:, अड्कतां = अड्कस्य भाव: अड्कता, अड्क + तल् + टाप्।

अलंकार:- संकर

छन्द: – वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

स्फुरद्धनुर्निः स्वनतद्घनाऽशुग
प्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सड्गरे ।
निजस्य तेजः शिखिनः पर:शता
वितेनुरङ्गारमिवाऽयशः परे ॥9॥

अन्वय:- सड्गरे पर: शता परे स्फुरद्धनुर्नि: स्वनतद्घनाऽशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य निजस्य तेजः शिखिनः अङ्गारम् इव अयश: वितेनु: ।

व्याख्या :- सड्गरे = युद्धे, पर: शता = शतात् परे, बहव: इति भाव:, परे = शत्रव:, स्फुरद्धनुर्नि: स्वनतद्घनाऽशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य = प्रसरच्चाप घोषसमन्वित-नलमेघबाण महावर्ष निर्वापितस्यु, निजस्य = स्वस्य, तेजः शिखिनः = प्रतापाऽग्ने:, अङ्गारम् इव = उल्मुकम इव, अयश: = अकीर्तिमपराजय इति भाव:, वितेनु: = विस्तायामासु: ।

अनुवाद:- युद्ध में सैकड़ों शत्रुओं ने चमकने वाले धनु और शब्द से युक्त मेघ रूप नल के बाणों की प्रचुर वृष्टि से बुझायें गये अपने प्रताप रूप अग्नि के अंगार से सदृश अकीर्ति को फैलाया। ॥9॥

टिप्पणी: – पर: शता = शतात् परे (अनन्ता :) ष0 त0, स्फुरद्धनुर्नि: स्वन = धनुश्च् नि:स्श्चा धनुर्नि: स्वझनौ (द्वन्द्व :), स्फुरन्तौम धनुर्नि:स्वानो यस्य0 स: (बहु0), प्रगल्भवृष्टि = प्रगल्भा चाऽसौ वृष्टि (क0ध0), अयश: = न यश: तत् (नञ्तत0)

अलंकार:- संकर

छन्द :– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अनल्पदग्धाऽरिपुराऽनलोज्ज्वलैः
र्निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद्भुवः ।
प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्ट्या
रराज नीराजनया स राजघः ॥10॥

अन्वय:- राजघः स अनल्पदग्धाऽरिपुराऽनलोज्ज्वलैः निजप्रतापै ज्वलत् भुवो वलयं प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्ट्या नीराजनया रराज।

व्याख्या:- राजघः = शत्रुभूपालघातुक:, राजानां हन्तीति, स = नल:, अनल्पदग्धाऽरिपुराऽनलोज्ज्वलैः = बहुलभस्मीकृतशत्रुनगर वह्निपप्रदिप्तें:, निजप्रतापै = स्वतेजोभि:, ज्वलत् = दीप्तंत, भुवो = भूमे:, वलयं = मण्डलं, प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणं विधाय, जयाय = जेतुं, सृष्टया = निर्मितया:, नीराजनया = आरात्रिकेण, रराज = शुशुभे।

अनुवाद:- शत्रु राजाओं को मारने वाले नल प्रचुर शत्रु नगरों को जलाने वाले और अग्नि के समान उज्जवल अपने प्रताप से प्रदीप्त भूमण्ड की प्रदक्षिणा करके जीतने के लिए की गई नीराजन से शोभित हुए।

टिप्पणी: – अनल्पदग्धाऽरिपुराऽनलोज्ज्वलैः = न अल्पानि अनल्पानी (नञ्0), अरीणां पुरारी (ष0 त0), अनल्पानि दग्धानि अरिणुराणि यैस्ते (बहु0), निजप्रतापै = निजस्य प्रतापा: तै (ष0त0), ज्वलत्

= ज्वलतीति, ज्व्ल + लट् + शतृ, प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिण + च्वि + कृ + क्त्वास (ल्यलप्), सृष्ट्या = सृज् + क्त्व + टाप् +टा।

अलंकार:- अतिशयोक्ति

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

निवारितास्तेन महीतलेऽखिले
निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टयः।
न तत्यजुर्नूनमनन्यविसंश्रयाः
प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः ॥11॥

अन्वय:- तेन अखिलेन महीतले निरीतिभावं गमिते निवारिता अतिवृष्टयः अनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः न तत्यजुः नूनम्।

व्याख्या:- तेन = नलेन, अखिले = समस्तेव, महीतले = भूतले, निरीतिभावम् = अतिवृष्टया दीतिभावराहित्यं, गमिते = प्रपिते सति, निवारिताः = निराकृताः, अतिवृष्टयः = अतिवर्षाणी, अनन्यसंश्रयाः = अन्याश्रयस्थानरहिताः सत्य, प्रतीपभूपालमृगीदृशां = शत्रुभूपतिसुन्द्रीणां, दृशः = नेत्राणि , न तत्यजुः = त्यक्वत्यः, नूनम् = इव ।

अनुवाद:- महाराजा नल ने समस्त भूतल से अतिवृष्टि और ईतियों को हटा दिया, तब निवरित अतिवृष्टियॉ दूसरा आश्रयस्थान न होने से नल के शत्रु राजाओं की पत्नियों के नेत्रों को नहीं छोड़ती थी ऐसा मालूम होता है। ॥11॥

टिप्पणी: – महीतले = मह्यास्तंलं , तस्मिन् (ष0 त0), निरीतिभावं = ईते भावः (ष0 त0), निर्गता ईतयो यस्मिस्तत् (बहुन0), गमिते = गम्+णिच् + क्तः, निवारिता = नि+वृ+णिच् + क्तश +टाप् +जस्, अनन्यसंश्रयाः = अनन्यस्यर संश्रयः अनन्यसंश्रयाः (ष0त0), प्रतीपभूपालमृगीदृशां = प्रतीपिकूला आपौ ते प्रतीपाः (बहु0), प्रतीपभूपालानां मृगीदृशः तासाम् (ष0त0), प्रतीपाश्चा ते भूपालाः (कर्म धा0)।

विशेष:- प्रस्तुति पद्य में महाकवि श्री हर्ष यह अभिव्यक्त करते हैं कि राजा नल ने अपने सभी शत्रुराजाओं का विनाश कर दिया था। अतः उनकी विधवा स्त्रियॉ सदैव रोती थी— अतिवृष्टि (वर्षा का आवश्यकता से कहीं अधिक हो जाना), अनावृष्टि (वर्षा का ना होना अथवा सूखा पड़ जाना), शलभ (पतंगों टिड्डियों आदि का बहुत अधिक संख्या में आगमन), चूहों का बहुत अधिक बढ़ जाना, पक्षियों का बहुत अधिक संख्या में आगमन तथा उनके द्वारा फसल इत्यादि का विनाश किया जाना, समीपस्थ (शत्रु) राजा लोग इन छै प्रकार की ईतियों (राज्य में आने वाली विपत्तियों) से रहित संपूर्ण पृथ्वी तल पर उस राजा नल द्वारा रोकी गयी अतिवृष्टियों ने मानो अन्यत्र कहीं भी आश्रय को प्राप्त न कर शत्रु राजाओं की मृगनयनियों के नेत्रों को नहीं छोड़ा।

राजा नल के संपूर्ण राज्य में अतिवृष्टि आदि छः आपत्तियों का प्रवेश नहीं हो पाता था। इस कारण उनका राज्य इन छः ईतियों (आपत्तियों) से रहित था इनमें से सर्वप्रथम ईति का नाम अतिवृष्टि है। इस अतिवृष्टियों को समस्त भूतल पर कहीं भी रुकते हुए स्थान प्राप्त न हो सका। अतः ये अतिवृष्टियां शत्रुराजाओं की स्त्रियों के समीप पहुंच गई और उनके नेत्रों को ही अपना आश्रय स्थल बना लिया। कहने का तात्पर्य है कि राजा नल ने सभी शत्रुओं का पृथ्वी तल से विनाश कर दिया था। अतएव उन सभी की स्त्रियॉ अपने-अपने पतियों के शोक में निरंतर रोया करती थी। संसार में भी ऐसा देखा जाता है कि किसी के द्वारा निकाला गया व्यक्ति उसके शत्रु के समीप जाकर आश्रय प्राप्त किया करता है। अतः अतिवृष्टियों ने भी शत्रु राजाओं की स्त्रियों के नेत्रों में जाकर आश्रय प्राप्त कर लिया था।

अलंकार:- पर्यायोक्त + उत्प्रेक्षा = संकर

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

> **सितांऽशुवर्णैर्वयति स्म तदगुणैः-**
> **र्महाऽसिवेम्नः सहकृत्वरी बहुम्।**
> **दिगङ्गनाऽङ्गाभरणं रणाङ्गणे**
> **यशः पटं तद्भटचातुरीतुरी ॥12॥**

अन्वय:- तद्भटचातुरी तुरी महाऽसिवेम्नः सहकृत्वरी रणाङ्गणे सितांऽशुवर्णै तदगुणैः दिगङ्गनाङभरणं बहुम् यशः पटं वयति, स्म।

व्याख्या:- तद्भटचातुरी = नलयोद्धृचतुरता, तुरी = सूत्रवेष्ट ननलिका, महाऽसिवेम्नः = विशालखड्गवायदण्डयस्य , सहकृत्वरी = सहुकारिणा, रणाङ्गणे = युद्धाऽजिरे, सितांऽशुवर्णै = चन्द्रडवर्णै, तदगुणैः = नलशौर्यादिगुणेरेव तन्तुरभि:, दिगङ्गनाङभरणं = दिशानार्यवयवभूषणम्, बहुम् = प्रचुरं, यशः पटं = कीर्तिवस्त्रं , वयति स्म = निर्मितवती ।

अनुवाद:- नल के योद्धाओं की चतुरता रूप उनके बड़े से तलवार रूप वायु दण्ड के सहारे युद्ध के प्रांगण में चन्द्र सदृश सफेद रूप नल की शूरता आदि गुण रूप गुणों से दिशा रूप स्त्रियों के अंगों के भूषण स्वमरूप प्रचुर कीर्तिरूप वस्त्र को बुना।

टिप्पणी: – तद्भटचातुरी = तस्य भटा:, तद् भटानाम् चातुरी (ष0त0), महाऽसिवेम्नः= महाश्चाऽसौ असि: महाऽसि (क0धा0), रणाङ्गणे = रणस्य अंगम तस्मिन् (ष0त0) सितांऽशुवर्णै: = सिता अंशवो यस्यू स: सिताशु: (बहु0), सितांशोरिव वर्णो येषां ते (व्याय-बहु0), तदगुणैः = तस्य: गुणा: ते: (ष0त0), दिगङ्गनाङभरणं = दिश एव अड्गाना:दिगड्ना: तासामड्गानी (ष0त0) तेसाम् आभरणम् (ष0त0)।

अलंकार:-उपमा + रूपक = संकर।

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.5 राजा नल की गुप्तचर व्यवस्था का वर्णन—

> **प्रतिपभूपैरिव किं ततो भिया**
> **विरुद्धधर्मैरपि भेत्तृतोज्झिता।**
> **अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स**
> **यद्विचारदृक्चारदृगप्यवर्तत ॥13॥**

अन्वय:- प्रतिपभूपै: इव विरुद्धधर्मै: अपि ततो भिया भेत्तृताउज्झिता किम् यत् स अमित्रजित् मित्रजित् विचारदृक अपि चारदृक अवर्तत।

व्याख्या :- प्रतिपभूपै: इव = विरोधिभूपति इव, विरुद्धधर्मै: अपि = मिथोविरोधिधर्मो: अपि, तत: = तस्मात् नलात् इन्यर्थ:, भिया = भयेन हेतुना, भेत्तृता = भेदनकारिता, उज्झिता किम् = परित्यक्ता इव, यत् = यस्मातकारणात् , स = नल:, अमित्रजित् = मित्रजिद्भिन्नि:, शत्रुजेता इति, मित्रजित् = मित्रजेता, सूर्यजेता इति , विचारदृक = चारदृकभिन्न, विचारपूर्वकं दृष्टा अपि चारदृक = गुप्त्चरनैत्र:, अवर्तत = आसीत्।

अनुवाद:- शत्रु राजाओं के समान विरुद्ध धर्मो ने भी उनसे डर कर भेत्तृता - भेदकारिता वा व्यावर्तकता छोड़ दी है क्या ? क्योंकि वे प्रताप से अमित्रजित् (मित्रों को जीतने वाले से भिन्न) होकर भी तेज से मित्रजित् (मित्रों को जीतने वाले थे) यहां पर विरोध प्रतीत होता है, इसका परिहार है, नल प्रताप से अमित्रजित अमित्र अर्थात् शत्रुओं को जीतने वाले थे और तेज से मित्रजित् मित्र अर्थात् सूर्य को जीतने वाले थे इसी तरह नल विचारदृक अर्थात् चारणदृष्टि से भिन्न होकर भी चारदृक अर्थात् चार दृष्टि थे यहां

पर भी विरोध प्रतीत होता है। इसका परिहार है नल विचारदृक- विचार से इन्साफ को देखने वाले और चारदृक अर्थात् चारों (गुप्तकचरों) से सब राष्ट्र के व्यवहारों को देखते थे।।।13।।

टिप्पणी:– प्रतिपभूपै: = प्रतीपाश्च ते भूपा: तै: (क0धा0), विरुद्धधर्मै: = विरूद्धाश्चा ते धर्मा:, तै: (क0धा0), अमित्रजित् = न मित्राणि अमित्रा: (नञ्0) अमित्रान्जयतीतिऽमित्रजित्- अतित्र+ जि +क्विप्, मित्रजित् = मित्रंजयतीति-मित्र + जि +क्विप्,

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि राजा नल ने न केवल विरोधी राजाओं को जीत लिया था अपितु उसके भय से विरोधी स्वभावों ने भी पारस्परिक भेदभाव का त्याग कर दिया था। क्या विरोधी राजाओं के समान परस्पर विरूद्ध स्वंभावों ने भी उस राजा नल के भय से भेदभाव का त्याग कर दिया था, जो नल अमित्रजित् (शत्रुओं को जीतने वाले) होकर मित्रजित् (मित्रों को जीतने वाले) विरोध परिहार के पक्ष में अपने प्रताप के बल पर सूर्य को भी जीत लेने वाले थे तथा चारदृग (गुप्तचरों के द्वारा अपने राज्य के संपूर्ण कार्यकलाप को देख लेने वाले) होने पर भी विचारदृग (गुप्त चरों द्वारा नहीं देखने वाले विरोध के परिहार पक्ष में विचार पूर्वक कार्य करने वाले थे। राजा नल सूर्य के समान तेजस्वी और गुप्तचरों द्वारा देखने वाला था। इस कारण शत्रुओं ने उस राजा नल के भय के कारण परस्पर फूट डालने की क्रिया भी छोड़ दी थी। अतः कवि कल्पना करता है कि शत्रु राजाओं के सदृश विरोधी धर्मों (स्वभावों) ने भी उस राजा नल के भय के कारण भेदभाव को छोड़ दिया था। क्योंकि उसके अंदर विरुद्ध प्रतीत होने वाले धर्म भी एक साथ रहा करते थे। वह मित्रजित होते हुए भी अमित्रजति तथा विचारदृक होते हुए भी चारदृक था।

अलंकार:- विरोध +उत्प्रेथक्षा = संकर ।

छन्द:– वंशस्थछन्द। । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ
वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा ।
तनोति भानोः परिवेषकैतवात्
तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥14॥

अन्वय:- विधि: तदोजस: तद्यशसः स्थितौ इमौ वृथा इति यदा यदा चित्ते कुरूते , तदा परिवेषकैतवात् भानो: विधौ: अपि कुण्ड लनां तनोति।

व्याख्या:- विधि: = ब्रह्मा, तदोजस: = नजतेजस:, तद्यशसः = नलकीर्ते:, स्थितौ = विद्यमानतायाम्, इमौ = भानुविधू ,सूर्यचन्द्रमा इत्यिर्थ, वृथा = व्यतर्थप्रायौ निष्फलाविति, इति = इत्थं, यदा यदा = यस्मिन् यस्मिन् समये, चित्तेर = मनसि, कुरूते = विधत्ते, तदा = तस्मिन् समये, परिवेषकैतवात् = परिधिच्छ लात्, भानो: = सूर्यस्यम , विधौ: अपि = चन्द्रमस: अपि, कुण्डमलनां = वैयर्थ्य सूचकं रेखामण्ड्लं, तनोति = विस्तारयति ।

अनुवाद- ब्रह्माजी नल के देश की और उसकी कीर्ति की स्थिति में (सूर्य और चन्द्र) व्यर्थ हैं ऐसा जब-जब विचार करते हैं तब-तब परिवेष के छल से सूर्य और चन्द्रमा की कुन्डलता को फैला देते हैं ।

टिप्पणी:– तदोजस: = तस्य ओज: तस्यं (ष0 त0), तद्यशसः = तस्य यश: तस्य (ष0त0), स्थितौ = स्थाप +क्तिन्+ड्डि, परिवेषकैतवात् = परिवेषस्य कैतवं तस्माथत् (ष0त0),

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि हर्ष राजा नल के प्रताप को सूर्य से भी अधिक श्रेष्ठ तथा उनके शुभ्र यश को चंद्रमा से भी अधिक श्रेष्ठ बतलाते हैं। जब-जब ब्रह्मा उस राजा नल के प्रताप और यश के आधिक्य की दृष्टि से सूर्य तथा चंद्रमा की स्थिति को व्यर्थ समझने लगते हैं तब-तब इन सूर्य और चंद्र दोनों के चारों ओर घेरा बना दिया करते हैं। कभी-कभी सूर्य तथा चंद्रमा के चारों ओर धुँधले से प्रकाश का एक

वर्त्तुलाकार घेरा सा दिखाई पड़ा करता है। इसे परिवेश अथवा परिधि नाम से कहा जाता है। राजा नल सूर्य के सदृश तेजस्वी हैं और उनका निर्मल यश चंद्रमा के समान शुभ्र (स्वच्छ) निर्मल है। अत: कवि द्वारा यह कल्पना की जाती है कि जब भी ब्रह्मा के मन में यह विचार होता है कि नल के तेज और यश के विद्यमान रहते हुए सूर्य और चंद्र की स्थिति व्यर्थ है तो वह परिवेश वत्र्तुलाकर घेरा के बहाने से उन दोनों सूर्य चंद्र की निरर्थकता को सूचित करने के लिए उनके चारों ओर वत्र्तुलाकार घेरा बना दिया करते हैं। लोक में भी पहले ऐसा हुआ करता है कि लिखते समय यदि कोई शब्द व्युर्थ हो जाया करता था तो लेखक उसकी व्यर्थता सूचित करने के लिए उसके चारों ओर घेरा खींच दिया करते थे।

अलंकार:- प्रतीप + अपह्नुति = संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.6 राजा नल की दानवीरता—

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं
लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः
प्रणीय दारिद्रदरिद्रतां नृपः ॥15॥

अन्वय:- अल्पितकल्पपादपो नृप: अर्थिजनस्य ललाटे **'अयं दरिद्रो भविता'** इति जाग्रतीम् वैधसीं लिपिं, दारिद्रदरिद्रतां, प्रणीय, मृषा, न, चक्रे।

व्याख्या:- अल्पितकल्पपादपो = अल्पिकृतकल्प वृक्ष:, नृप: = नैषध:, अर्थिजनस्य = याचकजनस्यर, ललाटे = भाले, ' अयं = एष:, जन: = नर:, दरिद्र: = नि:स्वश: भविता =भविस्यिति, इति = इत्थंत, जाग्रतीम् = सदा स्थितां,वैधसीं=ब्रह्मसम्बन्धिनीं, लिपिं = लिविं , दारिद्रदरिद्रतां = दरिद्रताऽभावं , प्रणीय = निर्माय , मृषा = मिथ्याह , नचक्रे = न कृतवान्।

अनुवाद:- कल्पवृक्ष को भी मात करने वाले नल ने याचक के लिलार में 'यह दरिद्र होगा' ऐसी विद्यमान ब्रह्मा की लिपि को उस याचक की दरिद्रता का दारिद्रय करके झूठा नहीं बताया।

टिप्पणी:– अल्पितकल्पपादपो = अल्पित: कल्पपादपो येन स: (बहु0), अर्थिजनस्य = अर्थी चाऽसौ जन:, तस्य–: (क0ध0), दारिद्रदरिद्रतां = दरिद्रस्यत भाव: कर्म वा दारिद्रयं, दरिद्रयस्यच द्ररिद्रता ताम् (ष0त0) दरिद्र + तल् + टाप्, प्रणीय = प्र + नी + क्तमवा (ल्यप्)।

अलंकार:-व्ययतिरेक।

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो
न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजायशोयुगं
द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरः स्थितम् ॥16॥

अन्वय:- विभज्य मेरु: यत् अर्थिसात् न कृत: उत्सर्गजलव्यैः सिन्धुद: यत् मरू न कृत:, तत् तेन द्विफालबद्धा: चिकुरा: शिर: स्थितं निजाऽयशोयुगम् अमानी।

व्याख्या:- विभज्य = विभागं कृत्वा, खण्डशो विधायेति भाव:, मेरु: = सुमेरूपर्वत:, यत् = यस्मातकारणात्, अर्थिसात् = याचकाऽधीन:, न = नैव, कृत: = नो विहित:, उत्सर्गजलव्यैः = दानसालिलोपयोगै:, सिन्धु: = समुद्र:, यत् = यस्मात्कारणात्, मरू: = धन्वा, निर्जलदेश इति भाव:, न कृत: = नो विहित:, तत् = तस्मात्कारणात् , तेन = नलेन, द्विफालबद्धा: = द्विभागनद्धा:, चिकुरा:

= केशा:, शिर: स्थितं = स्वयमस्तभकस्थंद, निजाऽयशोयुगम् = स्वकीयाऽकीर्तियुग्मं , अमानी = मतं।

अनुवाद:- विभाग करके सुमेरु पर्वत को याचकजनों को नहीं दिया और न तो दान करने के समय में जल का ब्यय करके समुद्र को मरुस्थल बनाया इस कारण से महाराजा नल ने दो भागों में बांधे गए अपने केशों को अपने सिर में स्थित अपने दो अकीर्ति रूप समझा। ॥16॥

टिप्पणी: – विभज्य = वि + भज् + क्वा जलय (ल्यप्) उतसर्गजलव्ययै: = उत्स,र्गस्य जलं तस्यत व्या: तै (ष0 त0), शिर: स्थितं शिरसि स्थिलम् (स0त0), निजाऽयशोयुगम् = न यशसी (नञ्) निजं च तत् अयशोसुगम् (क0धा0),

विशेष:- प्रस्तुत श्लोक में महाकवि श्री हर्ष राजा नल की दानवीरता का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। राजा नल अपने मन में सोच रहे हैं कि मैंने स्वर्णराशि के रूप में विद्यमान सुमेरु पर्वत को टुकड़े-टुकड़े कर याचकों के लिए दान के रुप में नहीं दे दिया और दान देने समय पुरोहित द्वारा संकल्प् पड़े जाने के अनंतर छिड़के जाने वाले जल के रूप में मैंने समुद्र के जल को व्ययकर उसे मरुस्थल नहीं बना दिया। अतएव मेरे जीवन का यही दोनों अपयश ही मेरे सिर पर स्थित दो भागों में बटे हुये केशसमूह के रूप में विद्यमान है। केशों का वर्ण काला होता है कवि संप्रदाय में अयश अथवा अपकीर्ति का वर्ण भी काला ही माना गया है। अतः कवि द्वारा यह कल्पना की गई है कि राजा नल के दो अपयश थे—

1. याचकों को दान में देकर मेरु पर्वत को व्याय न कर देना 2. दान देते समय पढ़े जाने वाले संकल्प के पश्चात जल को व्ययकर समुद्र को सुखाकर मरुस्थल न बना देना। राजा द्वारा अपनी इन दोनों अपयशों को स्वीकार किए जाने से यह ध्वुनी स्पष्ट होती है कि राजा नल महान दानी थे अथवा उनके पास इतना प्रचुर धन दान देने के लिए था कि उनको मेरु पर्वत को विभक्त कर दान में देने की आवश्यकता ही न पड़ी। याचक लोग राजा के पास जब मांगने आते थे राजा उनको उनकी मांग से इतना अधिक दान देते थे कि जिससे उनको जीवन पर्यंत राजा के पास आकर याचना न करनी पड़े। इस भांति उनके राज्य में कोई याचक राजा के पास आने के लिये अवशिष्ट नहीं रह गया। फिर मेरु पर्वत के टुकड़े-टुकड़े कर दान देने आदि प्रश्न ही नहीं उठता।

अलंकार:- तुल्ययोगिता + रूपक = संसृष्टि।

छन्द:– वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.7 राजा नल की शास्त्रज्ञता का वर्णन—

अजस्रमभ्यासमुपेयुषा समं
मुदैव देवः कविना बुधेन च।
दधौ पटीयान्समयं नयन्नयं
दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने ॥17॥

अन्वय:- पटीयान् दिनेश्वरश्री: अयं देव: अजस्रम् अभ्यासम् उपेयुषा कविना बुधेन च समं मुदां एव समयं नयन् दिने दिने उदयं दधौ।

व्याख्या:- पटीयान् = कार्यकुशल:, दिनेश्वरश्री: = सूर्यसमतेजा:, अयं देव: = अयं राज्ञ: नल: इत्यर्थ, अजस्रम् = निरन्तररम्, अभ्यासम् = समीपम्, उपेयुषा = प्राप्तवता, कविना = काव्यकर्ता शुक्रेण च, बुधेन = पण्डितेन चन्द पुत्रग्रहेण च, समं = सह, मुदां एव = आनन्देन एव, समयं = कालं, नयन् = यापनम् , दिने दिने = प्रतिदिनम् , उदयं = उदयन् उन्नरतिम् उदयपर्वत सम्बन्धं च, दधौ = धृतवान् ।

अनुवाद:- कार्य कुशल और सूर्य के समान तेज वाले ये महाराजा नल जैसे सूर्य के निरनतर समीप में रहने वाले कवि (शुक्र) के तथा चंद्रमा के पुत्र ग्रह के साथ हर्ष के साथ समय को बिताते हुए प्रतिदिन

उदयांचल को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार निरन्तर निकट रहने वाले कवि (काव्यकर्ता) और बुध (विद्वान्) के साथ हर्ष से समय को बिताते हुए प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त करते थे। ॥17॥

टिप्पणी:– दिनेश्वरश्री: = दिनस्य ईश्वर: (ष0त0) तस्य इव श्रीर्यस्य स: (व्या0 बहु0), नयन् = नि + लट् (शतृ0)।

अलंकार:- संसृष्टि।

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.8 राजा नल के शारीरिक लक्षणों का वर्णन—

अधोविधानात्कमलप्रवालयोः
शिरः सु दानादखिलक्षमाभुजाम्।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा
पदं किमस्याङ्कितमूर्ध्वरेखया ॥18॥

अन्वय:- कमलप्रवालयो: अधोविधानात् अखिलक्षमाभुजाम् शिरःसु धानात् इदम् उर्ध्वं पुरा भवति इति वेधसा अस्य पदम् ऊर्ध्वयरेखया अंकितं किम्।

व्याख्या:- कमलप्रवालयो: = कमलपल्लवयो:, अधोविधानात् = तिरस्करणात्, अखिलक्षमाभुजाम् = सकलभूपालानां, शिरःसु = मस्त,केषु, धानात् = स्थाकपनात्, इदम् = पदम्, उर्ध्वं = उपरिवर्ति, पुरा भवति = भविष्यलति, इति = हेतो:, वेधसा = ब्रह्मणा, अस्य = नलस्या, पदम् = चरणम्, ऊर्ध्वनरेखया = उच्चरेबखया, अंकितं किम् = चिह्नितं किम् ?।

अनुवाद:- कमल और पल्लव को तिरस्कांर करने से और सम्पूर्ण राजाओं के मस्तक में स्थापन करने से, यह चरण उच्च स्थान में रहेगा इस हेतु ब्रह्मा जी ने इनके चरण को उर्ध्वे रेखा से अंकित किया है क्या ? ऐसा मालूम पड़ता है।

टिप्पणी:– कमलप्रवालयो: = कमलं च प्रवालश्च्, तयो: (द्वन्द्व :), अखिलक्षमाभुजाम् = क्षमां भुञ्जन्तीति क्षमाभुज:,(क्षमा+भुज्+ क्विप्) अखिलाश्च ते क्षमाभुज: तेषाम् (क0धा0), ऊर्ध्वेखया = ऊर्घ्वा चाऽसौ रेखा, तया (क0ध0)

अलंकार:-उत्प्रेडक्षा

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.9 राजा नल की युवावस्थाण का वर्णन—

जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं
प्रणीतवान्शैशवशेषवानयम्।
सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं
वपुस्तथाऽऽलिङ्गदथास्य यौवनम् ॥19॥

अन्वय:- शैशवशेषवान् अयं जगज्जयं तेन च कोशम् अक्षयं प्रणीतवान् अयं रतीशस्यं सखा ऋतु: यथा वनं तथा यौवनम् अस्य वपु: आलिङ्गत्।

व्याख्या :- शैशवशेषवान् = बाल्याऽवशेषयुक्तक:, षोडषवर्षदेशीय इति भाव:, अयं = नल:, जगज्जयं = लोकविजयं, तेन च = जगज्जगयेन च, कोशम् = भाण्डाशगृहम्, अक्षयं = क्षयरहितं, प्रणीतवान् = कृतवान् , अयं = राज्ञ: नल:, रतीशस्य = रतिपते:, कामदेवस्येति भाव, सखा = सहचर:, ऋतु: = बसन्तत:, यथा = येन प्रकाररेण, वनं = काननम्, तथा = तेन प्रकारेण, यौवनम् = तारूण्यं, अस्या = नलस्यग, वपु: = शरीरम् , आलिङ्गत् = आलिङ्गितवत्,आश्रयदित्यिर्थ:। नलस्यत यौवनप्रदुर्भावो जात इति भाव:।

अनुवाद:- बाल्यावस्था का कुछ अवशेष रहने पर ही नल ने जगत् को जीत लिया उससे अपने कोष को अक्षय (परिपूर्ण) बना डाला। जैसे कामदेव का सहकारी (मित्र) ऋतु (बसन्त) वन को आश्रय करता है, वैसे ही बाल्यावस्था के बीतने पर यौवन ने उनके शरीर का आश्रय लिया, अर्थात् नल युवा हो गए।

टिप्पणी:– जगज्जयं = जगतां जय:, तम् (ष0 त0), प्रणीतवान् = प्र + नी + क्तवतु:, अक्षयं = अविद्यमान:क्षयो यस्यी तम् (नञ्0), रतीशस्यउ = रते: ईश: तस्य (ष0त0), यौवनम् = यून: भाव: यूवन् , आलिङ्गत् = आङ् + लिगि + लङ्+तिप्,।

अलंकार:-उपमा

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ),

अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा
क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे।
तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां
न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ॥20॥

अन्वय:- तदङ्घ्रिणा पद्मेषु घृणा अधारि तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे क्व शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः तदास्यदास्ये अपि अधिकारितां,न,गत:।

व्याख्या:- तदङ्घ्रिणा = नलचरणेन, पद्मेषु = कमलेषु, घृणा = जुगुप्सार, अधारि = धृता, नलचरणापेक्षया कमलानां हीनत्वघ इति भाव:, तच्छयच्छायलवोऽपि = नलपाणिकान्तिलेश: अपि, पल्लवे = किसलये , क्व = कुत्र, नलपाणित: कमलानां हीनत्व इति भाव:, शारदः = शरदभ्युरदित:, पार्विकशर्वरीश्वरः = पूर्णिमाचन्द्रव:, तदास्यदास्ये अपि = नलमुखदासभावे अपि, अधिकारितां = योग्यितां, न गत: = न प्रप्त:, शरद पूर्ण चन्द्रो अपि नलमुखतोहीनआसीदितिभाव:,।

अनुवाद:- नल के चरण ने कमलों में घृणा की। नल के पाणि की कान्ति का लेज भी पल्लव में कहॉ था ? शरद ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्र उनके मुख के दास होने के लिए भी अधिकारी नहीं थे।

टिप्पणी:– अस्मिन् श्लोके नलशरीरसौन्दर्य वर्णनम्- तदङ्घ्रिणा = तस्य, अङ्घ्रि: तेन (ष0त0), तच्छयच्छायलव: = तस्यि: शय: तच्छ य (ष0त0), पार्विकशर्वरीश्वरः = पर्वणि भव: पावर्कि:- पार्विकश्चावऽसौ शर्वरीश्वरत (क0धा0), तदास्यदास्ये = तदास्यस्यि दास्यंर तस्मिन् (ष0त0)।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्री हर्ष राजा नल के अतिशय सौंदर्य का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। उस राजा नल के चरण कमलों के प्रति घृणा की अथवा दया की, क्योंकि उन कमलों में नल के चरण की शोभा विद्यमान थी ये कमल नल चरण में रेखा रूप में स्थित थे। अत: इन कमलों में मुझसे ही शोभा प्राप्तद की होगी। इस कारण मेरी अपेक्षा हीन शोभावाले इन कमलो के साथ मेरे द्वारा स्पडर्धा किया जाना उचित नहीं है। यह समझकर नल चरण ने कमलों से घृणा की अथवा ये कमल रेखारूप में मेरे शरीर या चरण में ही स्थित अर्थात् मेरे ही आश्रित हैं। यह समझकर राजा नल के चरण कमलों पर दया की (अपने से हीन के साथ घृणा करना तथा अपने आश्रित पर दया करना नल आचरण के लिए उपयुक्त ही था।) नूतन किसलय पल्लव में उस नल के हाथ की कांति का लेश (थोड़ा सा अंश) भी कहा था। अर्थात् नहीं था। जिस किसलय में राजा नल के हाथ की कांति का लेश मात्र भी अंश विद्यमान नहीं था फिर वह किसलय इनकी हाथ की शोभा की समता को कैसे प्राप्त कर सकता था। तथा शरत्कालीन पूर्णिमा का चंद्रमा उस राजा नल के मुख के दासत्वस का अधिकारी भी नहीं हुआ। फिर ऐसी स्थिति में उसकी समता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि चंद्रमा शरत्काल एवं पूर्णिमा के योग में रमणीयता को प्राप्त हुआ था और वह भी केवल एक दिन के लिए ही। इसके अतिरिक्त वह चंद्रमा सोलह कलाओं से युक्त था। जबकि राजा नल का मुख स्वत: ही (अर्थात् बिना किसी की सहायता के योग को प्राप्त किये हुये)

सदा के लिए रमणीय तथा चौसठ कलाओं से युक्त था। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा द्वारा राजा नल मुख की समानता प्राप्त कर सकना नितान्त असम्भ्व ही था। अत: चन्द्रमा का मुख उसके मुख की योग्यता भी प्राप्त न कर सकना उचित ही है। क्योंकि रमणीयतम नायक के लिए दास का रमणीय होना भी आवश्यक है।

अलंकार:-अतिशयोक्ति

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

किमस्य लोम्नां कपटेन कोटिभिः
विंधिर्न लेखाभिरजीगणद्गुणान्।
न रोमकूपौघमिषाज्जगत्कृता
कृताश्च किं दूषणशून्यबिन्दवः ॥21॥

अन्वय:- विधि: रोम्णां कपटेन कोटिभिः लेखाभि: अस्य गुणान् किम् न अजिगणत् जगत्कृता रोमकूपौघमिषात् दूषणशून्यबिन्दवश्चन किं न कृता।

व्याख्या:- विधि: = ब्रह्मा, रोम्णांद = लोम्नांद, कपटेन = व्याजेन, कोटिभिः = सार्धत्रिकोटिसंख्याभि:, लेखाभि: = रेखाभि:, अस्य = नलस्य, गुणान् = शौर्य आदि सौन्दतर्य गुणान्, किम् न अजिगणत् = किं न गणितवान्, अजिगणत् इति भाव:, जगत्कृता = लोकसृजा, ब्रह्मणेति भाव:, रोमकूपौघमिषात् =लोमकूपसमूहच्छेलात् , दूषणशून्यबिन्दवश्चा = दोषाभाव: पृषता:, किं न कृता = किं न विहिता:, नलस्यल गुणा अतिप्रचुरतादोषाणां सुतरामभाव: इति भाव:,।

अनुवाद:- ब्रह्माजी ने रोओं के बहाने से करोड़ों रेखाओं से क्या नल के गुणों को नहीं गीना ? उसी तरह लोग की सृष्टि करने वाले उन्होंने रोमकूपों के बहाने से नल के दोषों के अभावसूचक शून्य बिन्दुओं को क्या नहीं किया ?।

टिप्पणी:– जगत्कृता = जगत् करोतीति जगत्कृचत तेन- जगत् + कृ + क्विप् +टा (उपपद0), रोमकूपौघमिषात् = रोम्णांक कूपा: (ष0 त0) तेषामोघ: (ष0 त0) तस्यभ मिषं तस्मा(त् (ष0 त0), दूषणशून्यबिन्दवश्चु = दूषणानां शून्यानि (ष0 त0)

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष यह व्यक्त करते हैं कि राजा नल में गुण ही गुण थे, दोष एक भी नहीं था मानव जीवन में साढ़े तीन करोड़ रोमा हुआ करते हैं तथा राजा का प्रत्येक रूम एक-एक रोमकूप के अंतर्गत विद्यमान माना गया है। अतः ब्रह्मा ने राजा नल के शरीर में विद्यमान साढ़े तीन करोड़ रोमों के बहाने से राजा नल के गुणों की गणना की थी। तथा उसी ने राजा नल के शरीर में विद्यमान साढ़े तीन करोड़ रोम छिद्रों के बहाने से राजा नल के अन्दर दोषों के अभाव स्वरूप गोल-गोल छिद्रों का भी निर्माण किया था। अत्यधिक संख्यावाली वस्तुओं की गणना करते समय विस्मरण न होने देने के लिए रेखाओं द्वारा उनकी गणना किया जाना तथा अभावसूचक स्थलों पर गोलाकार शून्य बिंदुओं को रखना लोक व्यवहार में भी देखा देखने को मिलता है। अतएव महाकवि द्वारा यह कल्पना किया जाना कि राजा नल के शरीर में यह रोम नहीं है अपितु राजा नल के गुणगणना की रेखाएं ही हैं तथा यह रोमकूप नहीं है किंतु दोषाभाव सूचक शून्यी बिंदु ही हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि राजा नल में अत्यधिक गुण थे तथा दोषों का पूर्ण अभाव था।

अलंकार:-अपह्नुति + अर्थापत्ति = संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अमुष्य दोर्भ्यामरिदुर्गलुण्ठने
ध्रुवं गृहीताऽर्गलदीर्घपीनता।

उरः श्रिया तत्र च गोपुरस्फुरत्
कपाटदुर्धर्षतिरः प्रसारिता ॥22॥

अन्वय:- अमुष्य दोर्भ्याम् अरिदुर्गलुण्ठने अर्गलदीर्घपीनता गृहीता ध्रुवं तत्र उर: श्रिया च गोपुरस्फुरत कपाटदुर्धर्षतिरः, प्रसारिता, गृहीता, ध्रुवम्,।

व्याख्या:- अमुष्य = नलस्य, दोर्भ्याम् =बाहुभ्याम्, अरिदुर्गलुण्ठने = शत्रु दुर्गमस्थुबलात्कारग्र हणे, अर्गलदीर्घपीनता = विष्कृम्भायतपुष्ट=ता, गृहीता ध्रुवं = उपात्तार किम्? तत्र = अरिदुर्गलुण्ठ्ने, उर: श्रिया च = वक्ष:स्थ्लसम्पतत्यात च, गोपुरस्फुरत् = पुरद्वारप्रकाशमानं, कपाटदुर्धर्षतिरः = कपाटाऽधृष्टलतातिर्य:, प्रसारिता = प्रसरणशीलता च, गृहीता ध्रुवम् = उपात्ता किम।

अनुवाद:- नल की बाहों में शत्रु के किलों को बलात्कार से ग्रहण करने में अर्गला के समान लम्बाई और मोटाई को ग्रहण कर लिया है ऐसा मालूम पड़ता है। उनके वक्षस्थल की शोभा ने शहर के द्वार में प्रकाशमान कपाट के समान दुर्धर्षता और तिरछी विस्तृतता को ग्रहण कर लिया है ऐसा प्रतीत होता है।

टिप्पणी: – अरिदुर्गलुण्ठने = अरीणां दुर्गाणी (ष0 त0) तेषां लुण्ठनं तस्मिन् (ष0 त0), अर्गलदीर्घपीनता = दीर्ध च तत्पीनता (क0धा0),अर्गलस्य दीर्घपीनता (ष0त0), गृहीता = ग्रह+ क्तग +टाप् , उर: श्रिया = उरस: श्री: तया (ष0 त0) , गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरः प्रसारिता = स्फुरच्चक तत्कटपाटम् (क0धा0), गोपुरे स्फुहरतकपाटम् (स0त0),

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.10 राजा नल के मुख सौन्दर्यता—

स्वकेलिलेशस्मितनिन्दितेन्दुनो
निजांशदृक्तर्जितपद्मसंपदः।
अतद्द्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे
न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे ॥23॥

अन्वय:- स्वकेलिलेशस्मितनिन्दितेन्दुन: निजांऽशदृक्तर्जितपद्मसंपदः तन्मुखस्य प्रतिमा अतदद्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे चराऽचरे न।

व्याख्या:- स्वकेलिलेशस्मितनिन्दितेन्दुन: = आत्ममक्रीडालवमन्दिहास्यदविजितचन्द्रस्य, निजांऽशदृक्तर्जितपद्मसंपदः = स्वलभागनेत्रभर्त्सितकमलश्रिय:, तन्मुखस्य = नलस्य, प्रतिमा = उपमा, अतद्द्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे = चन्द्रपद्मजेतृरूचिरपदार्थरहिते, चराऽचरे = जंगमस्थापवरात्मत्रकेजति, न = न अवतर्त।

अनुवाद:- अपनी क्रीडा के लेशभूत मन्दहास्य से चन्द्रमा को जीतने वाले और अपने अंशभूत नेत्रों से कमलों की शोभा की भर्त्सना करनेवाले नलमुख की उपमा चन्द्रमा और कमल को जीतने वाले सुन्दर पदार्थ से रहित चराऽचर (जगत्) में नहीं थी।

टिप्पणी: – स्वकेलिलेशस्मितनिन्दितेन्दुन: = स्वेस्यन केलि: तस्या : लेश: (ष0 त0) स्वरकेलि लेश्चह तत् स्मितम् (क0धा0), निर्जित इनदु: येन तत् (बहु0), स्वकेलिलेशस्मितेन निर्जितेन्दुन: तस्य (तृ0त0), निजांऽशदृक्तर्जितपद्मसंपदः = नितश्चानसौ अंश: स चासौ दृक् (क0धा0) पद्मस्य सम्प त् (ष0 त0), तर्जितापद्मसंपत् येन (बहु0), तन्मुखस्य = तस्य मुखं तस्य (ष0 त0),

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष बतलाते हैं कि राजानल का मुख अनुपमेय अथवा अनुपम था— राजा नल के मुख ने अपनी क्रीड़ापूर्ण मन्द मुस्कान से चंद्रमा पर विजय प्राप्त कर ली थी। तथा उस राजा नल के मुख के एक भाग नेत्रों ने कमरों की शोभा को जीत लिया था। अतः उस राजा नल के मुख

की उपमा संसार भर में कोई भी वस्तु नहीं थी क्योंकि राजा नल के मुख के द्वारा अखिल विश्व में सुंदरतम चंद्रमा तथा कमल पराजित किये जा चुके थे। संसार में अन्य कोई वस्तु ऐसी नहीं थी जो चंद्रमा और कमल पर विजय प्राप्त करने वाली हो। ऐसी कोई वस्तु विश्व में होती तो वह राजा नल के मुख की तुलना में आ सकती थी और उपमान भी बन सकती थी। अतः राजा नल के मुख्य की समानता में भी आ सकने वाली कोई वस्तु नहीं थी। फिर उसकी अपेक्षा और अधिक सौंदर्यशालिनी अन्य वस्तु की भी किया जाना संभव नहीं है। उपमेय की अपेक्षा उपमान पदार्थ के श्रेष्ठ होने पर ही उपमा दी जाया करती है। और ऐसी कोई वस्तु थी ही नहीं जो राजा नल के मुख की अपेक्षा अधिक सुंदर होकर उपमान की श्रेणी में आ सके। अतः राजा नल का मुख अनुपमेय ही था।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

सरोरुहं तस्य दृशैव निर्जितं
जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः ।
कुतः परं भव्यमहो महीयसी
तदाननस्योपमितौ दरिद्रता ॥24॥

अन्वय:- तस्य दृशा एव सरोरुहं तार्जितं तस्य स्मितेन न विधो: अपि श्रियः जिताः। परं भव्यं कुत:? अहो ! तदाननस्य उपमितौ महीयसी दरिद्रता ।

व्याख्या:- तस्य = नलमुखस्य, दृशा एव = नेत्रेण एव, सरोरुहं = कमलं, तार्जितं = भर्त्सितम्, तस्य स्मितेन = मन्दहास्येन एव, न विधो: अपि = चन्द्रमस: अपि, श्रियः = शोभा:, जिताः = निर्जिता: । परं = अन्यत , भव्यं = सुन्दरं वस्तु, कुत: = कस्मात् उपलभ्येरतिशेष:। अहो ! = आश्चर्यम्, तदाननस्य = नलमुखस्य, उपमितौ = तुलनायां, महीयसी = अतिमहति, दरिद्रता = वचनसम्पात्तेरभाव: ।

अनुवाद:- नल के मुख मण्डल में वर्तमान नेत्र ने ही कमल की रचना की और मन्दहास्य से ही चन्द्रमा की शोभाओं को जीत लिया। इन दोनों (कमल और चन्द्र) से अन्य सुन्दर पदार्थ कहां है ? आश्चर्य है कि नल के मुख की उपमा में बड़ी दरिद्रता है।

टिप्पणी: – सरोरुहं = सरसि रोहतीति (उपपद0), तदाननस्य = तस्य आननं तस्यर (ष0 त0), दरिद्रता = दरिद्रस्यो भाव:, दरिद्र+तल् +टाप्

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

स्ववालभारस्य तदुत्तमाऽङ्गजैः
समं चमर्येव तुलाऽभिलाषिणः ।
अनागसे शंसति बालचापलं
पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् ॥25॥

अन्वय:- चमरी एव तदुत्तमाऽङ्गजैः समं तुलाऽभिलाषिणः स्ववालभारस्य अनागसे पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् बालचापलं, शंसति।

व्याख्या:- चमरी एव = चमरमृगी एव, तदुत्तमाऽङ्गजैः समं = नलकैशै: सह, तुलाऽभिलाषिणः = साम्यकामिन:, स्ववालभारस्य = आत्मजकेशकलापस्यय, अनागसे = अपराधाऽभावाय, पुनः पुनः = भूयो भूय: , पुच्छविलोलनच्छलात् = लाड्गूलसञ्चालनव्या जात्, बालचापलं = रोमचाञ्चल्यं यद्वा, शिशुचाञ्चल्यं, शंसति=सूचयति।

अनुवाद:- चमरी मृगी ही नल के केसों के साथ बराबरी की इच्छा करने वाले अपने केशकलाप की निरपराधता प्रकाशन के लिए बार-बार पूँछ पिलाने के बहाने से रोओं की चपलता वा यह बालक की चपलता है ऐसी सूचना करती है।

टिप्पणी: – तदुत्तमाऽङ्गजैः= उत्तकमम् च तत् अंगम् (क0धा0), तुलाऽभिलाषिणः = तुलाम् अभिलषतीति तच्छील(उपपद0) , पुच्छविलोलनच्छलात् = पुच्छतस्य विलोलनम् तस्यै छलं तस्मादत्(ष0त0), बालचापलं = बालानां चापलम् एव बालस्य चापल तत् (ष0त0),

अलंकार:-संकर

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

महीभृतस्तस्य च मन्मथश्रिया
निजस्य चित्तस्य च तं प्रतीच्छया।
द्विधा नृपे तत्र जगत्त्रयीभुवां
नतभ्रुवां मन्मथविभ्रमोऽभवत् ॥26॥

अन्वय:- तस्य महीभृत: मन्मथश्रिया तं प्रति निजस्य चित्तस्य इच्छया च तत्र नृपे जगत्त्रयीभुवां नतभ्रुवां द्विधा मन्मथविभ्रमो अवत्।

व्याख्या:- तस्यय = पुर्वोक्तशस्य , महीभृत: = राज्ञ: नलस्येतति भाव: , मन्मथश्रिया = कामसदृशशोभा, तं प्रति = नलं प्रति, निजस्य = स्वास्य, चित्तस्य = मनस:, इच्छया च = स्पृदहया च, तत्र = तस्मिन्, नृपे = राजनि, जगत्त्रयीभुवां = लोकत्रितयोत्पनन्नांर , नतभ्रुवां = सुन्दृरीणां, द्विधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां , मन्मथविभ्रम: = कामभ्रान्तित:, कामविलासश्च। अभवत् = अभूत् ।

अनुवाद:- राजा नल की कामदेव के समान शोभा से और उनके प्रति अपने चित्त की इच्छा से उनके विषय में तीन लोकों में विद्यमान स्त्रियों में दो प्रकारों से कामविभ्रम (यह कामदेव है ऐसी भ्रान्ति और कटाक्ष आदि कामविलास भी) हो गया।

टिप्पणी: – महीभृत: = महीं बिभर्तीति महीभृत् तस्य –मही+ भृ +क्विप् +ड.स् (उपपद0), मन्मथश्रिया = मन्मथस्यम श्री: तया (ष0त0), जगत्त्रयीभुवां= जगतां त्रयी तस्यान भवन्उपपति जगत्त्रयीभुव: (ष0त0), नतभ्रुवां=नते भ्रुवौ यासांता नतभ्रुव : तासाम् (बहु0), मन्मथविभ्रमो = मन्मवथस्यन विभ्रम: (ष0त0)

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष राजा नल के अनुपम सौंदर्य का वर्णन करते हैं— राजा नल कामदेव के समान सुंदर थे। अतः तीनों लोकों में निवास करने वाली स्त्रियां उनको चाहती थी। इस स्थिति में उन सभी को दो प्रकार का भ्रम होता था (यहां विभ्रम शब्द का दो प्रकार का अर्थ किया जा सकता है—1. विशिष्टभ्रम और 2. विलास 1. विशिष्टभ्रम राजा नल कामदेव ही हैं, और 2. अपने अपने हृदयों में राजा नल के प्रति आसक्ति होने के कारण यह उन्हें देखकर विलास अर्थात् कटाक्ष आदि हावभाव भी करने लगा करती थी। यहां आशंका होती है कि तीनों लोकों में पतिव्रता स्त्रियॉ नहीं थी क्योंकि पतिव्रताओं के हृदयों में कामभिलाषा का उत्पन्न होना संभव नहीं है। अत: यहां यह अर्थ कर देना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि पतिव्रता स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के मन में ही काम संबंधी विलास की उत्पत्ति हुई। तात्पर्य यही निकलता है कि राजा नल कामदेव के समान ही सुन्दर थे।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.11 देवांगनाओं का वर्णन—

निमीलनभ्रंशजुषा दृशा भृशं

निपीय तं यस्त्रिदशीर्बिरर्जितः ।
अमूस्तमभ्यासभरं विवृण्वते
निमेषनिः स्वैरधुनापि लोचनैः ॥27॥

अन्वय:- त्रिदशीभी: निमीलनभ्रंशजुषा दृशा तं भृशं निपीय य: अर्जित: अमू अधुना अपि निमेषनिःस्वै लोचनैः तम् अभ्यासभरं विवृण्वते।

व्याख्या:- त्रिदशीभी: = देवेभि:, निमीलनभ्रंशजुषा = मुद्रणनिवृत्तिसेविन्या , निमेषव्याप्पार शून्यनया इति भाव:, दृशा = दृष्टिया, तं = नलं, भृशं = अत्यनर्थत:, निपीय = पानं कृत्वाश, य: = अभ्यानसभर:, अर्जित: = उपर्जित:, अमू = त्रिदश्यन:, अधुना अपि = इदानीम अपि, निमेषनिःस्वै = निमेषव्यातपारहितै:, लोचनैः = नैत्रै:, तम् = पूर्वोपार्जितम्, अभ्यासभरं = अनुशीलनोत्केर्षं, विवृण्वते = प्रकटयन्ति।

अनुवाद:- देवियों ने निर्निमेष दृष्टि से उनको देखकर जो अतिशय अभ्यासको अर्जित किया था वे लोग अभी भी निमेष रहित दृष्टियों से उनको अभिव्यक्त कर रही है।॥27॥

टिप्पणी: – त्रिदशीभी: = तिस्रो दशा येषां ते त्रिदशा: (बहुज0), निमीलनभ्रंशजुषा = निमीलस्य= भ्रंश: तं जुषत इति (ष0त0),नितीलभ्रंश+ जुष् +क्विप् + टा , निपीय = नि+ पा + क्वाम अ (ल्यैप्), निमेषनिःस्वै= निर्गत: स्वच: धनम् येभ्यष: तानि (बहु0),निमेषेसु नि:स्वायनि तै (स0त0), अभ्यासभरं= अभ्यासस्य भर: तम् (ष0त0)

अलंकार:-प्रतियमानोत्प्रेक्षा

छन्द:– वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अदस्तदाकर्णि फलाढ्यजीवितं
दृशोर्द्वयं नस्तदवीक्षि चाफलम्।
ति स्म चक्षुः श्रवसां प्रिया नले
स्तुवन्ति निन्दन्ति हृदातदात्मनः ॥28॥

अन्वय:- चक्षुःश्रवसां प्रिया: अद: न: दृशो द्वयं तदाकर्णि फलाढ्यजीवितं तदवीक्षि अफलं च इति नले आत्मन: हृदा तत् स्तुकवन्ति स्मभ निन्दन्ति स्मद च।

व्याख्या:- चक्षुःश्रवसां = सर्पाणां, प्रिया: = वल्लभा सर्प्य इत्यर्थ, अद: = इदं, न: = अस्मकम्, दृशो = नेत्रयो:, द्वयं = द्वितयं, तदाकर्णि = नलश्रवणशीलं सत् , फलाढ्यजीवितं = सफलजीवितं, तदवीक्षि = नलावेक्षणरहितं सत्, अफलं च = निष्फनलं च, इति = अस्माभद्धेतो:, नले = नैषधविषये, आत्मन: = स्वषस्य , स्तु=वन्ति स्मल = प्रशंसन्तिस्मल, निन्दन्ति स्मी च = जुगुप्स न्तो च।

अनुवाद:- सर्पों की स्त्रियॉ ये हमारी दो ऑखें नल के गुणों की सुनाती हैं, इसलिए इनका जीवन सफल है, नल को देखने से ये निष्फल भी हैं इस प्रकार से वे (सर्पों की स्त्रियॉ) नल के विषय में अपनी ऑखों की स्थिति और निन्दा भी करती हैं।

टिप्पणी: – चक्षुःश्रवसां = चक्षुषी एव श्रवसी येषां ते चक्षुश्रवस: तेषाम् (बहु0), तदाकर्णि= तम् आकर्णयतीति, तद् +अम् +आड्. + कर्ण+ णिनी+ सु , फलाढ्यजीवितं=फलेन आढयम् (तृ0 त0) तादृश जीवितं यस्य तत् (बहु0), तदवीक्षि = वीक्षते तच्छीलं वीक्षि- वि+ ईक्ष+ णिनी:,न वीक्षि अवीक्षि (नञ्0) , अफलं = अविद्यमानं फलं यस्यय तत् (नञ्0बहु0), आत्मन: = आत्म न् + शस्।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:– वंशस्थछन्द (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.12 नल के प्रति मानवीय स्त्रियों के भावों का वर्णन—

विलोकयन्तीभिरजस्रभावना-
बलादमुं नेत्रनिमीलनेष्वपि।
अलम्भि मर्त्याभिरमुष्य दर्शने
न विघ्नलेशोऽपि निमेषनिर्मितिः ॥29॥

अन्वयः- अजस्रभावनाबलात् नेत्रनिमीलनेषु अपि अमुं विलोकयन्तीभि: मर्त्याभि: अमुष्य दर्शने निमेषनिर्मितिः विघ्नलेश: अपि न अलम्भि।

व्याख्या:- अजस्रभावनाबलात् = निरन्तयनचिन्तरनशक्ते: , नेत्रनिमीलनेषु अपि = नयन मुद्रणेषु अपि, अमुं = नलं, विलोकयन्तीभि: = पश्यौन्तीतभि:, मर्त्याभि: = मानुषीभि: स्त्रीदभि:, अमुष्य = नलस्य, दर्शने = विलोचने, निमेषनिर्मितिः = नेत्रनिमीलनरचित:, विघ्नलेश: अपि = अन्तयरायलव: अपि, न अलम्भि = नो लब्धि: ।

अनुवाद:- निरन्तर चिन्तन की शक्ति से ऑखों को मूदने पर भी नलको देखने वाली मर्त्यलोयक की स्त्रियों ने नल को देखने में निमेष से उत्पन्न विघ्नका लेश भी नहीं पाया। ॥29॥

टिप्पणी: – अजस्रभावनाबलात् = भावनाया बलम् (ष0 त0), नेत्रनिमीलनेषु = नेत्रयो निमीलनानि , तेषु (ष0त0), विलोकयन्तीभि: = वि+ लोक+ णिच् +लट्+ डीप् , दर्शने = दृश + ल्युट्+डि , निमेषनिर्मितिः = निमेषण निर्मित(तृ0त0), विघ्नलेश: = विघ्नास्य, लेश: (ष0त0),

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में कवि ने पृथ्वी लोक पर स्थित मानवों की स्त्रियों द्वारा राजा नल के सौन्दर्य को देखकर उनमें उत्पन्न होने वाले काम विभ्रम का वर्णन किया है—निरंतर नल का ही चिंतन किए जाने के कारण इस नल को सतत देखती हुयी (मत्र्यलोकवासिनी) कामिनियों अथवा सुन्दरियों ने इस राजा नल को देखने के विषय में पलक मारने मात्र तक से उत्पन्न थोड़े विघ्न को भी प्राप्त नहीं किया। अर्थात् पलक झपकने के क्षण में भी वे नल का ही निरंतर चिंतन किये जाने के कारण मन से राजा नल का दर्शन किया करती थी। देवताओं की पलकें नहीं गिरा करती हैं अर्थात् उनको पलक झपकने की आदत नहीं हुआ करती है। किंतु पृथ्वीलोकवासी मनुष्य एवं स्त्रियों को तो पलक मारने की स्वाभाविक आदत हुआ करती है। अतः उन पलक मारने के क्षणों में स्त्रियों को राजा नल का दर्शन हो सकना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में महाकवि ने यहॉ दर्शाया है कि ये स्त्रियां राजा नल का सतक चिंतन किया करती थी। अत एव पलक मारने की अवस्था में भी मन द्वारा राजा नल का दर्शन उनको होता ही था। महाकवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मानवी-स्त्रियां प्रत्यक्ष रूप से देखे जाने योग्य नल का दर्शन तो अपनी दृष्टि से करती थी तथा पलकों के मारने के समय अप्रत्यक्ष रूप से मन के द्वारा दर्शन किया करती थी।

अलंकार:-अतिशयोक्ति

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं
जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम् ।
तदात्मताध्यातधवा रते च का
चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम् ॥30॥

अन्वय:- का निशि स्वप्नजगतं तं न ददर्श का च गोत्रस्खलिते तं न जगाद का च रते तदात्मताध्यातधवा स्वमनोभवोद्भवम् न चकार ।

व्याख्या- का = स्त्री, निशि = रात्रौ, स्वप्नजगतं = स्वप्राप्तं, तं = नल:, न ददर्श = नो दृष्टवती, का च = स्त्री, गोत्रस्खलिते = नामविपर्या से, तं = नलं, न जगाद = नो बभाषे, का च = स्त्री, रते =

सुरतकेलौः, तदात्मताध्यातधवा = नलरूपचिन्तितभर्तृका सति, स्वमनोभवोद्भवम् = निजचित्त = कामोत्पत्तिं, न चकार = न कृतवती।

अनुवाद:- किसी स्त्री ने रात में स्वप्न में उन्हें नहीं देखा ? किस स्त्री ने नाम के उच्चारण की भ्रान्ति से उनका नाम नहीं लिया ? किस स्त्री ने रतिक्रीड़ा में नल के रूप में अपने पति की चिन्ता कर चिता में कामदेव को प्रकट नही किया।

टिप्पणी:– स्वप्नेगतं = स्वप्नं गत: तम् (द्वि0त0), ददर्श = दृश्+लिट् +तिप् , गोत्रस्खलिते= गोत्रस्य स्खलितं तस्मिन् (ष0त0), तदात्मताध्यातधवा = तस्य (नलस्य) आत्माण यस्या स: तदात्मा (व्या 0 बहु), तदात्मीनोभाव स्तसदात्मतता (बहु0), स्वमनोभवोद्भवम् = स्वकस्य मनो भव (ष0त0) तस्य+ उद्भव: तम् (ष0त0), चकार= कृ +लिट् +तिप् ।

अलंकार:- अतिशयोक्ति

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

श्रियाऽस्य योग्याऽहमिति स्वमीक्षितुं
करे तमालोक्य सुरूपया धृतः।
विहाय भैमीमपदर्पया कया
न दर्पणः श्वाससमलीमसः कृतः ॥31॥

अन्वय:- भैमीं विहाय कया सुरूपया तम् आलोक्य **'श्रिया अहम् अस्य योग्या'** इति स्वम् ईक्षितुं करे धृतः दर्पणः अपदर्पया श्वासमलीमसः न कृत ?॥ 31॥

व्याख्या:- भैमीं = दमयन्तीं, विहाय = त्यक्त्वा, कया, सुरूपया=सुन्दर्या, तं = नलम्, आलोक्य, श्रिया = शोभया, अहम्, अस्य = नलस्य, योग्या = अनुरूपा, इति = एवं, विचार्योति, स्वम् = आत्मानम्, ईक्षितुं = द्रष्टुं, करे = हस्ते, धृतः = गृहीतः, दर्पणः = आदर्शः, अपदर्पया = गातऽभियानया सत्या, श्वासमलीमसः= निःश्वासमलिनः, न कृतः = नो विहितः, भैमीं विहाय सर्वथा निःश्वासवातेन दर्पणो मलिनीकृत इति भावः।

अनुवाद:- दमयन्ती को छोड़कर किस सुन्दरी ने नल को देखकर ''शोभा से मैं इनके अनुरूप हूँ'' ऐसा विचार कर अपने रूप को देखने के लिए हाथ में लिये हुए दर्पण को दर्पहीन होकर निःश्वास वायु से मलिन नहीं बनाया ?।

टिप्पणी:- भैमीं = भीमस्य अपत्यं स्त्री भैमी, ताम् भीम +अण् +ङीप्। विहाय = वि +हा+क्त्वा (ल्यप्)। सुरूपया = शोभनं रूपं यस्या सा सुरूपा तया (बहु0)। आलोक्य = आङ्+लाक्+क्त्वा (ल्यप्)। ईक्षित्म = ईक्ष्+तुमुन्। धृतः = धृञ् + क्त। अपदर्पया = अपगत दर्पः यस्या सा तया (बहु0)। श्वासमलीमसः = श्वासैः मलीमसः (तृ0 त0)। कृतः = कृ+क्तः।

अलंकार:- अतिश्योक्ति अलंकार है

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

यथोह्यमानः खलु भोगभोजिना
प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम्।
विदर्भजाया मदनस्तथा मनो-
नलावरुद्धं वयसैव वेशितः ॥32॥

अन्वयः- यथा भोगभोजिना वयसा एवं उह्यमानः मदनः अनलाऽवरूद्धं वैरोचनिजस्य पत्तनं प्रसह्य वेशिनः खलु। तथा भेगभोजिना वयास एवं उह्य- मानः मदनः नलाऽवरूद्धं विदर्भजाया मनः प्रसह्य वेशितः खलु।

व्याख्या:- यथा = येन प्रकारेण, भोगभोजिना = सर्पशरीरभोक्त्र, वयास एवं = पक्षिणा एव, गरूडेनेत्यर्थः। अलाऽवद्धम् = अग्निपरिवृतं, वैरोचनिजस्य = वाणाऽसुरस्य, पत्तनं = नगरं, शोणितपुरमिति भावः । प्रसह्य = बलेन, वेशितः = प्रवेशितः, खलु = निश्चयेन । तथा = तेन प्रकारेण, भोगभोजिना = सुखाऽनुभाविना, वयसा एव = अवस्थया एव, तारूण्येन एवेत्यर्थः = ऊह्यमानः। वितक्र्यमाणः, मदनः = कामः, नलाऽवद्धं, नैषधसम्बद्धं, विदर्भजाया = वैदभ्र्याः, दमयन्त्या इति भावः। मनः = चित्तं, प्रसह्य = बलेन। वेशितः = प्रवेशितः, खलु = निश्चयेन। नलस्य गुणगणश्रवोत्तरं दमयन्त्या मनसि यौवनेनैव नलविषयकः कामावेशः प्रापित इति भावः।

अनुवाद:- जैसे सर्प के शरीर को खानेवाले पक्षी गरूड ने ही अग्नि से परिवेष्टित बाणाऽसुर के नगर (शाणितपुर) में प्रद्युम्न (कामदेव) को बल से प्रवेश कराया वैसे ही सुख का अनुभव करने वाली अवस्था (जवानी) ने ही सखीजनों से तर्कित कामदेव को नल की चिन्ता करनेवाली दमयन्तीके मनमें बलसे प्रवेश कराया ।

टिप्पणी:- भोगभोजिना = भोगम् (सर्पशरीरम्) भुनक्तीति भोगभोजी, तेन, भोग+भुज्+णिनिः (उपपद0)। वयसा = 'खागबाल्यादिनोर्वयः' इत्यमरः। अनलाऽवरूद्धम् = अनलेन अवद्धम्, तत् (तृ0त0)। वैरोचनिजस्य = विरोचनस्य (प्रजादपुत्रस्य) अपत्य पुमान् वैरोचनिः (बलिः), विरोचनः इव्। वैरोचनेः जातः वैरोचनिजः, तस्य। वैरोचनि = उपपदपूर्वक जन् धातु से ड़ प्रत्यय (उपपद0)। प्रसह्य = प्र + सह् + क्त्वा (ल्यप्) वेशितः = विश् + णिच् + क्तः। नलाऽवरूद्धं = नल ने अवरूद्धं तत् (तृ0त0)। विदर्भजायाः = विदर्भेषु जायत इति विदर्भजा, तस्याः, विदर्भ + जन् + ड + टाप् + ङस्। (उपपद0)।

विशेष:- उक्त श्लोक के सन्दर्भ में एक पौराणिक कथा भी है- उषा की सखी चित्रलेखाने बाणाऽसुरकी कुमारी उषा से स्वप्न में देख गये अनिरूद्धको योगबलसे लाकर उषासे समागम कराया। बाणाऽसुरने यह वृत्तान्त जानकर अनिरूद्धको बन्दी बनाया। नारद से इस बातको जान कर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न ने गरूडपर सवार होकर शोणितपुर में प्रवेश कर बाणाऽसुर को संग्राम में जीतकर अनिरूद्ध को छुड़ाया- यह कथा श्रीमद्भागवत महापुराण में है।

अलंकार:- संकर

छन्द:– वंशस्थ छन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

नृपेऽनुरूपे निजरूपसंपदां
दिदेश तस्मिन्बहुशः श्रुतिं गते ।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना
मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः ॥33॥

अन्वयः- सा भीमनरेन्द्रनन्दना निजरूपसम्पदाम् अनुरूपे तस्मिन् नृपे बहुशः श्रुतिंगते विशिष्य मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः दिदेश ॥33॥

व्याख्या:- सा = पूर्वेक्त, भीमनरेन्द्रनन्दना = भीमभूपतनया, दमयन्तीत्यर्थः, निजरूपसम्पदां = स्वसौन्दर्यसम्पत्तीनाम्, अनुरूपे = योग्ये, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, नृपे = राजनि, नल इत्यर्थः। बहुशः = अनेकवारं, श्रुतिं = श्रवणगोचरं, गते = प्राप्ते सति। विशिष्य = अतिशयेन, मनोभवाज्ञैकवशंवदं = कामदेवादेशैंकाधीनं, मनः = चित्तं, दिदेश = अर्पितवती, नलं प्रति चित्तं निदधाविति भावः ।

अनुवाद:- दमयन्ती ने अपनी रूपसम्पत्तियों के योग्य नल के बारम्बार कर्ण गोचर होने पर विशेषतया कामदेव की आज्ञा के एक मात्र अधीन अपने मन को उनमें लगाया ।

टिप्पणी:- भीमनरेन्द्रनन्दना = नन्दयतीति नन्दना, भीमचाऽसौ नरेन्द्रः (क0धा0)। भीमनरेन्द्रस्य नन्दना (ष0त0)। निजरूपसम्पदां = रूपं च सम्पदच (द्वन्द्वः)। निजाच ता रूपसम्पदः तासाम् (क0धा0)। अनुरूपे

= रूपस्य योग्यम् अनुरूपम् अव्ययं0। नृपे = नृन पातीत् नृपः, तस्मिन्, नृ+पा+कः (उपपद0)। बहुशः = बहून् वारान्, मनोभवाज्ञैकवशंवदं= मनोभवस्य आज्ञा (ष0त0)। वशं वदतीत वशंवदं, (उपपद0)। एकं च तद् वशंवदं (क0धा0)। मनोभवाज्ञाया एकवशंवदं, तत् (ष0त0)।

अलंकार:- संकर

छन्द:– वंशस्थ छन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.13 दमयन्ती को नल विषयक श्रवणानुराग का वर्णन—

उपासनामेत्य पितुः स्म रज्यते
दिने दिने सावसरेषु बन्दिनाम् ।
पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनलं
विनिद्ररोमाजनि शृण्वती नलम् ॥34॥

अन्वयः- सा दिने वन्दिनाम् अवसरेषु पितः उपासनाम् एत्य रज्यते स्म। तेषु भूपतीन् प्रति पठत्सु नलं श्रृण्वती अलं विनिद्ररोमा अजनि।। 34।।

व्याख्या:- सा = दयन्ती, दिने दिने = प्रतिदिनम्, वन्दिनां = स्तुतिपाठकानाम्, अवसरेषु = प्रसड़ेषु, स्तुतिपाठस्येति शेषः। पितः = जनकस्य, भीमभूपीलस्येति भावः, उपासनां = सेवाम्, एत्य = प्राप्य, रज्यते स्म = अनुरक्ता बभूव। तेषु = बन्दिषु, भूपतीन् = राज्ञः, प्रति पठत्सु = वदत्सु, स्तुतिकर्मत्वेनेति शेषः। नलं = नैषधं, श्रृण्वती = आकर्णयन्ती सती, अलम् = अत्यर्थ, विनिद्रिरोमा = रोमाच्श्रयुक्ता, अजनि = जाता,

अनुवादः- दमयन्ती प्रतिदिन स्तुतिपाठकों के स्तुतिपाठ के अवसरों में पिता की सेवा के लिए उपस्थित होकर नलके प्रति अनुरक्त होती थीं; जब वे राजाओं का स्तुतिपाठ करते थे उस समय नलके गुणोंको सनने पर दमयन्ती अतिशय रोमांच्युक्त हो जाती थी।।34।।

टिप्पणी:- भूपतीन्=भुतः पतयः, तान (ष0त0)। पठत्सु=पठन्तीति पठन्तः तेषु, पठ+लट् (शतृ) +सुप्। श्रृण्वती=श्रु+लट् (शतृ)+ङीप्। अलं=‘‘ विनिद्ररोमा = विगता निद्रा येभयस्ताति विनिद्राणि (बहु0)। विनिद्राणि रोमाणि यस्याः सा (बहु0)। इस पद्य में विनिद्ररोमत्व (रोमाञ्च) रूप सात्त्विक भाव के उदय से भावोदय अलंकार है।

अलंकार:- भावोदय अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

कथा प्रसङ्गेषु मिथः सखीमुखात्
तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते ।
द्रुतं विधूयान्यदभूयतानया
मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया ॥35॥

अन्वयः- तन्व्या अनया मिथः कथा प्रसंगेषु सखीमुखात् नलनामनि तृण अपि श्रुते द्रुतम् अन्यत् विधूय मुदा तदाकर्णनसज्ज्कर्णया अभूयत ।। 35।।

व्याख्या:- तन्व्या = कृशशरीरया, अनया = दमयन्त्या, मिथः = रहसि परस्परं वा, कथाप्रसंगेषु = वार्तालापऽवसरेषु, सखीमुखात् = वयस्याऽऽननात्, नलनामनि= नलनामधेये, नृणे अपि = अर्जुने अपि, श्रुते = आकर्णिते, द्रुतं = शीघ्रम्, अन्यतः = अपरं, कार्य कथान्तरं वा, विधूय = परित्यज्य, मुदा = हर्षेण, तदाकर्णनसज्ज्कर्णया = नलश्रवणतत्परश्रोत्रया, अभूयत् = भूतम्।

अनुवाद:- कृश शरीरवाली दमयन्ती ने परस्पर में वार्तालाप के अवरों में सखी के मुख से ''नल'' नाम वाले तृण (खश-खश) के सुनने पर भी झटपट सब काम छोड़कर हर्ष से नल के श्रवण में कर्णों को तत्पर बनाया।।35।।

टिप्पणी:- तन्व्या= तनु + ङीष्। कथाप्रसंगेषु=कथायाः प्रसंगाः, तेषु (ष0त0)। सखीमुखात्= सख्या मुखं, तस्मात् (ष0त0)। नलनामनि=नलं नाम यस्य तत् नलनाम, नस्मिन् (बहु0) श्रुते =श्रु+क्त+ङि। विधूय =वि+धू+क्त्वा (लय्)। तदाकणनसज्जकर्णया=तस्य आकर्णनम् (ष0त0)। सज्जो कर्णौ यस्याः सा सज्जकर्णा (बहु0)। तदाकर्णने सज्जकर्णा, तया (स0त0)। इस पद्य में औत्सुक्य और हर्ष ये दो व्यभिचारिभाव नलषियक रति भाव के अंग हुए हैं। इस कारण से भावसन्धि अलंकार है।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष नल के प्रति दमयन्ती के अनन्य प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं। आपस में वार्तालाप के अवसरों पर अपनी सखी के मुख से तृण के बारे में भी नल नाम सुनकर कृशागी दमयन्ती तुरन्त ही अन्य बातचीत अथवा कार्य को छोड़कर (मेरी यह सखी मेरे प्रियतम नल की ही चर्चा कर रही है ऐसा समझकर) उस बात को सुनने में ही दत्तचित्त हो जाती थी। यदि कभी वार्तालाप करते हुए दमयन्ती की सखियां प्रसंगवश नल नामक घास का नाम भी ले लेती थी तो दमयंती यह समझ कर कि यह राजा नल के बारे में कुछ कह रही हैं, सब कार्यों को त्याग कर उनकी बातों की ही और अपने कानों को लगा दिया करती थी।

अलंकार:- भावसन्धि अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

2.3.14 नल के प्रति दमयन्तीस का रागातिरेक वर्णन—

> **स्मरात्परासोरनिमेषलोचना-**
> **द्बिभेमि तद्भिन्नमुदाहरेति सा ।**
> **जनेन यूनः स्तुवता तदास्पदे**
> **निदर्शनं नैषधमभ्यषेचयत् ।।36।।**

अन्वयः:- ''परासोः अनिमषलोचनात् स्मारत् बिभेमि तद्भिन्नम् उदाहर इति सा यूनः स्तुवता जनेन तदास्पदे निदर्शनं नैषधम् अभ्यषेचयत्।।36।।

व्याख्या:- पराऽसोः = मृतात् अत एवं अनिमेषलोचनात् = निमेषरहितनेत्रात्, देवाच्चेति गम्यते, स्मरात् = कामत्, बिभेमि = भीता भवामि, अत: तद्भिन्नम् = स्मरभित्रं जनम्, उदाहर = वद, इति = इत्थं, सा = दमयन्ती, यूनः = तरूणान् जनान्, स्तुवता = प्रशंसता, जनेन = सखीजनने, तदास्पदे = स्मरस्थाने, निदर्शनं = दृष्टान्तभूतं, नैषधं = नलम्, अभ्यषेचयत् = अभिषेचितवती, ।

अनुवाद:- ''मरे हुए अत एवं निमषहीन नेत्रों वाले कामदेव से मैं डर जाती हूँ, इसलिए कामदेव से भिन्न पुरूष का उदाहरण दो'' ऐसा कहकर दमयन्ती ने सुन्दर तरूणों की तारीफ करने वाली सखी के द्वारा कामदेव के स्थान में दृष्टान्तभूत नल को स्थापित किया।

टिप्पणी:- पराऽसोः परागता उसवो यस्मात्स पराऽसुः तस्मात् (बहु0)। अनिमेषलोचनात् = अविद्यमानो निमेषौ ययोस्ते अनिमेषे (नव् बहु0)। अनिमेषे लोचने यस्य, तस्मात् (बहु0)। तद्भिन्नम् = तस्मान् भिन्नः तम् (ष0त0)। उदाहरण=उद+आङ्-उपसर्गपूर्वक ''हृञ् हरणे'' धातु से लोट्+सिप्। स्तुवता=स्तौति इति स्तुवन् तेन ''ष्टुञ् स्तुतौ'' इस धातु से लट्के स्थान में शतृ+टा। तदास्पदे = तस्य आस्पदं, तस्मिन्(ष0त0)। निदर्शनं= नि+दृश्।त्ल्युट्। नैषधं = निषधानामयं नैषधः, ।

अलंकार:- अतिश्योक्ति अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्दं । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान्
मिषेण दूतद्विजबन्दिचारणाः ।
निपीय तत्कीर्तिकथामथानया
चिराय तस्थे विमनायमानया ॥37॥

अन्वयः- अनया निषधागता दूतद्विजवन्दिचारणाः भिषेण नलस्य गुणान् पृष्टाः अथ तत्कीर्तिकथां निपीय चिराय विमनायमानया तस्थे।

व्याख्याः- अनया = दमयन्त्या, निषधागता = निषधेभ्यः आयाताः, दूतद्विजबन्दिचारणाः = सन्देशहरब्राह्मणस्तुतिपाठक नटाः, मिषेण = व्याजेन, नलस्य = नैषध्यस्य, गुणान् = सौन्दर्यशौर्यादीन्, पृष्टाः = अनुयुक्ताः, अथ = अनन्तरं, तत्कीर्तिकथां = नलयशोवर्णनं, निपीय = पानं कृत्वा, प्रणयाऽतिशयेन श्रुत्वेति भावः। चिराय = बहुकालपर्यन्तं, विमनायमरनया = अन्तर्मनायमानया सत्या, तस्थे = स्थितम्।

अनुवादः- दमयन्ती ने निषध देश से आये हुए दूत ब्राह्मण, स्तुतिपाठक और नटों से किसी बहाने से नल के गुणों को पूछा, तब नल की कीर्ति-कथा का पान कर वे बहुत समय तक अनमनी-सी हो जाती थीं।।

टिप्पणीः- अनया= अनुक्त कर्ता में तृतीया। निषधागता= निषधेम्य आगताः (प0त0)। दूतद्विजबन्दिचारणाः = दूताश्च द्विजाश्च बन्दिनश्चचारणाश्च (द्वद्वः)। पृष्टाः=प्रच्छ+क्तः। कर्म में क्त प्रत्यय। तत्कीर्तिकथां = तस्य कीर्तिः (ष0त0), तस्याः कंथा, ताम् (ष0त0)। निपीय = नि+पा+क्त्वा (लय्)। विमनायमानया = विगतं मनो यस्याः सा (बहु0) । इस पद्य में चिन्ता नामक व्यभिचारि भाव का उदय होने से भावोदय अलंकार है।

अलंकारः- भावोदय अलंकार

छन्दः– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

प्रीयं प्रियां च त्रिजगज्जयिश्रियौ
लिखाधिलीलागृहभित्ति कावपि ।
इति स्म सा कारुवरेण लेखितं
नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते ॥38॥

अन्वयः- ''अधिलीलागृहभित्ति को अपि त्रिजगज्जयिश्रियौ प्रियं प्रियां च लिख'' इति सा कारूतरेण लेखितं नलस्य स्वस्य च सख्यम् ईक्षते स्म।

व्याख्याः- अधिलीलागृहभित्त=विलासभवनकुडये, कौ अति=कौ चित्, अनिर्दिष्टनामधेयौ, त्रिजगज्जयिश्रियौ=लोकत्रयजियिशोभी, प्रियं=नायकं, प्रियां=नायिकां च, लिख=चित्रीकुरू, इति=इत्थम् आदिश्येति शैषः। सा=दमयन्ती, कारूतरेण= कुशलचित्रकरेण, लेखितं =चित्रितं, नलस्य=नैषधस्य स्वस्य च = आत्मनश्च, सख्यं = सखित्वं, चित्ररूपे सहस्थितिमिति भावः। ईक्षते स्म= अद्राक्षीत्।

अनुवादः- ''विलास भवन की दीवार पर तीन लोकों को जीतने वाली शोभा वाले किन्हीं नायिका और नायक को लिखो'' इस प्रकार आज्ञा देकर दमयन्ती कुशल चित्रकार से लिखे गये चित्र में नल और अपनी सहिस्थिति को देखती थीं।

टिप्पणीः- अधिलीलागृहभित्ति=लीलाया गृहं (ष0त0), तस्य भित्तिः (ष0त0) त्रिगज्जयिश्रियौ=त्रयाणं जगतां समाहारः त्रिजगत्, ''तद्धितार्थोत्तरपरदसमाहारे च'' इस सूत्र से समास, उसकी ''संख्यापूर्वो द्विगुः इस सूत्र से द्विगुसंज्ञा। त्रिजगत् जयतीति तच्छीला त्रिजगज्ज्यिनी, त्रिजगत्-उपपदपूर्वक ''जि जये'' धातु में ''जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च'' इस सूत्र से इति प्रत्यय। त्रिजगज्जयिनी श्रीर्ययोस्तौ, तौ

(बहु0)। प्रियं = प्रीणातीति प्रियः, कारूतरेण= कुर्वन्तीति कारवः, कृ + उण्। अतिशयेन कारूः कारूतरः (तरप् प्रत्यय) तेन, लेखितं, लिख+णिच्+क्तः। ईक्षते स्म= ईक्ष +लट्+त।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष द्वारा चित्र एवं स्वप्न आदि में दर्शन जन्य दमयन्ती के नल के प्रति अनुराग का वर्णन किया गया है। वह दमयन्ती लोकत्रयविजयिनी सुंदरता वाले किसी प्रिय तथ प्रिया अर्थात् स्त्री पुरुष को विलासगृह की दीवाल पर चित्रित करो ऐसा कहने पर चित्रकार द्वारा चित्र में बनाए गए राजा नल की तथा अपने रूप साम्य को देखा करती थी। अपने प्रिय के चित्र के दर्शन द्वारा उत्कंठा दूर करने की इच्छा से दमयन्ती चित्रकार से लीलागृह की दीवाल पर संसार में सबसे अधिक सुंदर युवक व युवती का चित्र बनाने को कहती है और चित्रकार नल दमयन्ती का चित्र बना देता है। क्योंकि यह दोनों ही संसार में सर्वाधिक सुंदर थे इस चित्र को देखकर अपना मनोरंजन कर लेती थी।

छन्दः– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं
निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्
करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम्॥39॥

अन्वयः- स्वपती सा मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं क्व निशि न पश्यति स्म? सुप्तिः अदृष्टवैभवात् अदृष्टम् अपि अर्थ जनदर्शनाऽतिथि करोति॥39॥

व्याख्या:- स्वपती = निद्राती, सा = दमयन्ती, मनोरथेन = अभिलाषेण, स्वपतीकृतम् = निजनाथीकृतं, नलं = नैषधं, क्व = कुत्र, निशि = रात्रौ, न पश्यति स्म = नो दृष्टवती, सुप्तिः = स्पप्नः, अदृष्टवैभवात् = धर्माऽधर्मप्रभावात् अदृष्टम् अपि = अविलोकितम् अपि, अर्थ = पदार्थं, जनदर्शनाऽतिथिं = लोकविलोकनगोचरं, करोति = विदधाति, स्वप्नरूपेण दर्शयतीति भावः।

अनुवाद:- सोती हुई वे (दमयन्ती) अभिलाष से अपने पति बनाये गये नल की किस राम में नहीं देखती थीं। स्वप्न धर्म और अधर्म के प्रभाव से नहीं देखे गये पदार्थ को भी जनों का दर्शनगोचर बनाता है।

टिप्पणी:- स्वपतीकृतं = स्वस्य पतिः (ष0त0)। स्वपति+च्वि+कृ+क्तः। पश्यति स्म = दृश (पश्य) +लट्+तिप्, अदृष्टवैभवात् = न दृष्टम् अदृष्टम् (नञ0) धर्म और अधर्म। अदृष्टस्य वैभवं, तस्मात् (ष0त0)। अदृष्टं =न दृष्टः, तम् (नञ0)। जनदर्शनाऽतिथि=जनानां दर्शनम् (ष0त0), तस्य अतिथिः, तम् (ष0त0)। करोति=कृ+लट्+तिप्।

अलंकार:- अर्थान्तरन्यास अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया
हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात्।
अदर्शि संगोप्य कदाप्यवीक्षितो
रहस्यमस्याः स महन्महीपतिः॥40॥

अन्वयः- निद्रया निमीलितात् अक्षियुगात् बाह्येन्द्रियमौनभुद्रितात् हृदः अपि संयोप्य कदाऽपि अवीक्षितः अस्या महत् रहस्यं स महीपतिः अदर्शि॥40॥

व्याख्या:- निद्रया = स्वापेन, निमीलितात् = मुद्रितात्, अक्षियुगात् = नेत्र-युगलात्, बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् = बहिरिन्द्रियाऽव्यापारनिमीलितात्, हृदः अपि = मानसः अपि, संगोप्य = सम्यग् गोपयित्वा, कदाऽपि = कस्मिन्नपि काले, अवीक्षितः = अदृष्टः, अस्याः = दमयन्त्याः, महत् = महत्वपूर्ण, रहस्यं = गोपनीय वस्तु, सः = पूर्वोक्तः, महीपतिः = राजा नल इत्यर्थः। अदर्शि = दर्शितः।

अनुवाद:- नींद से मुंदे गये दो नेत्र से बाह्य इन्द्रिय के व्यापार भाव से निष्क्रिय अन्तःकरण (मन) से भी छिपाकर कभी भी नहीं देखे गये इन (दमयन्ती) के अत्यन्त गोपनीय महाराज नल को निद्राने दमयन्ती को दिखाया।

टिप्पणी:- निमीलितात् = नि+मील+क्तः (कर्म में)। अक्षियुगात् = अक्ष्णीः युगं, तस्मात् (ष0त0)। बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् = बहिर्भवाति बाह्यानि, बहिस् +यञ् प्रत्यय और 'टि' (इस्) का लोप हुआ है। बाह्यानि च तानि इन्द्रियाणि (क0 धा0)। मुनेर्भावो मौनम्, 'मुनि' + अण् प्रत्यय। बाह्येन्द्रियाणां मौनम् (ष0त0), तेन मुद्रितं, तस्मात् (तृ0स0)। अवीक्षितः = न वीक्षितः (नञ0)। महीपतिः = मह्याः पतिः (ष0त0)। अदर्शि = दृश्+णिच्+लुङ् ।।40।।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष यह अभिव्यक्त करते हैं कि जैसे कोई दासी चुपके से नायिका को किसी नायक के संकेत द्वारा दिखा दिया करती है उसी प्रकार से निद्रा में दमयंती को राजा नल का दर्शन कराया— निद्रा ने बंद हुये दोनों नेत्रों से तथा वाह्य कर्ण आदि इंद्रियों के अपने अपने विषय ग्रहण करने में मौन हो जाने से स्तब्ध अर्थात् शयन अवस्था में विषयों को ग्रहण न करते हुए हृदय से भी छुपाकर कभी पहले न देखे हुये अतएव रहस्य रूप उस राजा नल को इस दमयंती के लिए दिखला दिया। जैसे कोई चतुर दूती नायिका को अन्य लोगों से छुपा कर अपने प्रियतम नायक को दिखला दिया करती है उसी प्रकार निद्रा ने भी नायिका दमयंती द्वारा जिनका दर्शन पहले कभी नहीं किया जा सका था, ऐसी नायक राजा नल को नायिका दमयन्ती को दिखाला दिया। कहने का तात्पर्य है कि दमयंती ने राजा नल को स्वप्न में देखा किंतु उसके दोनों नेत्रों तथा बाह्य इंद्रियों की क्रिया से रहित हृदय को भी इसका पता नहीं लग सका। जाग्रत् अवस्था में किसी वस्तु अथवा पदार्थ अथवा व्यक्ति का चाक्षुष ज्ञान मन के नेत्रेन्द्रिय के साथ तथा नेत्रेन्द्रिय का उस वस्तु के साथ संबंध होने पर ही संभव है किंतु स्व प्ना वस्था में होने वाला ज्ञान केवल मानस ही है क्योंकि इस अवस्था में बाह्य इन्द्रियां व्यापार शून्यप रहा करती हैं। इस कारण यहां यह कहा गया है कि निद्रा ने, नेत्रों तथा शेष बाह्य इंद्रियों के मौन से मुद्रित से छुपाकर राजा नल का दर्शन दमयंती को कराया।

अलंकार:- अर्थान्तरन्यास अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

बोध प्रश्न:-

1. बहुविकल्पीकय प्रश्न:

1. नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग में कितने पद्य हैं ?

(क) 144 (ख) 142

(ग) 143 (घ) 145

2. प्रथम श्लोक में किस छन्द का प्रयोग किया गया है ?

(क) वंशस्थछन्द (ख) शार्दूलविक्रीडितछन्द

(ग) वियोगिनी (घ) आर्या

3. निपीय में कौन सा प्रत्यय है ?

(क) क्तवा (ख) णिनी

(ग) क्त (घ) डीप्

4. क्षितिरक्षिणः पद का प्रयोग किया गया है ?

(क) राजा नल के लिए (ख) धरानरेश के लिए

(ग) कथानायक के लिए (घ) उक्ति सभी के लिए

5. वंशस्थछन्द का लक्षण है ?

(क) जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ

(ख) विषमे ससजा गुरू: समे, सभरा लोथ गुरूर्वियोगिनी

(ग) उक्ता वसन्त:तिलका तभजा जगौ ग:

(घ) इनमें से कोई नही

2.रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:-

(क) निपीय यस्य .... कथां।

(ख) ....वंशस्थमुदीरितं जरौ।

(ग) चतु: संख्य कै:.. हैं।

(घ) ....नीराजनया स राजघः।

(ड्).................. जिह्वा के अग्रभाग में नर्तकी के समान विद्या निवास करती है।

3- निम्नलिखित वाक्यों में से सही तथा गलत का चयन कीजिए :-

(क) महोज्ज्वल:शब्द में द्वन्द्व समास है। ( )

(ख) रसनाग्रनर्तकी शब्द में ष0 त0 समास है। ( )

(ग) नैषधंविद्वदौषधम् यह जनश्रुति नैषध महाकाव्यव के लिए प्रसिद्ध है। ( )

(घ) राजा भीम की पुत्री का नाम दमयन्ती है। ( )

(ड) राजा नल विदर्भ देश के राजा है। ( )

2.4 सारांश:-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चूके है कि महाकवि श्री हर्ष ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य में आपने कवि कौशल द्वारा राजा नल के यशोवर्णन उनके प्रताप उनके चौदह विद्याओं के ज्ञाता होने की बात, उनके शासन काल में पूर्ण धार्मिकता का वर्णन, राजानल की दिग्विजय यात्रा में सेना के चलने से उठी हुई धूल का वर्णन, दिग्विजय के प्रसंग में राजानल के द्वारा शत्रुनगरों को जलाने का वर्णन, राजा नल के यश और तेज वर्णन के साथ ही उनकी दान वीरता का वर्णन, उनकी युवावस्था का वर्णन, राजानल के चरण व हाथ की शोभा की रूचीरताके साथ ही उनके मुख लावण्य को देख न केवल मानवी स्त्रियों का उनकी और आकृष्ट होने लगी अपितु देवाताओं और नागों की स्त्रियॅा भी उनकी और आकृष्ट् हुई, और राजा के सौन्दर्य की प्रंशसा करने से न रूक सकी, और सभी सुन्दर स्त्रियों ने नल की पति रूप में कामना की ऐसे राजानल के सौन्दर्य को आपने जाना, साथ ही राजानल के प्रति दमयन्ती के अनुराग को आपने देखा, किस रूप में दमयन्ती नल के प्रति श्रवणानुराग एवं रागातिरेक करती है।

साथ ही आपको प्राकृतिक दृश्यों के अनुरूप राजा नल के कौशल का अवलोकन करने का अवसर मिला तथा कवि की प्रस्तुति, वर्णन कौशल का ज्ञान प्राप्त हुआ होगा।

2.5 शब्दावली:-

शब्द	=	अर्थ
क्षितिरक्षिणः	=	पृथ्वीपालक (कथानायक) राजा नल
कलुष	=	दोषयुक्त
चतुर्दशसु	=	चौदह विद्या
त्रयी	=	तीनों वेदों
चतुर्भि: पदै:	=	चार चरणों (तपस्या, ज्ञान, यज्ञ, और दान)

ईतियॉ	=	आपत्तियॉ
अतिवृष्टि	=	वर्षा का आवश्यकता से कहीं अधिक हो जाना
अनावृष्टि	=	वर्षा का ना होना अथवा सूखा पड़ जाना
शलभ	=	पतंगों टिड्डियों आदि का बहुत अधिक संख्या में आगमन
अमित्रजित्	=	मित्रों को जीतने वाले से भिन्न
मित्रजित्	=	मित्रों को जीतने वाले
चारदृग	=	गुप्तचरों के द्वारा राज्य के संपूर्ण कार्यकलाप को देख लेने वाले
विचारदृग	=	विरोध के परिहार पक्ष में विचार पूर्वक कार्य करने वाले
शुभ्र	=	स्वच्छ
कवि	=	काव्याकर्ता
चराऽचर	=	जगत्

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर:-

1.

1. (ग) 143
2. (क) वंशस्थछन्द
3. (क) क्तवा
4. (घ) उक्त सभी के लिए
5. (क) जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ

2.

(क) क्षितिरक्षिणः

(ख) जतौ तु

(ग) तपस्या, ज्ञान, यज्ञ, और दान

(घ) रराज

(ङ) नल की

3.

(क) गलत

(ख) सही

(ग) सही

(घ) सही

(ङ) गलत

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय,शारदा निकेतन,वाराणसी।
2.संस्कृत साहित्य का आधुनिक इतिहास- डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी,विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी।
3. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
6. नैषधीयचरितम् – महाकवि श्री हर्ष

7. वामन शिवराम आप्टे – संस्कृत हिन्दी कोश

2.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें :-

1. साहित्यदर्पण - आचार्य विश्वनाथ
2. दशरूपक - आचार्य धनंजय
3. नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष
4. नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वेर प्रकाशन
5. काव्ययप्रकाश, आचार्य मम्मट
6. छन्दयलंकारमंजरी, डा0 वाकेलाल मिश्र

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. नल के सौन्दर्य का वर्णन कीजिए।
2. नैषधीयचरितम् के अनुसार राजा नल की प्रसिद्धि का वर्णन कीजिए।
3. चौदह विद्याओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. किन्ही चार श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. राजा नल की विद्वता तथा पुण्यतशीलता का वर्णन कीजिए।
6. राजा नल के प्रति दमयन्ति के अनुराग (प्रेम) का वर्णन कीजिए।

खण्ड– द्वितीय, इकाई – 3
नैषधीयचरितम् श्लोक संख्या 41 से 80 तक
(भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

3.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सत्रार्द्ध द्वितीय प्रश्न पत्र के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 40 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या से परिचित हुये।

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 41 से 80 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या को विस्तार से अध्ययन करेंगे साथ ही दमयन्ती के सौन्दर्य को, राजा नल के अश्व वैशिष्टय, नल की यात्रा वर्णन, उनके यश और प्रताप के साथ ही केतकी की निन्दा आदि वर्णनों को आप प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जानेंगे।

नैषध संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के रूप मे जाना जाता है। महाकवि श्री हर्ष ने अपने इस महाकाव्य में राजा नल के व्यक्तित्व को बड़े ही रोचक ढंग से उपस्थापित किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि किस प्रकार कवि ने अपने काव्यकौशल से उक्त स्थिति का वर्णन किया है।

3. 2 उद्देश्य:-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- दमयन्ती के सौन्दर्य को रेखांकित कर सकेंगे।
- राजा नल के अश्व वैशिष्टय को जान सकेंगे।
- नल की यात्रा विषयक घटनाओं को दृष्टिपात कर सकेंगे।
- नल के यश और प्रताप को जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- इस इकाई में किस छन्दों का प्रयोग हुआ है ? इससे परिचित हो सकेंगे।
- केतकी की निन्दा विषयक घटनाओं को दृष्टिपात कर सकेंगे।
- इस इकाई में कौन-कौन से अलंकारों का प्रयोग हुआ है ?

3.3- श्लोक संख्या 41 से 80 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

3.3.1 दमयन्ती की काम पीड़ीता का वर्णन—

अहो ! अहोभिर्महिमा हिमागमेऽ–
प्यभिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम् ।
तपर्तुपूर्तावपि मेदसां भरा
विभावरीभिर्बिभरांबभूविरे ॥41॥

अन्वयः- अहो ! स्मराऽर्दितां तां प्रति हिमागमे अपि अहोभिः महिमा अतिप्रपेदे, तपर्तुपूर्तों अपि विभावरीभिः मेदसां भरा बिभराम्बभूविरे।। 41।।

व्याख्या:- अहो = आश्चर्यम्, स्मराऽर्दितां = कामपीडितां, तां प्रति = दमयन्तीं प्रति, हिमागमे अपि। हेमन्ते अपि= अहोभिः = दिनैः, महिमा = महत्त्वं, दैघ्र्यमिति भावः। अतिप्रपेदे = अतिशयेन प्राप्तः, तपर्तुपूर्ता अपि = ग्रीष्मर्तुपूरणे अपि, विभावरीभिः = रात्रिभिः, मेदसां = वसानां, भराः = अतिशयाः, दैघ्र्यरूपा इति भावः। बिभराम्बभ्भूविरे = धृताः। हेमन्ते दिनानि ह्रस्वा भवन्ति परं नलवियोगपीडिताया दमयन्त्याः कृते हेमन्ते दिनानि दीर्घाणि, ग्रीष्मतौ रात्रयो दीर्घरूपाः प्रतीयन्ते स्मेति भावः।

अनुवाद:- आश्चर्य है! कामदेव से पीडित दमयन्ती के लिए हेमन्त ऋतु में भी दिन लम्बे से प्रतीत होते थे, ग्रीष्म ऋतु में भी रात्रियों से दीर्घता का धारण किया जाता था ।। 41।।

टिप्पणी:- स्मारार्दितां = स्मरेण अर्दिता, ताम् (तृ0त0)। हिमाऽऽग में = हिमस्य आगमः, तस्मिन् (ष0त0)। महिमा = महतः भावः, महत् + इमनिच् प्रत्यय, यह पुलिंङ शब्द है। अतिप्रपेदे = अति+प्र+पद+लिट्+त (कर्म में)। तपर्तुपूर्तौं = तपश्चाऽसौ ऋतुः (क0धा0), इस पद्य के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में दो विरोधाभास है, निरपेक्षता से उनकी स्थिति होने से संसृष्टि अलंकार है। इस पद्य से दमयन्ती की निरन्तर चिन्ता और रात में जागरण प्रतीत होता है।।41।।

अलंकार:- संसृष्टि।

छन्द:- वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्त्रजः
श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम्।
कदाचिदस्या युवधैर्यलोपिनं
नलोऽपि लोकादशृणोद्गुणोत्करम्॥42॥

अन्वयः- नलः अपि कदाचित् लोकात् स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्त्रजः अन्तर्घटनागुणश्रियं श्रयन्तं युवधैर्यलोपिनम् अस्या गुणोत्करम् अश्रृणोत।।42।।

व्याख्या:- नलः अपि = नैषधः अपि, कदाचित् = जातुचित्, लोकात् = जनात् स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्त्रजः = आत्मसौन्दर्यशः समूहमुक्तामालायाः, अन्तर्घटनागुणश्रियम = अभ्यन्तरगुम्फनसूत्रशांभां, श्रयन्तम् = आश्रयन्तं, युवधैर्यलोपिनं = तरूणधीरत्वनाशकम्, अस्या = दमयन्त्याः, गुणोत्करं = सौन्दर्यसौशील्यादिगुणसमूहम्, अश्रृणोत् = श्रुतवान्।

अनुवाद:- नल ने भी किसी समय लोगों से अपने सौन्दर्य के यशः समूहरूप हार के भीतर गुम्फन के लिए सूत्र की शोभा करने वाले युवकों के धैर्य को हटाने वाले दमयन्ती के गुण गण को सुना।

टिप्पणी:- स्व कान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्त्रजः= स्वस्य कान्तिः (ष0त0) कीर्तीनां व्रजः (ष0त0)। स्वकान्तेः कीर्तिव्रजः (ष0त0)। मौक्तिकानां स्त्रक् (ष0त0)। स्वकान्तिकीर्तिव्रज एवं मौक्तिकस्त्र (रूपक0), तस्याः। अन्तर्घटनागुण श्रियम् = अन्तः घटना (सुप्सुपा0)। अन्तर्घटनायाः गुणः (ष0त0), तस्य श्रीः, ताम् (ष0त0)। श्रयन्तं = श्रयतीति श्रयन्, तम् श्रि +लट्+शतृ+अम्। युवधैर्यलोपिनं = यूनां धैयम् (ष0त0)। युवधैर्य लुम्पतीति युवधैर्यलोपी, तम्। युवधैर्य+लुप+णिनिः (उपपद0)। गुणोत्करं = गुणानाम् उत्करः, तम् (ष0त0)। अश्रृणोत् = ''श्रु श्रवणे'' धातुसे लङ्+तिप्।

अलंकार:- रूपक अलंकार

छन्द:– वंशस्थरछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

तमेव लब्ध्वावसरं ततः स्मरः
शरीरशोभाजयजातमत्सरः।
अमोघशक्त्या निजयेन मूर्तया
तया विनिर्जेतुमियेष नैषधम्॥43॥

अन्वयः- ततः शरीरशोभाजयातमत्सरः स्मरः तम् एव अवसरं लब्ध्वा मूर्तया निजया अमोघशक्त्या इव तया नैषधं विनिर्जेतुम् इयेष।।43।।

व्याख्या:- अत्र नलस्य दमयन्त्यां रागोदयं वर्णयति, ततः = अनन्तरं, नलकर्तृकदमयन्तीगुणश्रवणाऽनन्तरमिति भावः। शरीरशोभाजयजातमत्सरः = स्वदेह सौन्दर्यविजयोत्पत्रविद्वेषः, स्मरः = कामः, तम् एव = नलकृतदमयन्तीगुणश्रवणात्मकम् एव, अवसरं = प्रपङ्ं, लब्ध्वा = प्राप्य, मूर्तया = मूर्तिमत्या, निजया = स्वकीयया अमोघशक्त्या इव = अकुण्डसामथ्र्येन

इव, तया = दमयन्त्या, नैषधं = नलं, विनिजतुं = पराभवितुम्, इयेष = ऐच्छत्, शत्रवो रन्ध्राऽन्वेषणपरायणा भवन्तीति भावः।

अनुवाद:- तब अपने शरीर के सौन्दर्य को जीतने से विद्वेष से युक्त कामदेव ने उसी अवसर को पाकर मूर्तिमती अपनी सफल शक्ति के समान दमयन्ती के द्वारा ही नल को जीतने की इच्छा की।

टिप्पणी:- शरीरशोभाजयजातमत्सरः = शरीरस्य शोभा (ष0 त0)। तस्या जयः (ष0त0)। जातः मत्सरः यस्य सः। (बहु0)। शरीरशोभाजयेन जातमत्सरः (हेतु में तृतीया और तृ0स0)। लब्ध्वा = लभ्+क्त्वा। अमोघ शक्त्या = अमोघा चाऽसौ शक्तिः तया (क0धा0)। नैषधं = निषध +अण्। विनिर्जेतुम् = वि +निर् + जि + तुमुन्।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष दमयन्ती के प्रति नल के अनुराग का वर्णन करते हैं। कवि कल्पना करता है कि राजा नल ने शारीरिक सौंदर्य में कामदेव को पराजित कर दिया था। अत: कामदेव उसका बदला लेना चाहता था। इस दृष्टि से कामदेव ने अवसर पाकर अपनी शक्तिरूपिणी दमयन्ती के द्वारा राजा नल पर विजय प्राप्त करने की इच्छा कि— जब राजा नल दमयन्ती के सौंदर्य एवं तत्संबंधी गुणों का श्रवण कर लिया तो उनके हृदय के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया राजा नल की इस प्रकार की स्थिति को जानने के अनंतर राजा नल की शरीर की शोभा द्वारा कामदेव के शरीर की शोभा को जीत लिए जाने के कारण उत्पन्न हुई ईर्ष्या से युक्त कामदेव ने उसी अवसर को पाकर शरीरधारणी अपनी अमोघ (कभी विफल न होने वाली) शक्ति के सदृश उस दमयन्ती के द्वारा नल को जीतने की अभिलाषा की। कामदेव को अपने सौन्दर्यपर गर्व था। किंतु समस्त ब्रह्मांड में सर्वाधिक सुंदरशाली राजा नल को ही माना गया है। अतः इस प्रकार कामदेव से कहीं सौन्दर्यशाली हुए। यह कहा जाना उचित ही था कि राजा नल ने सौन्द र्य में कामदेव को परास्तः कर दिया था। कामदेव ने जब देखा कि मैं राजा नल से पराजित हो रहा हूं तो वह राजा नल का शत्रु बन गया और ऐसा अवसर ढूंढने लगा कि जिससे मैं राजा नल को नीचा दिखा सकूं।

शत्रु छिद्रान्वेजषी हुआ करता है और वह अवसर प्राप्त हो जाने पर बदला लेने की इच्छा रखा करता है। जब राजा नल के हृदय में दमयंती के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया तो कामदेव ने सोचा कि मेरे लिए यह अवसर अच्छा है अथवा नल पर विजय प्राप्त करने के लिए इसी अवसर को उचित समझकर कामदेव ने दमयन्ती के रूप में विद्यमान अपनी अमोघ शक्ति का प्रयोग राजा नल पर करने की इच्छा की।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.2 दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन—

अकारि तेन श्रवणातिथिर्गुणः
क्षमाभुजा भीमनृपात्मजालयः।
तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा
स्मरेण च स्वात्मशरासनाश्रयः ॥44॥

अन्वयः:- तेन क्षमाभुजा भीमनुपात्मजाश्रयः गुणः श्रवणाऽतिथिः अकारि, तदुच्चधैर्यव्ययसंहितोषुणा स्मरेण च स्वात्मशरासनाश्रयः गुणः श्रवणाऽतिथिः अकारि॥44॥

व्याख्या:- तेन = पूर्वोक्तेन, क्षमाभुजा = राज्ञा, नलेनेत्यर्थः। भीमनृपात्मजाऽऽश्रयः = दमयन्तीनिष्ठः, गुण = सौन्दर्यवैदुष्याऽऽदिः, श्रवणाऽतिथि = श्रोत्रेन्द्रियागन्तुकः, कर्णाविषय इति भावः। अकारि = कृतः, नलेन दमयन्त्या गुणगणः श्रुतः इति भावः। ततः तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = नलोत्रतधीरताविनाशार्थ

संयोजितबाणेन, स्मरेण च = कामदेवेन च, स्वात्मशरासनाश्रयः = निजद्दढधनुर्निष्ठः गुणः = मौर्वी, श्रवणाऽतिथिः = श्रोत्रेन्द्रियागन्तुकः, अकारि = कृतः।

अनुवाद:- महाराज नल ने दमयन्ती में रहने वाले सौन्दर्य और वैदुष्य आदि गुणों को अपने कानों का अतिथि बनाया अर्थात् दमयन्ती के गुणों को सुना। नल के उन्नत धैर्य का नाश करने के लिए धनु में बाण का सन्धान करने वाले कामदेव ने अपने दृढ़ धनु में चढ़ायी गयी प्रत्यञ्चा को कानों तक खींचा।

टिप्पणी- क्षमाभुजा = क्षमां भुनक्तीति क्षमाभुक्, तेन, क्षमा +भुज् +क्विप्। भीमनृपात्मजाश्रयः = भीमच्श्राऽसौ नृपः (क0धा0), तस्या भीमाश्चाऽसौ नृपः (क0धा0), तस्य आत्मजा (ष0त0)। भीमनृपात्मजा आश्रयः यस्य सः (बहु0)। श्रवणाऽतिथिः = श्रवणयोः अतिथिः (ष0त0)। अकारि = कृ + लुङ् (कर्म में)। तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = उच्चं च तत् धैर्यम् (क0धा0)। उच्चधैर्यस्य व्ययः (ष0त0)। तस्य उच्चधैर्यव्ययः (ष0त0)। संहित इषुः येन सः (बहु0)। तदुच्चधैर्यव्ययाम संहितेषुः, तेन (च0त0)। स्वात्मशरासनाश्रयः = आत्मनः शरासन् (ष0त0)। शोभनम् आत्मशरासनम् ''कुगतिप्रादयः'' इससे गतिमास। स्वात्मशरासनम् आश्रयः यस्य सः (बहु0)। श्रवणातिथिः = श्रवणयोः अतिथिः (ष0त0)। अकारि = कृ + लङ्+त (कर्म में)। इस पद्य में 'अकारि' इस एक क्रिया के साथ नल और स्मर इन दोनों प्रस्तुतों की कर्तृता से सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलड़कार है और ''स्वात्मशरासनाश्रयः'' इस पद में स्व और आत्मन् शब्द के प्रयोग से पहले पुररूक्ति प्रतीत होती है, पीछे से सु-(शोभन) आत्मशरासन ऐसे अर्थ की प्रतीति होने से पुनरूक्तवदाभास अलंकार है।

अलंकार:- पुनरूक्तवदाभास अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अमुष्य धीरस्य जयाय साहसी
तदा खलु ज्यां विशिखैः सनाथयन्।
निमज्जयामास यशांसि संशये
स्मरस्त्रिलोकीविजयार्जितान्ययि ॥45॥

अन्वयः:- साहसी स्मरः धीरस्य अमुष्य जयाय तदा ज्यां विशिखैः सनाथयन् त्रिलोकीविजयाऽर्जितानि अपि= त्रिभुवनजयोपार्जितानि अपि यशांसि संशसे निमज्जयामास खतु ॥45॥

व्याख्या:- साहसी = साहसकरः, स्मर = कामदेवः, धीरस्य = धैर्ययुक्तस्य, अमुष्य = नलस्य, जयाय = विजयाय, तदा= तस्मिन् समये, ज्यां = मौर्वीं, विशिचखैः = बाणैः, सनाथयन् =सनाथां कुर्वन् संयोजयन्नित्यर्थः। त्रिलोकीविजयाऽर्जितानी अपि = त्रिभुवनजयोपार्जितानी अपि, यशांसि = कीर्तीः, संशये = सन्देहे; निमज्जयामास = स्पापयामास, खलु = निश्चयेन त्रिभुवनविजेताऽपि कामः नलविजार्थ प्रवर्तमानः सन्।

अनुवाद:- साहसी कामदेव ने धैर्यशाली नल को जीत ने के लिए उस समय प्रत्यञ्चा में बाणों को चढ़ाकर तीन लोकों को जीतकर उपार्जित अपने यश को संशय में डाल दिया।

टिप्पणी:- सनाथयन् = नाथैः सहिता सनाथा (तुल्ययोग बहु0)। त्रिलोकीविजयाऽर्जितानि = त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, ''तद्धिताऽर्थोत्तरपदमाहारे च'' इससे समास, ''संख्यापूर्वे द्विगुः त्रिलोक्या विजयः (ष0त0)। तेन अर्जितानि, तानि (तृ0त0)। निमज्जयामास = निउपसर्गपूर्वक ''टुमस्जो शुद्धो'' इस धातु से णिच् होरक लिट्+तिप्। कामदेव के उक्त संशय से सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्धका प्रतिपादन होने से अतिश्योक्ति अलड़कार है।

अलंकार:- अतिशयोक्ति अलंकार

छन्द:– वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा
विधेरवन्ध्येच्छतया व्यलासि तत् ।
अभेदि तत्तादृगनङ्गमार्गणै-
र्यदस्य पौष्पैरपि धैयकञ्चुकम् ॥46॥

अन्वयः- दैवयोगात्कामस्य नलविजयोद्यमः सफल इति प्रतिपादयति अननेति। अनेन भैमीं घटयिष्यतः विधेः अवनघ्येच्छतया तत् तथा व्यलासि। यत् पौष्पैः अपि अनङ्गार्गणैः अस्य तादृक् तत् धैर्यकञ्चुकम् अभेदि॥46॥

व्याख्या:- अनेन = नलेन सह, भैमीं = दमयन्तीं, घटयिष्यतः = संयोजयिष्यतः, विधेः = ब्रह्मंणः; अवन्ध्येच्छतया = अमोघाऽभिलाषत्वेन, तत्, तथा = तेन प्रकारेण, व्यलासि = विलसितम्। यत् पौष्पैः अपि = पुष्पमयैः अपि, न तु कठिनैरिति भावः। अनङ्गार्गणैः = अनड्बाणैः न तु अङ्बिाणैः, अस्य = नलस्य, तादृक् = अतिकठोरम्, तत् = प्रसिद्धं, धैर्यकञ्चुकं = धीरत्वकवचम्, अभेदि = भिन्नम्। ।

अनुवाद:- नल के साथ दमयन्ती का संयोग करानेवाले ब्रह्माजी की इच्छा के अमोघ होने से ऐसा हुआ कि कामदेव के वैसे पुष्पमय वाण से भी नलका धर्य रूप कवच भिन्न हो गया॥ 46॥

टिप्पणी:- भैमीं = भीमस्य अपत्यं स्त्री भैमी, ताम्, भीम + अण् + ङी्प + अम् घटयिष्यतः = घट +णिच् +लृट+(शतृ)+ङस्। अवन्ध्येच्छःतया = न वन्ध्या (नञ् तत्पु0), अवन्ध्या इच्छा यस्य सः (बहु0)। अवन्ध्येच्छस्य भावः अवन्ध्येच्छता, ताया (अवन्ध्येच्छ +तल्+टाप्+टा)। व्यलासि = वि+लस+लु ङ् (भाव में)। पौष्पैः = पुष्पाणाम् इमे, तैः (पुष्प+अण्+भिस्)। अनङ्गार्गणैः अविद्यमानानि अङानि यस्य सः अनङ् (नळ् बहु0) अनङस्य मार्गणाः, तैः (ष0त0)। धैर्यकञ्चुकं = धैर्यम् एवं कञ्चुकम्'' मयूरव्यंसकादयश्च'' इस सूत्र से रूपक समास । इस पद्य में पुष्पमय बाणों से कञ्चुक के भेद में विरोध की प्रतीति होती है, विधिकी अवन्ध्य इक्ष्छा से उसका परिहार होने से विरोधाभास अलंकार है। धैर्य में कञ्चुक का आरोप होने से रूपक अलंकार है। इस प्रकार रूपक और विरोधाभास का अंगाऽङ्भिाव होने से संकर अलंकार है।

अलंकार:- संकर अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

किमन्यदद्यापि यदस्त्रतापितः
पितामहो वारिजमाश्रयत्यहो ।
स्मरं तनुच्छायतया तमात्मनः
शशाक शङ्के स न लङ्घितुं नलः ॥47॥

अन्वयः:- अहो! अन्यत् किम्? यदस्त्रतापितः पितामहः अद्यापि वारिजम् आश्रयति। स नलः आत्मना तनुच्छायताया तं स्मरं लङ्घितुं न शशाक (इति) शङ्के॥47॥

व्याख्या:- अहो = आश्चमर्यम्, अन्यत् = अपरं, किं = किम् उच्चते, यदस्त्र तापितः = यस्य (स्मरस्य) आयुघसन्तापितः, पितामहः = ब्रह्म, अद्यापि = इदानीम् अपि, वारिजं = कमलम्, आश्रयति = अवलम्बते, कामसन्तापाऽपनयार्थ कमलासनमधिवसतीति भावः। सः पूर्वोक्तः, नलं, आत्मनः = स्वस्य, तनुच्छायतया = शरीरकान्तिमत्त्वेन अथवा शरीरच्छायत्वेन, तं = पूर्वोक्तं, स्मरं = कामदेवं, लङ्घितुम् = अतिक्रमितुं, न शशाक न समर्थो बभूव इति, शंके = शङ्कं करोमि, स्वसदृशः आत्मच्छाया वा लङिंघतु न शक्यत इति भावः।

अनुवादः- आश्चर्य है। और क्या कहना है ? जिस कामदेव के अस्त्र से तापित ब्रह्मा जी आज भी कमल का आश्रय ले रहे हैं। महाराज नल अपने शरीर की कान्तिके सद्दश होने से वा अपने शरीर की छाया होने से कामदेव को लङ्घन करने के लिए समर्थ नहीं हुए मैं ऐसा समझता हूँ।

टिप्पणीः- यदस्त्रतापितः = यस्य (स्मरम्य) अस्त्राणि (ष0त0), तैः तापितः (तृ0त0)। पितामहः = पितुः पिता, वारिजं = वारिणि जातं तत्, वारि +जन+ड+अम्। आश्रयति = आङ् +श्रिञ+लट्+तिप्। तनुच्छायतया = तनोः इव छाया (कान्ति) यस्य सः (व्यधिकरण बहु0)। लङ्घितुं = लघि +तुमुन्। शशाक = शक +लिट् +तिप्। शङ् के = शकि +लट् +त। इस पद्य में अर्थापत्ति, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति इन तीनों अलंकारों की संसृष्टि है।

विशेषः- पद्य में महाकवि श्रीहर्ष यह अभिव्यक्त करते हैं कि राजा नल दमयन्ती के प्रतीक कामासक्ति हो गए थे आते हुए थे। अतएव कामदेव को जीत नहीं सके और अधिक क्या कहा जाए। ब्रह्मा भी इस कामदेव के बाणों के प्रभावों से संतप्त होकर निरंतर कमल का ही राशि प्राप्त किये हुए हैं और इसी कारण उनको कमलासन भी कहा जाता है। फिर राजा नल आखिर में थे तो सांसारी पुरुष ही, यद्यपि शारीरिक कांति की दृष्टि से कामदेव को नीचा दिखा दिखाला चुके थे, किंतु उनकी हैं दमयन्ती के प्रति अनुरक्ति देखकर कामदेव को अपना नाम बदला लेने का अवसर प्राप्त हो गया था, इस अवस्था में वे काम के बाणों के प्रभाव को अपने से दूर हटा सकने में समर्थ न हो सके तो फिर राजा नल की तो हस्ती ही क्या थी– वे किस भांति उस काम के बाणों के प्रभाव के प्रभाव को उल्लंघन कर सकने में सक्षम हो सकते थे। जिस कामदेव ने अतिशय वृद्ध पितामह (ब्रह्मा) को ऐसा संतप्त कर दिया था कि इतना अधिक समय व्यतीत हो जाने पर भी उन्हें आज तक कमल का आश्रय प्राप्त करना पड़ रहा है फिर वही काम अपने प्रतिद्वंदी राजा नल को संतप्त नहीं करेगा, यह कैसे संभव हो सकता था। राजा नल अत्यधिक सुंदर थे। कामदेव को उनके शरीर की छाया ही माना गया था। अतःनल अपने शरीर की छाया रूप उस कामदेव का उल्लंघन कैसे कर सकते थे क्योंकि संसार में अति प्रबल व्यक्ति भी अपने शरीर की परछाई को कभी भी लाभ नहीं सकता—स्वरशरीर की छाया सभी के लिए अनतिक्रमणीय (अनुल्लंघनीय) ही हुआ करती है।

अलंकारः- संसृष्टि अलंकार

छन्दः– वंशस्थछन्दं । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भितं
नवोपहारेण वयः कृतेन किम् ।
त्रपासरिद्गुर्गमपि प्रतीर्य सा
नलस्य तन्वी हृदयं विवेश यत् ॥48॥

अन्वयः- तन्वी सा त्रपासरिदुर्गम् अपि प्रतीर्य नलस्य हृदयं यत् विवेश तत् वयःकृतेन नवोपहारेण उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भितं किम्? ॥ 48॥

व्याख्याः- तन्वी = कृशाऽङ्गी, सा = दमयन्ती, त्रपासरिदुर्गम् अपि = लज्जा नदीदुर्गमस्थलम् अपि, प्रतीर्य = प्रकर्षेण तीत्र्वा, नलस्य = नैषधस्य, हृदयं = मनः, यत्, विवेश = प्रविष्टवती, तत् = नलहृदयप्रवेशनं, वयःकतेन = यौवनविहितेन, नवोपहारेण = नूतनोपायनरूपेण, उरोभुवा = वक्षः स्थलोत्पन्नेनः, कुम्भयुगेन = कलशयुग्मेन, कुचयुगलरूपेणेति शेषः, जृम्भितं किम् = विलसितं किमु ।

अनुवादः- कृशाऽङगी दमयन्ती ने लज्जारूप नदी दुर्ग को भी पार कर नल के हृदय में जो प्रवेश किया वह यौवन से किये गये उपहाररूप छाती में उत्पन्न दो कुचकलशों ने विलास किया है क्या ? ॥

टिप्पणी:- त्रपासरिद्दुर्गं = त्रपा एव सरित् (रूपक0)। प्रतीर्य = प्र+तृ+क्त्वा (ल्यप्)। उरोभुवा = उरसि भवतीति, तेन, उरस् +भ+क्विप (उपपद0)। कुम्भयुगेन = कुम्भयोः युगं, तेन (ष0त0)। इस पद्य में अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा और रूपक इनकी निरपेक्षतासे स्थिति होने से ससृष्टि अलंकार है।।

अलंकार:- संसृष्टि अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अपह्नुवानस्य जनाय यन्निजा
मधीरतामस्य कृतं मनोभुवा ।
अबोधि तज्जागरदुःखसाक्षिणी
निशा च शय्या च शशाङ्ककोमला ।।49।।

अन्वय:- निजाम् अधीरतां जनाय अपह्नुवानस्य अस्य मनोभुवा यत् कृतं, तत् जागरदुःखसाक्षिणी शशाऽङककोमला निशा शय्या च अबोधि ।।49।।

व्याख्या:- निजां = स्वकीयाम्, अधीरतात् = अधैर्य, चपलतामिति भावः। जनाय = लोकाय, अपह्नुवानस्य = अपलपतः, अस्य = नलस्य, मनोभुवा = काम देवेन, यत् = जागरप्रलापादिकं, कृतं = विहिंत, तत् जागरदुःखसाक्षिणी = अनिद्रापीडायाः साक्षद्दृष्ट्री, शशाऽडंकोमला = चन्द्रमृदुला, शीतलेति भावः। निशा = रात्रिः, शशाङ्कोमला, शय्या च = शयनीयं च, अबोधि = ज्ञातवती।

अनुवाद:- अपनी अधीरता को लोक से छिपाने वाले राजा नल का कामदेव ने जो किया, उसको उनके जागरण के दुःख की साक्षिणी चन्द्र से कोमल (शीतल) रात और चन्द्र के समान कोमल शय्या भी जानती थी।

टिप्पणी:- अधीरता = न धीरता, ताम् (नञ् त0)। मनोभुवा = मनसि भवतीति मनोभूः तेन, मनस् +भू +क्विप् +टा । जागरदुःखसाक्षिणी = जागरणं जागरः, ''जागृ निद्राक्षये'' धातु से घञ् प्रत्यय। जागरे दुःखम् (स0त0)। जागरदुःखस्य साक्षिणी (ष0त0),। शशाऽङ्ककोमला = शशः अंक यस्य सः शशाकं (बहु0)। शशाकेन कोमला (तृ0त0), अबोधि = बुध +लुङ् +त (कर्ता में) । यहाँ तुल्ययोगिता और उपमा अलंकार है।।49।।

छन्द:– वंशस्थ छन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

स्मरोपतप्तोऽपि भृशं न स प्रभु-
र्विदर्भराजं तनयामयाचत ।
त्यजन्त्यसून्शर्म च मानिनोवरं
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ।।50।।

अन्वय:- प्रभुः स भृशं स्मरोपतप्तः अपि विदर्भराजं तनयां न अयाचत। मानिनः असून् शर्म च त्यजन्ति वरम्, तु एकम् अयाचितव्रतं न त्यजन्ति।।50।।

व्याख्या:- प्रभुः = समर्थ, सः = नलः, भृशम् = अत्यर्थ, स्मरोपतप्तः अपि = कामसन्तप्तः अपि, विदर्भराजं = भीमनृपं, तनयां = पुत्रीं, तत्पुत्रीं दमयन्तीमिति भावः, न अचाचत = नो याचितवान्। तथा हि - मानिनः = अभिमानिनः, मनस्विन इत्यर्थः । असून् = प्रणान् शर्म च = सुखं च, त्यजन्ति = जहति, वरं = प्राणसुख त्यागोऽपि मनाक् प्रियः, तु = किन्तु, एकम् = अद्वितीयम्, अयाचितव्रतम् = अयाचनानियंम तु, न त्यजन्ति = नो जहति, मनस्विनां प्राणदित्यागदुःखादपि याचनादुखं दुःसहं भवतीति भावः ।

अनुवाद:- समर्थ महाराज नल ने अतिशय कामपीडित होकर भी विदर्भराज भीम से उनकी पुत्री दमयन्ती को नहीं माँगा। क्योंकि मनस्वी पुरूष प्राणो को और सुख को भी छोड़ देते हैं, यह त्याग भी कुछ उत्कर्ष ही है परन्तु एक अयाचित व्रत को नहीं छोड़ते हैं।।50।।

टिप्पणी:- स्मरोपतप्तः = स्मरेण उपतत्प = (तृ0त0)। विदर्भराजं = विदर्भाणां राज विदर्भराजः, तम् (ष0त0)। अयाचितव्रतं = याचनं याचितम् 'याच्' धातु से ''नपुंस के भावे क्तः'' इससे क्त'' प्रत्यय। न याचितम् (नञ् तत्पु0)। अयाचितं च नद्व्रतम (क0धा0) । त्यन्ति +त्यज् +लठ् +झि। इस पद्य में सामान्य से विशेषका समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार और तुल्ययोगिताका अङ्गाङ्गिभाव होने से संकर अलंकार है।

अलंकार:- संकर अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्दं । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

मृषाविषादाभिनयादयं क्वचि-
ज्जुगोप निःश्वासततिं वियोगजाम् ।
विलेपनस्याधिकचन्द्रभागता
विभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ॥51॥

अन्वयः:- अयं क्वचित् मृषाविषादाऽभिनयात् वियोगजां निःश्वासततिं जुगोप। विलेपनस्य अधिकचन्द्र भागताविभावनात् पाण्डुतां च अपललाप॥51॥

व्याख्या:- अयं = नलः, क्वचित् = कुत्रचित् विषये मृषाविषादाऽभिनयात् = मिथ्या खेद प्रकाशनात् वियोगजां = भैमीविरहात्पन्नां, निःश्वासतति = निःश्वास परम्परां, जुगोप = गोपितवान्, संववारेत्यर्थः। विलेपनस्य = चन्दनादिलेपन द्रव्यस्य, अधिक चन्द्र भागताविभावनात् = अतिरिक्तकर्पूराऽश्ज्ञताज्ञापनात्, पाण्डुतां च = शरीरपाण्डिमानं च्, अपललाप = अपलपितवान् ।

अनुवाद:- नल ने किसी विषय में मिथ्या खेद को प्रकाशित करके दमयन्ती के वियोग से उत्पन्न निःश्वासपरम्परा को छिपाया। चन्दन आदि लेपनद्रव्य में ज्यादा कर्पूर का भाग पड़ गया है ऐसा कहकर शरीर की पाण्डुता को छिापया।

टिप्पणी:- मृषाविषादाऽभिनयात् = मृषा चाऽसौ विषादः (क0 धा0)। मृषाविषादस्य अभिनयः, तस्मात् (ष0त0), निःश्वासतति = निश्वासानां ततिः ताम् (ष0त0)। जुगोप = ''गुपूरक्षणे'' धातु से लिट् +तिप्। अधिक चन्द्रभागताविभावनात् = चन्द्रस्य भागः (ष0त0)। अधिकश्चाऽसौ चन्द्रभागः (क0धा0), तस्य भावः तत्ता अधिक चन्द्रभाग +तल्+टाप्। अधिक चन्द्रभागताया विभावनं, तस्मात् (ष0त0), पाण्डुतां = पाण्डोभविः, तां, पाण्डु +तल् +टप् +अम्।

अलंकार:- व्याजोक्ति अलंकार

छन्द:– वंशस्थ छन्द' । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

शशाक निह्नोतुमयेन तत्प्रिया
मयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम् ।
समाज एवालपितासु वैणिकै-
र्मुमूर्च्छ यत्पञ्चममूर्च्छनासु च ॥52॥

अन्वयः:- अयम् अलीकवीक्षितां प्रियां यत् बभाषे, वैणिकैः पञ्चम मूर्च्छ नासु आलपितासु समाज एवं च यत् मुमूर्च्छ, तत् अनेन निह्नोतुं शशाक ॥52॥

व्याख्या:- अयं = नलः, अलीकवीक्षितां = मिथ्याऽवलाकितां, प्रियां = वल्लभां, दमयन्तीमित्यर्थः। यत् बभाषे = भाषितवान्, निरन्तरध्यानवश्ज्ञात्पुरः संप्राप्तां विदित्वेति शेषः। वैणिकै = वीणावादकैः, पञ्चममूर्च्छनासु = पञ्चमस्वरमूर्च्छसु, आलपितासु = पुनः पुनर्गीतासु सतीषु, समाजे एव च = सभास्थित जन समूहे एव च, यत् = यस्मात्कारणात्, मुमूर्च्छ = मूर्च्छप्राप, स्फुटतां न प्रापेति भावः। तत् = भाषणम् अनेन = प्रकारेण, निह्नोतु = गोपायितुं, शशाक = समर्थो बभूव ।

अनुवाद:- इन्होंने भ्रम से देखी गयी प्रिया (दमयन्ती) को जो कहा, बीन बजाने वालों के पंचम स्वर की मूर्च्छनाओं के आलाप करने पर जन समूह में ही जिससे स्फुट नहीं हुआ इस कारण से उसे छिपान के लिए नल समर्थ हुए।

टिप्पणी:- अलीकवीक्षिताम् = अलीकम् (यथा तथा) वीक्षिता, ताम् (सुप्सुपा0) बभाषे = भाष +लिट् +त। पंचममूर्च्छनासु = पञ्चमस्य मूर्च्छनाः, तासु (ष0त0)। तन्त्री (तार) और कण्ठ से उत्पन्न होने वाले शुद्ध स्वर सात प्रकार के होते हैं, जैसे कि- षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद। स्वरों के आरोह और अवरोह के क्रम को ''मूर्च्छना'' कहते हैं। मूच्छना के इक्कीस भेद होते हैं। आलपितासु = आङ् +लप् +क्त +टाप् +सुप्। यत् = यद्- शब्दका प्रतिरूपक अव्यय। इस पद्य में ''मूर्च्छ'' ''मूर्च्छ'' इस प्रकार से व्यंजनसमुदायका एक बार अनेक प्रकर से समता होने से छेकाऽनुप्रास अलंकार है।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्री हर्ष व्यक्त करते हैं कि अपनी प्रिया दमयन्ती के प्रति संबंधी भावना से ओतप्रोत हृदय वाले राजा नल ना तो मिथ्या रूप में देखी गई दमयन्ती के साथ किए गए भाषण को ही लोगों से छिपा सके ना उसके विवाह के कारण उत्पन्न हुई अपनी मूर्च्छाग को ही छुपा सके, इस राजा नल ने मिथ्या रूप में देखी गई प्रिया दमयंती से जो वार्तालाप किया तथा वीणा बजाने वालों के पंचम स्वर संबंधी मूर्च्छानाओं के अवसर पर समाज में ही जो वे बेहोश हो गये, बड़े दुख की बात है कि इन दोनों बातों को छिपा सकने में कोई समर्थन हो सके। उपर्युक्त वर्णन द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उक्त श्लोक में राजा नल संबंधी लज्जा, त्याग, उन्माद तथा मूर्च्छा रूप कामदशाओं का वर्णन महाकवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अवाप सापत्रपतां स भूपति-
र्जितेन्द्रियाणां धुरि कीर्तितस्थितिः।
असंवरे शंबरवैरिविक्रमे
क्रमेण तत्र स्फुटतामुपेयुषि ॥53॥

अन्वय:- जितेन्द्रियाणां धुरि कीर्तितस्थितिः स भूपतिः तत्र असंवरे शम्बर वैरिविक्रमे क्रमेण स्फुटताम् उपेयुषि साऽपत्रपताम् अवाप ॥53॥

व्याख्या:- जितेन्द्रियाणां = वशीकृत हृषीकाणां जनानां, धुरि = अग्रे, कीर्तित स्थितिः = स्तुतमर्यादः, सः = पूर्वोक्तः, भूपतिः = राजा, नल, इत्यर्थः। तत्र = तस्मिन्, समान इति शेषः। असंवरे = निरोद्धुम् अशक्ये, शम्बरवैरिविक्रमे = मदनपराक्रमे, मदननानाविधविकार इति भावः, क्रमेण = परिपाटया, स्फटतां = व्यक्तताम्, उपेयुषि = प्राप्तविति सति, साऽपत्रपताम् = अन्येभ्यो लज्जितताम्, अवाप = प्राप।

अनुवाद:- जितेन्द्रियों के अग्रभाग में वर्णित मर्यादावाले महाराज नल समाज में कामविकार के रोकने में अशक्य होकर क्रम से व्यक्त हो जाने पर अन्य लोगों के सम्मुख लज्जित हुए।

टिप्पणी:- जितेन्द्रियाणां = जितानि इन्द्रियाणि यैस्ते, तेषाम् (बहु0)। कीर्तितस्थितिः = कीर्तिता स्थितिः येषांते (बहु0)। भूपतिः = भुवः पतिः (ष0त0), तत्र = तस्मिन्निति, तद् +लट्। असंवरे = संवरणं संवरः, अविद्यमानः संवरो यस्य सः, तस्मिन् (नञ् बहु0)। शम्बरवैरिविक्रमे = शम्बरस्य वैरी (ष0त0), स्फुटता = स्फुट +तल् +टाप्। साऽपत्रपताम् = अन्यतः लज्जा अपत्रपा, साऽपत्रपस्य भावः सापत्रपता, ताम् साऽपत्रप +तल् +टाप् +अम्।

अलंकार:- संसृष्टि अलंकार

छन्दः– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अलं नलं रोद्धुममी किलाभव-
न्गुणा विवेकप्रमुखा न चापलम् ।
स्मरः स रत्यामनिरुद्धमेव यत्-
सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ॥54॥

अन्वयः- अमी विवेकप्रभवा गुण नलं चापलं रोद्धुम् अलं न अभवन् किल। यत् सस्मरः रत्याम् अनि□म् एवं सृजति ईदशः अयं सर्गनिसर्गः।

व्याख्याः- अमी = एते, विवेकप्रभवाः = पृथगात्मतोत्पन्नाः, गुणाः = धैर्यादय इत्यर्थः। नलं = नैषधं, नलदिति भावः, चापलं चाञ्चल्यं, काम जनितमिति शेषः। रोद्धु = निवरयितुम्, अलं = समर्थाः, न अभवन् = नो जाताः, किल = निश्चयेन। यत् = यस्मात्कारणात्, सः = प्रसिद्धः, स्मरः = कामदेवः, रत्याम् = अनुरागे सति, अथवा रतिनामस्व प्रियायाम्, अनिद्धम् एव = अनिवारितम् एव, चापलम् एव, पुरूषमिति शेषः। पक्षान्तरे- अनिरूद्धनामकं पुत्रम् एव, सृजति = करोति, ईदृशः = एतादृशः, अयम् = एषः, संर्गनिसर्गः = सृष्टिस्वभावः, कामः रतौ = अनुरागे सति पुरूषं चपलमेव करोति अथवा कामः रतौ = स्वप्रियायाम्, अनिरूद्धम् एवं = अनिद्धनामकं पुत्रम् एव उत्पादयति, एतादृशः सृष्टिस्वभाव इत्यर्थः।।54।।

अनुवादः- ये विवेक से उत्पन्न धैर्य आदि गुण नल की कामचंचलतप्को रोकने के लिए समर्थ नहीं हुए। जो कि कामदेव अनुराग उत्पन्न होने पर मनुष्य को चंचल ही कर देता है अथवा कामदेव प्रद्युम्न रति (पत्नी) अनिरूद्ध (पुत्र) को उत्पन्न करते हैं। ऐसा यह सृष्टि का स्वभाव है।

टिप्पणीः- विवेकप्रभवाः = विवेक प्रभवः येषां ते (बहु0)। अभवन् = भू +लङ् +झि। रत्याम् = रम् +क्तिन् +ङि। अनिद्धम् = न निरूद्धम् तद् (नञ त.)। अथवा अनिरूद्धम् = प्रद्युम्नपुत्रम्। सृजति = सृज +लट् +तिप्। संर्गनिसर्गः = सर्गस्य निसर्गः (ष0त0)।

अलंकारः- अर्थान्तरन्याय

छन्दः– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अनङ्गचिह्नं स विना शशाक नो
यदासितुं संसदि यत्नवानपि ।
क्षणं तदारामविहारकैतवान्
निषेवितुं देशमियेष निर्जनम् ॥55॥

अन्वयः- स यत्नवान् अपि संसदि यदा अनंडचिन्ह्न बिना आसितु नो शशांक, तदा क्षणम् आरामविहारकैतवात निर्जन देश निषेवितु इयेष।। 55।।

व्याख्याः- सः = नल, यत्नवान् अपि = प्रयत्नसम्पन्नः अपि, अनंगचिह्नं गूहन इति शेषः। संसदि = समायां, यदा = यस्मिन् समये, अनंगचिह्नं विना = सस्तस्भादिकामलक्षणं विना, आसितुम् = उपवेष्टुं, नो शशाक = न समर्थो बभूव। तदा = तस्मिन् समये, क्षणं = कश्चिल्कालं यावत्, आरामविहारकैतवात् = उपवन क्रीडाच्छलात् निर्जनं = जनरहिंतं, देशं = स्थानं, निषेवितुम् = आश्रयितुम् इयेष = इष्टवान्, लज्जापरिहारार्थमिति शेषः।

अनुवादः- नल प्रयत्न करने पर भी सभा में जब काम लक्षण के बिना रहने को समर्थ नहीं हुए, तब कुछ समय तक बगीचे में क्रीडा के बहाने से उन्होंने निर्जन स्थान का आश्रय लेने के लिए इच्छा की।

टिप्पणी:- यत्नवान् = यत्नः यस्याऽस्तीति यत्नवान्, अनंगचिह्नं, बिना = अविद्यमानानि अंगीनि यस्य सः अनंग (नञ् बहु0)। अनंगस्य चिह्नं तत् (ष0त0), आसितुम् = आस +तुमुन्। शशाक = शक +लिट +तिप्। आरामविहारकैतवात् = आरामस्य विहारः (ष0त0), ''आरामः स्यादुपवनम्'' इत्यमरः। आरामविहारस्य कैतवं, तस्मात् (ष0त0), निर्जनं = निर्गता जना यस्मात् तम् (बहु0)। निषेवितुं = नि+सेव +तुमुन्। यहाँ पर वृत्यनुप्रास अलंकार है।

अलंकार:- वृत्यनुप्रास अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यलाच्छनः
समं वयस्यैः स्वरहस्यवेदिभिः।
पुरोपकण्ठोपवनं किलेक्षिता
दिदेश यानाय निदेशकारिणः ॥56॥

अन्वयः - अथश्रियाभर्तिसतमत्स्य केतनः स्वरहस्येवेदिभिः वयस्यैः समं पुरोपकण्ठो पवनम् ईक्षिता (सन्) यानाय निदेशकारिणः आदिदेश किल ॥56॥

व्याख्या:- अथ = अनन्तरं निर्जनदेशनिषेवणेच्छातन्तरमिति भावः। श्रिया = स्वरशरीकान्त्यः हेतुना, भर्तिसतमत्स्यदकेतनः = तिस्कृतकामः, नल इति भावः। स्वरहस्यवेदिभिः = आत्मनोप्यविषयाऽभिज्ञः, वयस्वैः = तुल्यवयस्कै= मित्रैः, समं= सह, पुरोपकण्ठोपवनं = नगरनिकटारामम्, ईक्षिता = अवलोकिता सन् यानाय = यानम् वाहनमानेतुं गमनाय वा, निदेशकारणिः = आशाकारिणो जनान्, आदिदेश = आज्ञापयामास।

अनुवाद:- तब शरीर की शोभा से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले नल ने अपने रहस्य के जानकार मित्रों के साथ शहर के निकटस्थ बगीच को देखने के लिए वाहन लाने के लिए कर्मचारियों को वाज्ञा दी।

टिप्पणी:- पुरोपकण्ठोपवनं = पुरस्य उपकण्ठः (ष0त0), पुरोपकण्ठे उपवनं, तत् (स0त0), ईक्षिता = ईक्षत इतिः, ईक्ष +तृन्। निदेश कारिणः निदेशं कुर्वन्तीति तच्छीलाः, तान् निदेश +कृ +णिनिः (उपपद0)। आदिदेश = बाङ् +दिश +लिट् +तिप्।

अलंकार:- उपमा अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.3 राजा नल के अश्वक का वैशिष्ट्य—

अमी ततस्तस्य विभूषितं सितं
जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिकम्।
उपाहरन्नश्वमजस्रचञ्चलैः
खुराञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरम् ॥57॥

अन्वयः- ततः अमी तस्य विभूषितं सितं जवे अपि माने अपि पौरूषाऽधिकम् अजस्रचञ्लैः खुराऽञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरम अश्वम् उपाहरन् ॥57॥

व्याख्या:- ततः= आदेशनाऽनन्तरम्, अमी = निदेशकारिणो जनाः, तस्य = नलस्य, विभूषितम् = अलंकृतं, सितं = श्वेतवर्ण, जवे अपि = वेगे अपि, माने अपि = प्रमाण्र अपि, पौरूषाऽधिंक = पुरूषप्रमाणाऽतिरिक्तम् एवं च अजस्रचञ्चंलै = निरन्तरचपलैः, खुराश्चलैः = शफाऽग्रभागैः, क्षोदितमन्दुरोदरं = विदारितवाजिशालामध्यम्, अश्वं= हयम्, उपाहरन् = उपानीतवन्तः।

अनुवाद:- तब आज्ञाकारी भृत्य अलंकृत, सफेद वेग और प्रमाण में भी पुरूष के प्रामण से अधिक तथा निरन्तर चलने वाले खुरों के अग्रभागों से घुड़शाल के मध्य भाग को विदारित करने वाले घोड़े को नल के पास ले आये ।।57।।

टिप्पणी- विभूषितं = वि +भूष +क्तः (कर्म में)। पौरूषाऽधिंक = पुरूषस्य भावः पोरूषं, पुरूष+अण्, मान के पक्ष में - पुरूषः प्रामणमस्य पौरूषं, अजस्रचञ्चलैः = अजस्रं (यथा तथा) चञ्चलाः तैः (सुप्सुपा0)। खुराऽश्चलैः = खुराणाम् अश्चलाः, तैः (ष0त0), क्षोदितमन्दुरोदरं = मन्दुराया उदरम् (ष0त0)। क्षोदितं मन्दुरोदरं येन सः, तम् (बहु0)। इस पद्य में वृत्यनुप्रास और छेकाऽनुप्रास की संसृष्टि अलंकार है।

अलंकार:- संसृष्टि अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अथान्तरेणावटुगामिनाध्वना
निशीथिनीनाथमहः सहोदरैः ।
निगालगाद्देवमणेरिवोत्थितै-
र्विराजितं केसरकेशरश्मिभिः ।।58।।

अन्वयः- अथ निशीथिनीनाथमहः सहोदरैः निगालगात् देवमणेः आन्तरेण अवटुगामिना अध्वना उत्थितैः इव केशर केशरश्मिभिः विराजितं तं हयम् क्षितिपाकशासनः सः आरूहोह ।

व्याख्या:- अथ अश्ववर्णनप्रसंगे सप्तभिः कुलकमाह अथेति, अथ = अश्वोपाहारऽनन्तरं, निशीथिनीनाथमहः सहोदरैः = चन्द्र किरण सदृशैः, शुक्लैरिति भावः । निगालगात् = गलोद्देशस्थात्, देवमणिः = देव मणिनामकदक्षिणावर्तात्, आन्तरेण = कण्ठमध्यवर्तिना, अवटुबामिना = कृकाटिका-पर्यन्तगतेन, अध्वना = मार्गेण, उत्थितैः इव = उद्गतैः इव, स्थितैरिति शेषः। तादृशैः, केशकर केशरश्मिभिः = केशररूप चिकुरकिरणैः, विराजितं = शोभितम् (तं = तादृशं, हयम् = अश्वं, क्षितिपाकशासनः = भू महेन्द्रः, सः = नलः, आरूहोह = आरूढवान्, ।

अनुवादः- तब घोडे को लाने के अनन्तर (सफेद) गले के निकटवर्ती देवमणि नामक दक्षिण आवर्त से कण्ठ के बीच में रहने वाले कृकाटिका तक गये हुये मार्ग से उठे हुए के सामन चन्द्रकिरणों के सदृश केशर रूप कशों की किरणों से शोभित (उस घोड़े के ऊपर नल सवार हुए)।

टिप्पणी:- निशीथिनीनाथमहः सहोदरैः = निशीथः (अर्धरात्रः) अस्याः अस्तीति निशोथिनी (रात्रिः), निशीथ शब्द से निशीथ +इति +ङीप्। निशीथिन्या नाथः (ष0त0), तस्य महाँसि (ष0त0) उदरं येषां ते सहोदाराः (बहु0)। निशीथिनीनाथमहसां सहोदराः तैः (ष0त0)। निगालगात् = निगालं गच्छतीति, निगालगः तस्मात् निगाल +गम +ड +ङसिः, आन्तरेण = अन्तरे भवः आन्तरः, तेन, अन्तर +अण् +टा। अवटुगामिना = अवटुं गच्छतीति तच्छीलः, तेन अवटु + गम +णिनः + टा। उत्थितैः = उद् +स्था +क्तः +भिस्। केशर केशरश्मिभिः = केशरा एव केशाः (रूपक0)। घोड़े के स्कन्ध के बालों को 'केशर' कहते हैं। त एव रश्मयः तैः (रूपक0)। विराजितं = वि + राज् +क्तः । इस पद्य में द्वितीय चरण में उपमा, तृतीय चरण में उत्प्रेक्षा और चतुर्थ चरण में रूपक इस प्रकार इन तीनों अलंकारों की निरपेक्ष रूप से स्थिति होने से संसृष्टि अलंकार है।

छन्द:– वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः-
रुपास्यमानं चरणेषु रेणुभिः ।
रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतै-

र्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितैः ।।59।।

अन्वय:- रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् आगतैः अणिमाङ्कितैः जनस्य् चेतोभिः इव अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः रेणुभिः चरणेषु उपास्यमानं इव तं हयं क्षितिपाकशासनः सः आरूहोह।

व्याख्या:- रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् = वेगाऽतिशयपठनार्थम्, आगतैः = आयातैः, अणिमाङ्कितैः = अणुभाववहचह्नितैः, जनस्य् =लोकस्य, चेतोभिः इव = मनोभिः इव, अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः = निरन्तवरधरातलविदारणोत्थितैः, रेणुभिः = धूलिभिः, चरणेषु उपास्यमानं इव = सेत्यरमानम् इव, तं हयं क्षितिपाकशासनः सः आरूहोह।

अनुवाद:- वेग को सीखने के निमित्त आये हुए अणुपरिणामवाले लोगों के मनों के तुल्य लगातार जमीन को विदारण करने से उत्पन्न धूलियों से चारणों में सेवित उस धोड़े के ऊपर राजा ने आरोहण किया।

टिप्पणी:- रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् = रयस्य प्रकर्षः (ष0त0) रयप्रकर्षकस्यन अध्ययनम् (ष0त0)। आगतैः = आङ्+गम्+क्तउः +भिस्। अणिमाङ्कितैः = अणोर्भावः अणिमा।

विशेष:- राजा नल दमयन्ती के प्रति अपनी कामसक्त भावनाओं विरहजन्य मूर्च्छा को लोगों में छुपाने में असमर्थ होने पर उद्यान बिहार के लिए जिस घोड़े पर सवार होकर प्रस्थान करते हैं, उस घोड़े का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में श्रीहर्ष करते हैं, तीव्र वेग को सीखने के निमित्त आए हुये अनुपरिमाण वाले लोगों के मनों के सदृश, लगातार पृथ्वी पर तारण किए जाने से उठी हुई धूलियों के द्वारा उस घोड़े के चरणसेवित किए जा रहे थे। (ऐसे घोड़े पर राजा नल सवार हुये) अर्थात् उस घोड़े का वेग मनुष्यों के मन से भी अधिक तीव्र था। अतः लोगों के मन तीव्र वेग की शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त घोड़े के समीप आए हुए थे। इस भॉती लोगों के मन शिष्य के रूप में थे और घोड़ा गुरु के रूप में। अतएव मन रूपी शिष्यक गुरू में विद्यमान घोड़े के चरणों का स्पर्श धूल के रूप में कर रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था क्योंकि लोगों के मन का परिमाण भी अणुपरिमित है। अतः लोगों के मन (लगातार भूमि पर पैरों को पटकने से उड़ी हुई धूल रूप में विद्यमान) धूलि के रूप में विद्यमान थे।

अलंकार:- समासोक्ति अलंकार

छन्द:– वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.4 राजा नल की अश्वलक्षणता का वर्णन—

चलाचलप्रोथतया महोभृते
स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम्।
अलं गिरा वेद किलाऽयमाशयं
स्वय हयस्येति च मौनमास्थितम्।।60।।

अन्वय:- चलाचलप्रोथतया महीभृते स्ववेगदर्पान् वक्तुम् उत्सुकम् इव, अयं स्वयं हयस्य आशयं वेद किल, ''गिरा अलम्'' इति मौनम् आस्थितं च (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।।60।।

व्याख्या:- चलाचलप्रोथतया = अतिचंचलनासिकत्वेन, महीभृते = राज्ञे, नलायेत्यर्थः। स्ववेगदर्पान् आत्मजवगर्वान्, वक्तुं = प्रतिपादयितुम् = उत्सुकम्, इव = उत्कण्ठितम् इव, तर्हिं किमर्थं स्ववेगदर्पो न प्रतिपादित इत्याशङ्कयाह-अलमिति। अयं = महीभृत्, नल इत्यर्थः। स्वयम् = आत्मना एव, हयस्य = अश्वस्य, आशयम् = अभिप्रायं, वेद = जानाति, किल = निश्चयेन, अतः गिरा = वाण्या, वेगदर्पप्रकाशनकारिण्येति शेषः। अलं = पर्याप्तं, राज्ञः स्वयमभिज्ञत्वाद् गिरा साध्यं नाऽस्तीति भावः। इति = अनेन कारणेन, मौनं = तूष्णीकत्वम् आस्थितं च = आश्रितं च (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।

अनुवादः- अत्यन्त चंचल नाक होने से राजा को अपने वेग के दर्पको कहलेनेमें उत्कण्ठित के समान परन्तु ये (राजा) स्वयम् घोड़े का अभिप्राय जानते हैं, वाणी से क्या ? इस कारण मौन को धारण करने वाले (घोड़े के ऊपर राजा आरूढ़ हुए)।

टिप्पणी:- चलाचलप्रोथतया = चलनशीलं चलाचलं, चलाचलं प्रोथं यस्य सः (बहु0)। चलाचलप्रोथस्य भावश्चलाचलाचलप्रोथता, तया, चलाचलप्रोथ + तल् + टाप् + टा। महीभृते = महीं विभर्तीति महीभुत्, तस्मै, मही + भृ + क्विप् + ङे। स्ववेगदर्पान् = स्वस्य वेगः (ष0 त0) तस्य दर्पाः, तान् (ष0 त0) वक्तुं वच + तुमुन्। मौनं मुनेर्भावो मौनम् तत्, मुनि + अण् + अम् आस्थितम् = आङ् + स्था + क्तः + अम्। इस पद्य में पूर्वार्द्ध में वाच्या उत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्ध में प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है, इस प्रकार दो उत्प्रेक्षाओं की निरपेक्षाता से स्थिति होने से संसृष्टि अलंकार है। नलकी अश्वशास्त्रमें अभिज्ञता महाभारत के वनपर्व में उल्लिखित है।

अलंकार:- संसृष्टि।

छन्द:- वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

महारथस्याऽध्वनि चक्रवर्तिनः
पराऽनपैक्षोद्वहनाद्यशःसितम्।
रदाऽवदातांऽशुभिषादनोदृशां
हसन्तमन्तर्बलमवतां रवेः।।61।।

अन्वयः- अध्वनि महारथस्य चक्रवर्तिनः पराऽनपेक्षोद्वहनात् यशःसितं रदाऽवदातांऽशुमिषात् अनीदृशां रवेः अर्वतां बलम् अन्तः हसन्तम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।।61।।

व्याख्या:- अध्वनि = मार्गे, महारथस्य = वृहत्स्यन्दनस्य, अयुतयोधिनो वा, चक्रवर्तिनः = सार्वभौमस्य, नलस्येति भावः। पराऽनपेक्षोद्वहनात् = अन्याऽश्वाऽपेक्षाऽभावेन वहनात्, एकाकित्वेन धारणदिति भावः। यशःसितं = कीर्तिशुभ्रं, रदाऽवदातांऽशुमिषात् = दन्तोज्ज्वलकिरणच्छलात्, अनीदृशाम् = अनेतादृशानां, पराऽनपेक्षाद्वहनाऽसमर्थानामिति भावः। रवेः = सूर्यस्य, अर्वताम् = अश्वानां, सप्तसंख्यकानामिति भावः। बलं = शक्तिम्, अन्तः = अन्तःकरणे, हसन्तम् = उपहसन्तम् इव स्थितम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।

अनुवादः - मार्ग में बड़े रथवाले अथवा दश हजार धनुर्धारियोंसे युद्ध करनेवाले चक्रवर्ती महाराज नलको दूसरे घोड़ोंकी अपेक्षा न रखकर ढोनेसे कीर्तिसे शुभ्र, दाँतोंकी उज्ज्वल किरणोंके बहानेसे अन्य घोड़ोंकी अपेक्षाके बिना ढोनेमें असमर्थ सूर्यके (सात) घोड़ों के बलको मन ही मन उपहास करते हुए (उस घोड़ेके ऊपर महाराज नलने आरोहण किया)।

टिप्पणी:- महारथस्य = महान् रथो यस्य स महारथः, तस्य (बहु0), महारथ शब्द का लक्षण है-''एको दश सहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम्। शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथः''।। चक्रवर्तिनः = चक्रे (राजमण्डले) मुख्यत्वेन वर्तते तच्छीलः चक्रवर्ती, तस्य, चक्र+वृत्+णिनि+ङस्। ''चक्रवर्ती सार्वभौमः'' इत्यमरः। 'पराऽनपेक्षोद्वहनात् न अपेक्षा अनपेक्षा' (नञ्त०)। परेषाम् अनपेक्षा (ष०त०)। पराऽनपेक्षया उद्वहनं, तस्मात् (तृ०त०)। यशःसितं = यशसा सितः, तम् (तृ०त०)। रदाऽवदातांशुमिषात् = अवदाताश्च ते अशवः (क०धा०), अनीदृशां न ईदृशः तेषाम्, (तञ्०) हसन्तं हस+लट्+शतृ+अम्। इस पद्य में अपह्नुतिके साथ ''हसन्तम्'' इस पदमें ''इव'' के गम्यमान होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है और सूर्य के घोड़ोंसे नलके घोड़ेका उत्कर्ष प्रतीत होने से व्यतिरेक अलङ्कार है, इस प्रकार इनका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

सितत्विषश्चञ्चलतामुपेयुषो
मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य च।
स्फुटां चलच्चामरयुग्मचिह्नकै-
रनिह्नुवानं निजवाजिराजताम्।।62।।

अन्वयः - सितत्विषः चञ्चलताम् उपेयुषः पृच्छस्य केसरस्य च मिषेण चलच्चामरयुग्मचिह्नकैः स्फुटां निजवाजिराजताम् अनिह्नुवानम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।।62।।

व्याख्या - सितत्विषः = शुक्लकान्तियुक्तस्य, चञ्चलतां = चपलताम्, उपेयुषः प्राप्तवतः, पुच्छस्य = लाङ्गूलस्य, केसरस्य च = ग्रीवादालसमूहस्य च, मिषेण = छलेन, चलच्चामरयुग्मचिह्नकैः = वलत्प्रकीर्णकयुगललक्षणैः, स्फुटां = प्रसिद्धां, निजवाजिराजताम् स्वहयराजताम्, अनिह्नुवानम् = अनिषेधन्तं, प्रकटयन्तमिति भावः। (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।

अनुवादः - सफेद कान्तिवाले, चंचल भावको प्राप्त करनेवाले, पुँछ और कन्धेके बालोंके छलसे चलते हुए दो चँवरोंके चिह्नों से प्रसिद्ध अपने अश्वराजत्वको प्रकट करते हुए (उस घोड़ेपर राजा नलने आरोहण किया)।

टिप्पणी - सितत्विषः = सिता त्विट् यस्य, तस्य (बहु०)। चंचलतां = चंचल + तल् + टाप् + अम्। उपेयुषः = उप + इण् + क्वसुः + ङस्। चलच्चामरयुग्युचिह्नकैः = चलत इति चलती। चल्+लट् (शतृ) + औ। चलती च ते चाभरे (क०धा०) चलच्चामरयोर्युग्यम् (ष०त०) चिह्नानि एव चिह्नकानि, स्वार्थमें क प्रत्यय। चलच्चामरयुग्मयोश्चिह्नकानि, तैः (ष०त०)। निजवाजिराजतां = वाजिनां राजा वाजिराजः (ष०त०), वाजिराज + तल् + टाप्। निजा चाऽसौ वाजिराजता, ताम् (क०धा०)। अनिह्नुवानं = निह्नुत इति निह्नुवानः, नि+ह्नुङ्+लट् (शानच्), न निह्नुवानः, तम् (नञ्) इस पद्य में अपह्नुति और उत्प्रेक्षा इन दोनोंकी संसृष्टि है।

अलंकार:- संसृष्टि।

छन्द:- वंशस्थ छन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अपि द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे
मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया।
उपेयिवांसं प्रतिमल्लतां रय-
स्मये जितस्य प्रसभं गरुत्मतः।।63।।

अन्वयः:- रयस्मये प्रसभं जितस्य गरुत्मतः द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे अपि मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया प्रतिमल्लताम् उपेयिवांसम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)

व्याख्या:- रयस्मये = वेगाहङ्कारे, प्रसभं = बलात्कारेण, जितस्य = पराजितस्य, गरुत्मतः = गरुडस्य, द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे अपि = सर्पभक्षणपुरुषाऽर्थेऽपि, मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया = आननलग्नदीर्घमनोहररज्ज्वा, प्रतिमल्लतां = प्रति द्वन्द्विताम् उपेयिवांसं = प्राप्तवन्तम् (तं हय क्षितिपाकशासनः सः आरुरोह)।।

अनुवादः - वेगके अहंकार में बलपूर्वक जीते गये गरुड़के सर्पभक्षणरूप पुरुषाऽर्थ में भी मुख में लगी हुई लम्बी और सुन्दर लगाम से प्रतिद्वन्द्विभावको प्राप्त करनेवाले (उस घोड़ेपर राजा नलने आरोहण किया)।।

टिप्पणी- रयस्मये = रयस्य स्मयः, तस्मिन् (ष०त०)। प्रसभम् = यह क्रियाविशेषण है। गरुत्मतः = गरुतः सन्ति यस्य स गरुत्मान् तस्य (गरुत्+मतुप्+ङस्)। द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे = द्वे जिह्वे येषां ते द्विजिह्वाः (बहु०)। ‘‘द्विजिह्वो सर्पसूचको‘‘ इत्यमरः। द्विजिह्वानाम् अभ्यवहारः (ष०त०),, स एव पौरुषं, तस्मिन् (रूपक०)। मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया = मुखे अनुषक्ता (स०त०)। आयता चाऽसौ वल्गुः। क०धा०।

आयतवल्युश्चाऽसो वल्गा (क०धा०)। मुखाऽनुषक्ता चाऽसो आयतवल्गुवल्गा, तया (क०धा०)। प्रतिमल्लतां = प्रतिकूलो मल्लः प्रतिमल्लः, उपेयिवांसम् = उप+इण्+क्वसुः+अम्।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

स सिन्धुजं शीतमहः सहोदरं
हरन्तमुचैः श्रवसः श्रियं हयम्।
जिताऽखिलक्ष्माभृदनल्पलोचन
स्तमारुरोह क्षितिपाकशासनः।।64।।

अन्वयः- जिताऽखिलक्ष्माभृत् अनल्पलोचनः क्षितिपाकशासनः सः सिन्धुजं शीतमहःसहोदरम् उच्चैःश्रवसः श्रियं हरन्त तं हयम् आरुरोह।।64।।

व्याख्या:- जिताऽखिलक्ष्माभृत् = वशीकृतसकलभूभृत्, अनल्पलोचनः = विशालनयनः, क्षितिपाकशासनः = महीमहेन्द्रः, सः = नलः, सिन्धुजं = सिन्धुदेशोत्पन्नं समुद्रोत्पन्नं वा, शीतमहःसहोदरं, चन्द्रसहोदरं चन्द्रसदृशं शुक्लवर्णमित्यर्थो वा, एवं च उच्चैःश्रवसः = इन्द्रहयस्य, श्रियं = शोभां, हरन्तं = गृह्णन्तं, तं = पूर्वोक्तं, हयम् = अश्वम्, आरुरोह = आरूढवान्।

अनुवादः - सम्पूर्ण राजाओंको जीतनेवाले, दीर्घ नेत्रोंवाले, पृथ्वी के इन्द्र महाराज नल सिन्धु देश में वा समुद्रमें उत्पन्न चन्द्रमा के सदृश (श्वेत वर्णवाले) और इन्द्रके अश्व उच्चैःश्रवा की शोभाको हरण करनेवाले ऐसे घोड़ेपर आरूढ़ हुए।

टिप्पणी- जिताऽखिलक्ष्माभृत् = क्ष्मां विभ्रतीति क्ष्माभृतः क्ष्मा+भृ+क्विपृ+जस् (उपपद०)। जिताः अखिलाः क्ष्माभृतः (राजानः) येन, सः (बहु०)। अनल्पलोचनः = न अल्पे अनल्पे (नञ्०)। अनल्पे लोचने यस्य सः (बहु०)। क्षितिपाकशासनः = शास्तीति शासनः, क्षितौ पाकशासनः (स०त०)। पूर्वोक्त दो पदोंसे इन्द्र और नलका उपमानोपमेयभाव व्यङ्ग्य होता है। इन्द्रके पक्षमें ''जिताऽखिलक्ष्माभृत्'' इस पदमें विद्यमान ''क्ष्माभृत्'' पदसे पर्वतरूप अर्थ भी व्यङ्ग्य होता है। इन्द्रने सब पर्वतोंके पक्षोंको काट दिया था। ''अनल्पलोचनः'' इस पदमें इन्द्रके पक्षमें न अल्पानि अनल्पानि (नञ्०), प्रचुराणि इत्यर्थः, अनल्पानि लोचनानि यस्य सः (बहु०)। अनल्पलोचन अर्थात् हजार नेत्रोंवाले इन्द्र यह अर्थ है। सिन्धुजं सिन्धौ देशे जायते इति सिन्धुजः, शीतमहः सहोदरं शीतं महः (कान्तिः) यस्य सः शीतमहाः (बहु०), शीतमहसः सहोदरः, तम् (ष०त०)। चन्द्रमा और इन्द्रका घोड़ा दोनों ही समुद्र से उत्पन्न हैं, इसलिए वे सहोदर भाई हो गये हैं, यह तात्पर्य है। हरन्तं = हञ् + लट् (शतृ) + अम्। आरुरोह = आङ्+रुह+लिट्+तिप्। इस पद्यमें श्लेष, उपमा और ''श्रियं हरन्तम्'' इस अंशमें अन्यकी श्री (शोभा) को अन्य कैसे हरण करेगा इस प्रकार सादृश्य का बोधन करने से निदर्शना अलङ्कार है, अतः संसृष्टि है। अट्ठावनवें श्लोकसे चौसठवें श्लोकतक कुल सात श्लोकोंमें परस्पर सम्बन्ध होनेसे कुलक हो गया है, जैसे कि—

छन्दोबद्धपदं पद्यं, तेनैकेन च मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं, सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।।
कलापकं चतुर्भिश्च, पञ्चभिः कुलकं मतम्।।

अर्थात् छन्दो बद्ध पद वालों को ''पद्य'' कहते हैं। दूसरे पद्य से असम्बद्ध एक पद्य को ''मुक्तक'', दो पदों में परस्पर सम्बन्ध होने से ''युग्मक'' और तीन पद्यों में ''सन्दातिक'' कहते हैं। सन्दानतिक को ही कोई विशेषक और कोई ''तिलक'' भी कहते हैं। चार श्लोकोंमें परस्पर सम्बन्ध रहनेसे ''कलापक''और पाँच श्लोकों में वा उनसे अधिक श्लोकों में परस्पर सम्बन्ध रहनेसे 'कुलक' कहते हैं।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

निजा मयुखा इव तीक्ष्णदीधितिं
स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कतपाणिपङ्कजम्।
तमश्ववारा जवनाऽश्वयायिनं
प्राशरूपा मनुजेशमन्वयुः।।65।।

अन्वयः - प्रकाशरूपा निजा मयूखाः स्फुटाऽरविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजं जवनाऽश्वयायिनं तीक्ष्णदीधितिम् इव प्रकाशरूपा निजा अश्ववाराः स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपङ्कजं जवनाऽश्वयायिनं तं मनुजेशम् अन्वयुः।।65।।

व्याख्या:- प्रकाशरूपाः = द्योतस्वरूपाः, निजाः = स्वकीयाः, मयुखाः = किरणाः, स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपल्लवं = विकसितरक्तकमलचिह्नितकरकमलं, जवनाऽश्वयायिनं = वेगयुक्तसप्तहयगामिनं, तीक्ष्णदीधितिम् इव = सूर्यम् इव, प्रकाशरूपाः = प्रसिद्धसौन्दर्याः, निजाः = आत्मीयाः, अश्ववाराः = हयारोहाः, स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपङ्कजं = व्यक्तरेखारूपकमलचिह्नितकरकमलं, जवनाऽश्वयायिनं = वेगवद्धहयगामिनं, तं = पूर्वोक्तं, मनुजेशं = मरपतिं, नलमित्यर्थः। अन्वयुः = अनुगतवन्तः।

अनुवाद:- प्रकाशस्वरूपवाले अपने किरण समूह जैसे विकसित रक्तकमलोंसे चिह्नित कर कमल वाले तथा वेगवाले सात घोड़ों से गमन करनेवाले सूर्य का अनुगमन करते हैं। उसी प्रकार प्रसिद्ध सौन्दर्य वाले नलके घुड़सवारों ने स्पष्ट रेखारूप कमलोंसे चिह्नित करकमलोंवाले तथा वेगवाले घोड़ेसे यात्रा करनेवाले राजा नलका अनुगमन किया।

टिप्पणी:- प्रकाशरूपाः = प्रकाशः रूपं येषां ते (बहु०)। स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपल्लवं = स्फुटे च ते अरविन्दे (क० धा०), ताभ्याम् अङ्कितम् (तृ०त०), पाणिः पङ्कजम् इव, पाणिपल्लवम्, स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितं पाणिपङ्कजं यस्य, तम् (बहु०)। मनुजेश पक्षमें-स्फुटानि च तानि अरविन्दानि (क०धा०)। और अंश पहलेके समान। जवनाऽश्वयायिनं = जवशीलाः जवनाः, जवनाश्च ते अश्वाः (क०धा०) तैः यातीति जच्छीलः, तम्, जवनाऽश्व+या+णिनिः+तम् (उपपद०)। तीक्ष्णदीधिति तीक्ष्णा दीधितिर्यस्य, तम् (बहु०)।। प्रकाशरूपाः = प्रकाशं रूपं येषां ते (बहु०)। मनुजेशन् = मनौ जाता मनुजाः, मनु+जन्+डः (उपपद०)। मनुजानाम् ईशः, तम् (ष०त०)।

अलंकार:- पूर्णोपमा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.5 नल की यात्रा का वर्णन—

चलन्नलङ्कृत्य महारयं हयं
स वाहवाहोचितवेषपेशलः।
प्रमोदनिःष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभि-
र्व्यलोकि लोकैर्नगरालयैर्नलः।।66।।

अन्वयः:- वाहवाहोचितवेषपेशलः स नलः महारयं हयम् अलङ्कृत्य चलन् प्रमोदनिष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिः नगरालयैः लोकै व्यलोकि।

व्याख्या:- वाहवाहोचितवेषपेशलः = अश्वारोहणयोग्यनेपथ्यसुन्दरः, सः = पूर्वोक्तः नलः नैषध्यः, महारयम् अतिशयजवं, हयम् = अश्वम्, अलंकृत्य = भूषयित्वा, चलन् = गच्छन्, भूषणीभूय गच्छन्निति

भावः, प्रमोदनिष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिः = हर्षनिश्चलतरनेत्रलोमभिः, नगराऽऽलयैः = पुरनिवासिभिः, लोकैः = जनैः, व्यलोकि = विलोकितः, विस्मयहर्षाभ्यामिति शेषः।

अनुवादः – घुड़सवारी के योग्य वेश से सुन्दर और बड़े वेगवाले घोड़ेको अलंकृत कर चलते हुए नल को हर्ष से निश्चेष्ट नेत्र लोमवाले नगरवासी लोगोंने देखा।

टिप्पणी:- वाहस्य वाहः (ष०त०) तस्मिन् उचितः (स०त०)। वाहवाहोचितश्चाऽसौ वेषः (क०धा०), तेन पेशलः (तृ०त०)। महारयं = महान् रयो यस्य सः महारयः, तम् (बहु०)। अलंकृत्य = अलं+कृ+क्त्वा (ल्यप्)। चलन् चल+लट् (शतृ)। प्रमोदनिष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिः = निर्गतः स्पन्दो येभ्यस्तानि निष्पन्दानि (बहु०) अक्ष्णोः पक्ष्माणि (ष०त०)। निष्पन्दतराणि अक्षिपक्ष्माणि येषां ते निष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मणः (बहु०)। प्रमोदेन निष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मणः, तैः (तृ०त०)।

अलंकार:- वृत्यनुप्रास अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

क्षणादथैष क्षणदापतिप्रभः
प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन वाजिना।
सहैव ताभिज नदृष्टिवृष्टिभि-
र्बहिः पुरोऽभूत्पुरुहूतपौरुषः।।67।।

अन्वय:- अथ क्षणदापतिप्रभः पुरुहूतपौरुषः एषः प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन वाजिना क्षणात् ताभिः, जनदृष्टिवृष्टिभिः सह एव पुरः बहिः अभूत्।।67।।

व्याख्या:- अथ = लोकविलोकनाऽनन्तरं, क्षणदापतिप्रभः = चन्द्रसदृशः, सुन्दर इत्यर्थः, पुरुहूतपौरुषः = इन्द्रसमपुरुषाऽर्थयुक्तः, एषः = अयं, नल इत्यर्थः। प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन = वायुशिक्षवीयवेगेन, बाजिना = अश्वेन, क्षणात् = अल्पकालात्, ताभिः पूर्वोक्ताभिः, जनदृष्टिवृष्टिभिः लोकदृष्टिपातैः, सह एव समम् एव, पुरः नगरात्, बहिः बहिर्गतः, अभूत् अवर्तिष्ट।

अनुवादः:- अनन्तर चन्द्रमा के सदृश कान्ति से सम्पन्न, इन्द्रके समान पराक्रमी नल वायुसे पढ़नेके योग्य वेगवाले घोड़ेपर आरूढ होकर अल्प क्षेणमें ही जनों के दृष्टि पातों के साथ ही शहर से बाहर हो गये।

टिप्पणी:- क्षणदापतिप्रभः = क्षणं ददातीति क्षणदा, क्षणदायाः पतिः (ष०त०)। क्षणदापतेरिव प्रभा (कान्तिः) यस्य सः (व्यधिकरणबहु०)। पुरुहूतपौरुषः = पुरुभिः (बहुभिः) हूतः (आकारितः), इति पुरुहूतः (तृ०त०)। जनदृष्टिवृष्टिभिः = दृष्टीनां वृष्टयः (ष० त०)। जनानां दृष्टिवृष्टयः, ताभिः (ष०त०)। अभूत् = भू+लुङ्+तिप्।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

ततः प्रतीच्छ प्रहरेति भाषिणी
परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे।
मृषामृधं सादिवले कुतूहला-
न्नलस्य नासीरगते वितेनतुः।।68।।

अन्वयः - ततः ''प्रतीच्छ प्रहर'' इति भाषिणी परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे नलस्य नासीरगते सादिबले कुतूहला मृषामृधं वितेनतुः।।68।।

व्याख्या - ततः = पुराद्बहिर्गन्तुमनऽन्तरं, प्रतीच्छ = गृहाण, मच्छस्त्रप्रहारं स्वाऽङ्गे स्वीकुर्विति भावः, प्रहर = मयि प्रहारं कुरु, इति = एवं, भाषिणी = भाषमाणे, परस्परोल्लास्तिशत्यपल्लवे =

अन्योन्यप्रसारिततोमराऽग्रे, नलस्य = नेषध्यस्य, नासीरगते = सेनामुखप्राप्ते, सादिबले = तुरङ्गसैन्ये, कुतूहलात् = कौतुकात्, मृषामृधं = मिथ्यायुद्धं, युद्धनाटकमित्यर्थः, वितेनतुः चक्रतुः।

अनुवादः – नगर से बाहर निकलने के अनन्तर मेरा शस्त्र प्रहार ले लो, प्रहार करो ऐसा भाषण करते हुए परस्पर पल्लवके समान तोमर को उठाते हुए नलके सेनामुखमें स्थित नलके घुड़सवारोंकी दो सेनाओंने कुतूहलसे मिथ्या युद्धका अभिनय किया।

टिप्पणी- प्रतीच्छ प्रति+इष्+लोट्+सिप्। प्रहर प्र + हृ+लोट + सिप्। भाषिणी भाषेते तच्छीले, भाष + णिनि + औ। नासीरगते = नासीरं गते (द्वि०त०), सादिवले = अवश्यं सीदन्तीति सादिनः, सादिनः सादिनां बले (ष०त०)।

अलंकार:- उपमा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं
धरा तदाम्भोषिरपि स्थलायताम्।
इतीब वाहैर्निजवेगदर्पितैः
पयोधिराधक्षममुत्थितं रजः।।69।।

अन्वयः- इयं धरा अस्माकं प्रयातुं कियत्पदस्, तत् अम्भोधिः अपि स्थलायताम् इति इव निजवेगदर्पितैः वाहैः पयोधिरोधक्षमं रज उत्थितम्।

व्याख्या - इयम् = एषा, धरा = भूः, अस्माकं = धावताम् अश्वानाम्, प्रयातुं = प्रस्थात्, कियत्पदं = किंपरिमाणं स्थानं, भवेदिति शेषः। न किञ्चित्पर्याप्तमित्यर्थः। तत् = तस्मात्, कारणात्, अम्भोधिः अपि = समुद्रः अपि, स्थलायतां = स्थलवत् आचरतु, भूरेव भवतु इति भावः। इति इव = इति मत्वा इव, निजवेगदर्पितैः = स्वजवदर्पयुक्तैः, वाहैः = अश्वैः, पयोधिरोधक्षमं = समुद्राच्छादनसमर्थ, रजः = धूलिः, उत्थितम् = उत्थापितम् ।

अनुवादः- 'यह पृथ्वी हम लोगों के प्रस्थान के लिए कितने पगों के लिए होगी ? इस कारण समुद्र भी स्थल हो जाय मानों ऐसा विचार कर अपने वेग से दर्प करनेवाले घोड़ों ने समुद्र को आच्छादन करनेके लिए पर्याप्त धूल उड़ा दी।

टिप्पणी:- प्रयातुं = प्र+या+तुमुन्। कियत्पदं = कियन्ति पदानि यस्मिन् (कर्मणि) तद्यथा तथा (बहु०)। निजश्चाऽसौ वेगः (क०धा०), तेन दर्पिताः, तैः (त०त०)। पयोधिरोधक्षमं पयांसि धीयन्ते अस्मिन् पयोधिः, पयस्+धा+किः। पयोधे रोधः (ष०त०), तस्मिन् क्षमम् (स०त०)। उत्थितम् = उद्+स्था+क्तः।

विशेष:- राजा नल उद्यान बिहार की इच्छा से घोड़े पर सवार होकर प्रस्थान करते है। घोड़ों के दौड़ने पर धूलि उड़ रही थी। अतः इस आधार पर महाकवि द्वारा प्रस्तुत पद्य में यह कल्पना की गई है कि घोड़े अपने मन में यह सोच रहे थे कि हम लोगों के दौड़ने के लिए यह पृथ्वी छोटी होगी। अतः समुद्र को ही स्थल बना दिया जाए यह उद्देश्य से वे घोड़े धूलि उड़ा रहे थे। हम सभी घोड़ों के गमन करने के लिए यह पृथ्वी कितने पग होगी, अतः यह समुद्र भी स्थल बन जाए। ऐसा सोच कर अपने वेग का अभिमान करने वाले घोड़े ने समुद्र को सुखाकर स्थल बना देने योग्य धूलि को उड़ाया।

घोड़ों के दौड़ने पर धूलि का उठना स्वभाविक है। महाकवि द्वारा इस उड़ती हुई धूलि के संबंध में यह कल्पना की गई है कि मानों घोड़े अपने मन में यह सोच रहे हैं कि हम लोगों के गमन करने के निमित्त यह पृथ्वी बहुत ही थोड़ी है। अतः यह आवश्यक है कि समुद्र को भी स्थल बना दिया जाय। ऐसा सोचकर घोड़े अपनी टांगों द्वारा अत्यधिक धूल उड़ा रहे हैं जिससे वह धूलि समुद्र में जाकर गिरे और उस धूलि से

समुद्र में पट जाये। इस भॉती समुद्रों को स्थल बन जाने पर उनके गमन करते हुए पर्याप्त स्थल प्रदेश उनको प्राप्त हो जाएगा।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं
पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य न।
त्रपा हरीणामिति नम्रिताऽऽननै-
र्न्यवर्ति तैरर्धनभः कृतक्रमैः।।70।।

अन्वय:- यत् खं हरेः एककेन पदा अक्रामि, तस्य चतुर्भिः पदैः क्रमणे अपि हरीणां नः त्रपा'' इति नम्रिताऽऽननैः र्धनभः कृतक्रमैः तैः न्यवर्ति।।70।।

व्याख्या: - यत्खम् = आकाशं, हरेः = विष्णोः, एककेन =एकाकिना, असहायेन एकेनेति भावः, पदा = पादेन, अक्रामि = अलङ्गि, तस्य = खस्य, चतुर्भिः = चतुःसंख्यकैः, पदै = पादैः, क्रमणे अपि = लङ्घने कृते अपि, हरीणां = वाजिनां, विष्णूनां चेति गम्यते, नः = अस्माकं, त्रपा = लज्जा, एकस्य हरेः एकाकिना पदेन यत् खं लङ्घितं, तस्य बहूनां हरीणाम् (अश्वानां, विष्णूनां वा) चतुर्भिः पदैर्लङ्घने लज्जेति भावः। इति = अस्मात् कारणात् इव, नम्रिताऽऽननैः = अवनतीकृतमुखैः, तथा अर्द्धनभःकृतक्रमै = अर्द्धाकाशविहितपादविक्षेपैः, तैः = हरिभिः, न्यवर्ति = निबृत्तम्।

अनुवाद:- ''जिस आकाश का विष्णु के एक चरण ने लङ्घन किया था उस (आकाश) का चार चरणों से लङ्घन करनेपर भी हरि (घोड़े अथवा बहुत से हरि) हम लोगों को लज्जा है' मानों इस कारणसे नम्र मुख करनेवाले तथा आधे आकाशमें चरणविक्षेप करनेवाले वे लोग लौट गये।

टिप्पणी:- अक्रामि = क्रम + लुङ् (कर्ममें) + त। क्रमणे = क्रम+ल्युट्+ङि। हरीणां = नम्रिताऽऽननैः = नम्रं कृतं नम्रितम्, 'नम्र' शब्दसे णिच प्रत्यय कर क्तप्रत्यय। नम्रितम् आननं यैः, तैः (बहु०)। कृतः क्रमो यैस्ते कृतक्रमाः (बहु०)। अर्धनभसि कृतक्रमाः, तैः (स०त०)।

अलंकार:- प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

चमूचरास्तस्य नृपस्य सादिनो
जिनोक्तिषु श्राद्धतयेव सैन्धवाः।
विहारदेशं तमवाप्य मण्डली
मकारयन् भूरितुरङ्गमानपि।।71।।

अन्वयः - तस्य नृपस्य चमूचनाः सैन्धवाः सादिनः जिनोक्तिषु श्राद्धतया इव तं विहारदेशम् अवाप्य तुरङ्गान् भरि मण्डलीम् अपि अकारयन्।।71।।

व्याख्या - तस्य = पूर्वोक्तस्य, नृपस्य = राज्ञः नलस्येत्यर्थः। चमूचरा = सेनाचराः, सैन्धवाः = सिन्धुदेशोत्पन्नाः, सादिनः = अश्वारोहाः, जिनोक्तिषु = बुद्धवचनेषु, श्राद्धतया इव = श्रद्धालुतया इव, तं = प्रसिद्धं, विहारदेश = सञ्चारभूमिम्, बौद्धमठं च, अवाप्य = प्राप्य, तुरङ्गान् = अश्वान्, भूरि बहुलं, मण्डलीम् अपि = मण्डलाकारं च, मण्डलासन च, अकारयन् = कारितवन्तः, बौद्धा अपि स्वकर्माऽनुष्ठाने प्रायेण मण्डलानि कुर्वन्तीति प्रसिद्धिः।

अनुवादः - जैसे बौद्ध बुद्धके वचनमें श्रद्धालु होकर बौद्धमठमें मण्डलासन कराते हैं वैसे ही राजा नलके सैन्यमें रहनेवाले सिन्धु देशवाले घुड़सवारोंने विहारभूमि पहुँचकर घोड़ोंको मण्डलाकार रूपमें भ्रमण कराया।

टिप्पणी - नृपस्य = नृ+पा+कः (उपपद०)। चमूचराः = चम्वां चरन्तीति, जिनोक्तिषु = जिनस्य उक्तयः, तासु, (ष०त०) श्राद्धतया = श्रद्धा अस्ति येषां ते श्रद्धाः, श्रद्धानां भावः श्राद्धता, तया, श्राद्ध+तल्+टाप्+टा। विहारदेशं = विहारश्चाऽसौ देशः, तम (क०धा०)। अवाप्य = अव+आप्+क्त्वा (ल्यप्)।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.6 नल के यश और प्रताप का वर्णन—

> **द्विषद्भिरेवाऽस्य विलङ्घिता**
> **दिशो यशोभिरेवाऽब्धिरकारि गोष्पदम्।**
> **इतीव धारामवधीर्य मण्डली**
> **क्रियाश्रियाऽमण्डि तुरङ्गमैः स्थली।।72।।**

अन्वयः - अस्य द्विषद्भिः एव च दिशः विलङ्घिताः, अस्य यशोभिः एव अब्धिः गोष्पदम् अकारि; इति इव तुरंगमैः धाराम् अवधीर्य मण्डलीक्रियाश्रिया स्थली अमण्डि।।72।।

व्याख्या:- अस्य = नलस्य, द्विषद्भिः एव = शत्रुभिः एव, पलायमानैरिति शेषः। दिशः = ककुभः, विलङ्घिताः = अतिक्रान्ताः, अस्य = नलस्य, यशोभिः एव = कीर्तिभिः एव, अब्धिः = समुद्रः, गोष्पदं = गोखुरप्रमाणः, अकारि = कृतः इति = एवं विचार्य, इव, अन्यसामान्यं कर्म उत्कर्षाय न भवेदिति विमृश्य इवेति भावः। तुरंगमैः = अश्वैः, धाराम् = आस्कन्दितादिगतिम्। अवधीर्य = अनाहत्य, मण्डलीक्रियाश्रिया = मण्डलीकरशोभया, मण्डलगत्यैव इति भावः। स्थली = अकृत्रिमा भूमिः, अमण्डि = मण्डिता, भूषितेति भावः।

अनुवादः - नलके शत्रुओंको लङ्घन किया है इनकी कीर्तियोंने ही समुद्र को गाय के खुरके समान बना डाला है, मानों ऐसा विचार कर घोड़ोंने आस्कन्दित आदि गतियोंका अनाद करके मण्डलीकरणकी शोभासे भूमिको अलङ्कृत कर दिया।

टिप्पणी - द्विषद्भिः = द्विषन्तीति द्विषन्तः, अब्धिः = आपः धीयन्ते अत्र, अप्+धा+किः, गोष्पदं = गावः पद्यन्ते अस्मिन्स्थले तत्, गोभिः सेवितं गोष्पदं, अवधीर्य = अव-अधि-उपसर्गपूर्वक, मण्डलीक्रियाश्रिया = मण्डल्या क्रिया (ष०त०), तस्या श्री; तया (ष०त०)।

अलंकार:- संकर

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ)

> **अचीकरच्चारु हयेन या भ्रमी-**
> **र्निजातपत्रस्य तलस्थले नलः।**
> **मरुत्किमद्याऽपि न तासु शिक्षते**
> **वितत्य वात्यामयचक्रचङ्क्रमान्।।73।।**

अन्वयः– नलः निजातपत्रस्य, तलस्थले, हयेन, याः, भ्रमीः चारु अचीकरत्, तासु, मरुत्, अद्य अपि, वात्यामयचक्रचङ्क्रमान्, वितत्य, किं न शिक्षते ।

व्याख्या:- नलः = नैषध्य्, निजाऽऽतपत्रस्य = स्वच्छत्रस्य, तलस्थले = अधः प्रदेशे, हयेन = अश्वेन, याः, भ्रमीः = मण्डलगतीः, चारु = मनोहरं यथा तथा अचीकरत् = कारितवान्, तासु = भ्रमीषु विषये, मरुत् = वायुः, अद्य अपि = अधुना अपि, वात्यामयचक्रचङ्क्रमान् = वातसमूहमयमण्डलगतीः, वितत्य = विस्तीर्य, किं न शिक्षते = किमर्थ न जिज्ञासते।

अनुवाद: – नल ने अपने छत्रके अधोभागमें घोड़ेसे जिन मण्डलगतियोंको मनोहरतासे कराया, उनमें वायु अभी भी वायुओंकी मण्डलगतियोंको फैलाकर क्यों नहीं सीखना चाहता है ?।

टिप्पणी– निजातपत्रस्य = आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, आतप + त्रै (त्रा) + क+ (उपपद०)। निजं च तत् आतपत्रं, तस्य (क०धा०)। तलस्थले = तलञ्च तत् स्थलं तस्मिन् (क०धा०)। अचीकरत् = णिजन्त 'कृ' धातुसे लुङ्+तिप्। वात्यामयचक्रचङ्क्रमान् = वातानां समूहों, चक्रस्य चङ्क्रमाः (ष०त०)। वात्यामयाश्च ते चङ्क्रमाः, तान् (क०धा०)। वितत्य = वि+तन्+क्त्वा (ल्यप्)।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

विवेश गत्वा स विलासकाननं ततः
क्षणात्क्षोणिपतिर्घृतोच्छया।
प्रवालरागच्छुरितं सुषुप्सया
हरिर्धनच्छायमिवाऽम्भसां निधिम्।।74।।

अन्वयः - ततः हरिः सुषुप्सया विलासकाऽननं प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायम् अम्भस्रां निधिम् इव स क्षोणिपतिः धृतीच्छया गत्वा प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायं विलासकाननं क्षणात् विवेश।।74।।

व्याख्या - ततः = अनन्तरं, हरिः = विष्णुः, सुषुप्सया = स्वप्तुम् इच्छया, विलासकाऽननं सर्पप्राणनं, प्रवालरागच्छुरितं = विद्रुमाऽऽरुण्यरूषितं घनच्छायं = मेघकान्तिम्, अम्भसां = जलानां, निधिम् इव = शेवधिम् इव; समुद्रम् इवेत्यर्थः। सः = पूर्वोक्तः, क्षोणिपतिः = भूपतिः, नल इति भावः। धृतीच्छया = सन्तोषकाङ्क्षया, गत्वा = गमनं कृत्वा; प्रवालरागच्छुरितं = पल्लवारुण्यराञ्जतं, धनच्छायं = सान्द्राऽनातपं, विलासकाननं = क्रीडावनं, क्षणात् = अल्पकालात्, विवेश = प्रविष्टः।

अनुवादः - तब जैसे भगवान् विष्णु सोने की इच्छासे सर्पोके स्थानभूत, मूँगोंके वर्णसे रञ्जित, मेघकी समान कान्तिसे युक्त समुद्रमें प्रवेश करते हैं वैसे ही राजा नलने दिल बहलानेकी इच्छासे जाकर पल्लवोंके वर्णसे अनुरञ्जित, गाढ छायासे सम्पन्न क्रीडावनमें थोड़े ही समयमें प्रवेश किया।

टिप्पणी - सुषुप्सया = स्वप्तुम् = इच्छा सुषुप्सा, विलासकानाम् अननम् (प्राणनम्), तत् (ष०त०)। प्रवालरागच्छुरितं = प्रवालानां रागः, (ष०त०), प्रवालरागेण छुरितः, तम् (तृ०त०)। घनच्छायं = घनस्य (मेघस्य) इव छाया यस्य, तम्। व्यधिकरणबहु०)। क्षोणिपतिः = क्षोणेः पतिः (प०त०)। धृतीच्छया = धृतेः इच्छा, तया (ष०त०)। घनच्छायं = घना छाया यस्य, तत् (बहु०)। विलासकाननं = विलासस्य काननं, तत् (ष०त०)।

अलंकार:- पूर्णोपमा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

वनाऽन्तपयन्तमुपेत्य सस्पृहं
क्रमेण तस्मिन्नवतीर्णदृक्पथे।
न्यवर्ति दृष्टिप्रकरैः पुरौकसा
मनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः।।75।।

अन्वयः - अनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः, पुरौकसां दृष्टिप्रकरैः वनान्तपर्यन्तं सस्पृहम् उपेत्य क्रमेण तस्मिन् अवतीर्णदृक्पथे (सति) न्यवर्ति।

व्याख्या - अनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः = अनुगच्छद्बान्धवसङ्घसदृशैः स्नेहादिति शेषः। पुरौकसां = नगरवासिनां, दृष्टिप्रकरैः = ने=समूहैः (कर्तृभिः), वनाऽन्तपर्यन्तं = काननोपान्तसीमाम्, उदकप्रान्तपर्यन्तं च, सस्पृहं = साऽभिलाषं यथा तथा, उपेत्य = गत्वा, क्रमेण = समयपरिपाट्यया, तस्मिन् = नले,

अवतीर्णदृक्पथे = अतिक्रान्तने=विषये सति, न्यवर्ति = निवृत्तम्। यथाजनाः प्रवासोन्मुखं जनं जलाशयं यावदनुगम्य ''ओदकान्तमनुव्रजेत्'' इति शास्त्रेण निवर्तन्ते तथैव बन्धुसदृशानि नागरिकाणां नेत्राणि अपि गच्छन्तं नलं काननोपान्तसीमां यावद् गत्वा, अस्मिन्नतिक्रान्तने = मार्गे सति न्यवर्तन्त इति भावः।

अनुवादः - पीछे जानेवाले बान्धवसमाजोंके सादृश नगरवासियोंके नेत्र उपवन की सीमातक जाकर क्रमसे नलके दृष्टि से ओट हो जाने पर लौट गये।

टिप्पणी: - अनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः = अनुव्रजन्त। अनुव्रजन्तः, अनु+व्रज+लट् (शतृ)+जस्। बन्धूनां समाजाः (ष०त०)। अनुव्रजन्तश्च ते बन्धुसमाजाः (क०धा०)। अनुव्रजद्बन्धुसमाजानां बन्धवः तैः (ष०त०)। दृष्टिप्रकरैः = दृष्टीनां प्रकराः, तैः (ष०त०)। वनाऽन्तपर्यन्तं = वनस्य अन्तः (ष०त०)। सस्पृहं = स्पृहया सहितं यथा तथा (तुल्ययोगबहु०)। उपेत्य उप+इण्+क्त्वा (ल्यप्)। अवतीर्णदृक्पथे = दृशोः पन्था दृक्पथः (ष०त०),।

अलंकार:- उपमा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.7 राजा नल द्वारा उपवन शोभा का वर्णन—

ततः प्रसूने च फले च मञ्जुले स
सम्मुखस्थाऽङ्गुलिना जनाषिपः।
निवेद्यमानं वनपालपाणिना
व्यलोकयत्काननरामणीयकम्।।76।।

अन्वयः - ततः स जनाऽधिपः मञ्जुले प्रसूने फले च सम्मुखस्थाऽङ्गुलिन। वनपालपाणिना निवेद्यमानं काननरामणीयकं व्यलोकयत्।।76।।

व्याख्या - ततः = अनन्तरं, सः = पूर्वोक्तः, जनाऽधिपः = नरेशः, नल इत्यर्थः। मञ्जुले = मनोहरे, प्रसूने = पुष्पे, मञ्जुले फले च = सस्ये च, सम्मुखस्थाऽङ्गुलिना = अभिमुखस्थकरशाखेन, वनपालपाणिना = उद्यानरक्षकहस्तेन, निवेद्यमानं = ज्ञाप्यमानं, प्रदर्श्यमानमिति भावः। काननरामणीयकं = वनसौन्दर्य व्यलोकयत् = अपश्यत्।

अनुवादः - तब राजा नलने सुन्दर फूल और फलमें उद्यानरक्षकसे उँगलियोंको सम्मुख कर दिखलायी गयी वनकी सुन्दरताको देखा।

टिप्पणी- जनाऽधिपः = जनानाम् अधिपः (ष०त०)। संमुखस्थाङ्गुलिना = सम्मुखं तिष्ठन्तीति सम्मुखस्थाः, सम्मुख+स्था+कः (उपपद०)। सम्मुखस्था अङ्गुलयः यस्य सः तेन (बहु०)। वनपालपाणिन = वनं पालयतीति वनपालः, वनपालस्य पाणिः, तेन (ष०त०)। निवेद्यमानः = निवेद्यत इति, तत्, नि+विद्+णिच्+लट् (कर्ममें) +यक्+शानच्+अम्। काननरामणीयकं = माननस्य रामणीयकं, तत् (ष०त०)। व्यलोकयत् = वि+लोकृ + णिच् + लङ् + तिप्।

अलंकार:- तुल्ययोगिता अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे
वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते।
स्थितैः समाधाय महर्षिवार्द्धकाद्
वनेतदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः।।77।।

अन्वयः- वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते पल्लवे करे फलानि पुष्पाणि च समाधाय स्थितैः वने शाखिभिः महर्षिवार्द्धकात् तदातिथ्यम् अशिक्षि।।77।।

व्याख्या:- वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते = पक्षिपातोत्पन्नवायुकम्पिते, पल्लवे करे = किसलये एव पाणौ, महर्षिपक्षे-पल्लवे किसलये इव कोमल इति भावः, करे पाणौ, फलानि सस्यानि, पुष्पाणि च = कुसुमानि च, समाधाय = निधाय, स्थितैः = निष्ठद्भिः, वने = उपवने, शाखिभिः = वृक्षैः, वेदशाखाऽध्यायिभिश्च, महर्षिबार्द्धकात् = वृद्धमहर्षिसङ्घात्, तदातिथ्यं = नलाऽतिथिसत्कारः, अशिक्षि = शिक्षितम्, नो चेत्कथमिदमाचरितमिति भावः।

अनुवाद:- बाल्य आदि अवस्था के बीतने से उत्पन्न वात दोषसे कम्पित पल्लवके समान हाथमें फलों और फूलोंको लेकर रहनेवाले वेदशाखाका अध्ययन करनेवाले बूढ़े महर्षियोंके समान वनमें पक्षियोंके उड़नेसे उत्पन्न हवासे हिलते हुए पल्लवरूप हाथमें फलों और फूलोंको लेकर रहनेवाले वृक्षोंने बूढ़े महर्षियोंसे राजाके आतिथ्यको सीखा।।77।।

टिप्पणी - वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते = वयसः अतिपातः (ष०त०), वयोतिपातेन उद्गतः (तृ०त०), स चाऽसौ वातः (क०धा०) तेन वेपितः, तस्मिन् (तृ०त०)। समाधाय = सम् + आङ् + धा + क्त्वा (ल्यप्)।

अलंकार:- संकर

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवा-
न्मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितम्।
दधानमाशासु चरिष्णु दुर्यशः
स कौतुकी तत्र ददर्श केतकम्।।78।।

अन्वयः - कौतुकी स तत्र विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवात् मृगाऽङ्कचूडामणिव- र्जनाऽर्जितम् आशासु चरिष्णु दुर्यशः दधानं केतकं ददर्श।।78।।

व्याख्या- कौतुकी = कुतूहली, आरामदर्शन इति शेषः। सः = नलः, उपवने, विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवात् = विकसिदलपङ्क्तिस्थितभ्रमरच्छलात्, मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितं = शिवपरिहारोपार्जितम् आशासु = दिशासु, चरिष्णु = संचरणशीलं दुर्यशः = अपकीर्ति, दधानं = धारयत्, केतकं = केतकी कुसुमं, ददर्श = दृष्टवान्।

अनुवादः - उपवन देखनेके लिए कुतूहल रखनेवाले नलने वहाँपर विकसित पत्तोंकी पङ्क्तिमें स्थित भ्रमरके छलसे शिवजीके छोड़नेसे उपार्जित तथा दिखाओंमें संचरणशील अपकीर्तिको धारण करते हुए केतकी पुष्पको देखा।

टिप्पणी - कौतुकी = कौतुकम् अस्याऽस्तीति, विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवत् = पत्त्राणाम् आलिः (ष०त०)। विनिद्रा चाऽसौ पत्त्रालि (क०धा०)। विनिद्रपत्त्रालिमतः (द्वि०त०)। ते च ते अलयः (क०धा०)। विनिद्रपत्त्रालिगतालीनां कैतवं, तस्मात् (ष०त०)। मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितं = मृगः अङ्कः यस्य सः (बहु०)। चूडाया मणिः (ष०त०)। मृगाङ्कः चूडामणिः यस्य सः (बहु०), मृगाऽङ्कचूडामणिना सर्जनम् (तृ०त०)। तेन अर्जितम् (तृ०त०) ददर्श = दृश् + लिट् + तिप्। पूर्वकाल में ब्रह्मा और विष्णुके श्रेष्ठत्व के विषयमें विवाद होनेपर शिवलिंग प्रकट हुआ और ''इसका उर्ध्वभाग और अधोभाग जो देख सके वह श्रेष्ठ है'' ऐसी आकाशवाणी के होने पर ब्रह्मा ऊपर और विष्णु नीचे गये। विष्णु शिवलिंग का पार न पाकर लौट गये, परन्तु ब्रह्माजीने पार न पाकर भी मैंने पार पाया कहकर केतकी पुष्पकी साक्षी बनाया। तब मिथ्याभाषणके कारण शिवजीने केतकी का वर्जन किया, अतएव **''न केतक्या सदाशिवम्''** ऐसे निषेधवचन का उद्गम हुआ, ऐसी पौराणिक प्रसिद्धि है। इस पद्य में **''अलिकैतवात्''** इस पदमें अलित्व का अपह्नव कर उसमें दुर्यशस्त्वका स्थापन करनेसे कैतवाऽपह्नुति अलङ्कार और प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.3.8 केतकी की निन्दा का वर्णन—

> **वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटु**
> **र्निधीयसे कर्णिशरः स्मरेण यत्।**
> **ततो दुराकर्षतया तदन्तकृद्**
> **विगीयसे मन्मथदेहदाहिना।।79।।**

अन्वयः - (हे केतक!) यत् (त्वम्) स्मरेध वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटुः कर्णिशरः (सन्) निधीयसे, तदो दुराकर्षतया तदन्तकृत् (सन्) मन्मथदेहदाहिना विगीयसे।

व्याख्या - अथ नलः कामोद्दीपकत्वात्त्रिभिः केतकमुपालभसे वियोगभाजामिति। (हे केतक!) यत् यस्मात्कारणात् (त्वम्), स्मरेण = कामदेवेन, वियोगभाजां = विरहिणां जनानां, हृदि वक्षःस्थले, कण्टकैः = निजतीक्ष्णाऽवयवैः, कटुः = तीक्ष्णः, कर्णिशरः = प्रतिलोमशल्यवद्बाणः सन्, निधीयसे = निक्षिप्यसे, ततः = तस्मात्करणात्, दुराकर्षतया = दुरुद्धारतया, तदन्तकृत् = वियोगिनाशकारी सन्, मन्मथदेहदाहिना = स्मरहरेण, विगीयसे = निन्द्यसे, अतएव परिह्रियसेऽपीति शेषः।

अनुवादः - हे केतकीपुष्प! जो तुम कामदेवसे वियोगियोंके हृदयमें काँटोंसे तीक्ष्ण और नुकीला बासावाला होकर रक्खे जाते हो, दुःखसे निकाला जाने वाला होकर वियोगियोंका प्राण लेनेसे महादेव तुम्हारी निन्दा करते हैं।

टिप्पणी - वियोगभाजां = वियोगं भजन्तीति वियोगभाजः, कर्णिशरः = कर्ण इव कर्णः, सः अस्याऽस्तीति कर्णी, कर्ण+इनिः। कर्णी चाऽसौ शरः (क०धा०)। दुराकर्षतया = दुःखेन आक्रष्टुं शक्यः दुराकर्षः, दुर्+आङ्+कृष्+खल् (उपपद०)। तस्य भावः तत्ता, तया, दुराकर्ष + तल् + टाप् + टा। तदन्तकृत् = तेषाम् अन्तः (ष०त०)। तदन्तं करोतीति, तदन्त + कृ + क्विप् (उपपद०)।

विशेष:- राजा नल उद्यान बिहार की इच्छा से घोड़े पर सवार होकर प्रस्थान करते हैं और विलास वन में प्रवेश करते हैं वहां उन्होंने भ्रमरों से युक्त के केतकी पुष्प के पुष्प को देखा। इसी का वर्णन प्रस्तुत पद्य में महाकवि हर्ष ने किया है। वन में उत्सुकता पूर्ण राजा नल ने, शिवजी द्वारा त्याग दिये जाने के कारण उत्पन्न तथा संपूर्ण दिशाओं में फैलने वाले अपयश को धारण करने वाले, खिली हुई पंखुड़ियों के बीच में बैठे हुए भ्रमरों की पंक्ति के रूप में (अपकीर्ति से युक्त उस) केतकी के फूल को देखा।

जब राजा नल ने उस उपवन में भ्रमरों से युक्त केतकी के फूल को देखा। तब उसके मन में बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हुयी। ऐसा प्रतीत होता था कि उस फूल के अंदर भौंरें नहीं थे अपीतु वह केतकी के फूल की अपकीर्ति ही थी जो शिवजी द्वारा (उसका) त्याग कर दिए जाने के कारण उत्पन्न हुई थी और वह उसकी अपकीर्ति फूल में से निकालकर उड़ते हुए भ्रमरों के रूप में सभी दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। केतकी का फूल शिवपूजा में वर्जित है और इसी कारण उसकी यह अपकीर्ति हुई है। इस संबंध में निम्नलिखित कथानक शिवपुराण में उपलब्ध होता है—

एक बार भगवान राम लक्ष्मण तथा सीता के साथ गया में पितरों के श्राद्ध हेतु गये। वहां पहुॅचकर राम ने लक्ष्मण को श्राद्ध सामग्री लाने के लिए नगर में भेजा और स्वयं फल्गु नदी के किनारे बैठ कर पितरों का आह्वान करने लगे। लक्ष्मण के आने में अधिक विलंब हो जाने के कारण राम सामग्री लाने हेतु नगर में चले गए उन दोनों में से कोई भी उक्त सामग्री को लेकर नहीं लौट पाया था कि इसी बीच राम के पितरों के हाथ में श्राद्धपिण्डच लेने हैं कि निमित्त बाहर निकले। यह देखकर सीता जी घबराने लगी। उसे घबराया हुआ देखकर आकाशवाणी द्वारा पितरों ने कहा कि हे वत्स- श्राद्ध सामग्री के विद्यमान न होने

पर तुमको घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है तुम बालू का ही पिण्ड बना कर हम लोगों का श्राद्ध करो। सीता ने ऐसा ही किया तथा अपने इस कार्य में वहां उपस्थित गौ, अग्नि, फल्गु नदी और केतकी को साक्षी बनाया। विधिवत् बालू के श्राद्धपिण्ड लेकर पितरों के हाथ जब अंतर्निहित हो गए तब राम व लक्षमण उक्त सामग्री लेकर वापस आये। उस समय सीता ने पूर्ववत् चारों साक्षियों के समक्ष किये गये पिण्ड दान की बात कही। किंतु इन चारों साक्षियों ने कहा कि हमको कुछ भी ज्ञात नहीं है। तब पितरों ने आकाशवाणी द्वारा श्राद्ध पिण्ड की स्वीकृति को बतलाया और श्राद्ध करने का निषेध किया। तब सीताजी के उपर्युक्त चारों को क्रमश: यह शाप दिया– गौ को तूम आगे (मुख) भाग से अपवित्र होओ। (अग्नि को) तुम सर्व भक्षी होओ। (फल्गु नदी को) तुम निर्जल (अंतरजल) होओ। (केतकी पुष्प को) तुम शिवजी की प्रिय न रहो। उसी समय से शिव पूजा में केतकी पुष्प का उपयोग किए जाने का निषेध है।

अलंकार:- संकर

छन्द:- वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

त्वदप्रसूचीसचिवः स कामिनी-
र्मनोभवः सीव्यति दुर्यशःपटौ।
स्फुटं च पत्त्रैः करपत्त्रमूर्तिभि-
र्वियोगहृद्दारुणि दारुणायते।।80।।

अन्वयः- त्वदग्रसूचीसचिवः स मनोभवः कामिनोः दुर्यशःपटौ सीव्यति। च करपत्त्रमूर्तिभिः पत्त्रैः वियोगिहृद्दारुणि दारुणयते।।80।।

व्याख्या:-(हे केतक!) त्वदग्रसूचीसचिवः = त्वन्मूलसीवनीसहकारी, सः = प्रसिद्धः, मनोभवः = कामदेवः, कामिनोः = तरुणदम्पत्योः, दुर्यशःपटौ = अपकीर्तिवस्त्रे, सीव्यति = योजयति, कण्टकस्यूतं करोतीति भावः। च = किञ्च, करपत्लमूर्तिभिः = क्रकचाकारैः, पत्त्रैः = दलैः, वियोगिहृद्दारुणि = विरहिवक्षःकाष्ठे, दारुणायते = भीषणवत् आचरति।

अनुवादः- (हे केतकीपुष्प!) तुम्हारी नोकरूप सुईकी सहायतासे कामदेव तरुण दम्पतियोंके अपकीर्तिरूप वस्त्रको सीता है और आरेके समान आकारवाले पत्तोंसे वियोगियोंके वक्षःस्थलरूप काष्ठमें भयंकर आचरण करता है।

टिप्पणी - त्वदग्रसूचीसचिवः = तव अग्राणि त्वदग्राणि (ष०त०), त्वग्रसूच्यः एव सचिवा यस्य सः (बहु०)। मनोभवः = मनसि भवतीति, मनस् + भू + अच्। कामिनोः = कामिनी च कामी च कामिनौ, दुर्यशःपटौ = दुष्टे यशसी (गति०), ते एव पटौ, तौ (रूपक०)। करपत्त्रमूर्तिभिः करपत्त्रस्य इव मूर्तियेषां तानि करपत्त्रमूर्तीनि, तैः (व्यधिकरणबहु०)। वियोगिहृद्दारुणि वियोगिनः हृत् (ष०त०)। वियोगिहृत् एव दारु, तस्मिन् (रूपक०)। इस पद्यमें रूपक और उपमा का संसृष्टि अलङ्कार है।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द । (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

3.4- सारांशः-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने यह जाना कि महाकवि श्री हर्ष दमयन्ती की काम पीड़ीता (नल के विरह की वियोगिनी दमयन्ती के लिए एक पल भी बड़ा लग रहा है) राजा नल के त्याग, धैर्यवान आदि गुणों से युक्त होते हुये भी कामदेव के प्रभाव से प्रभावित होना, अपने सौन्दर्य से कामदेव को पराजित करना तथा दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये राजा नल के अश्व वैशिष्ट्य एवं उनके यात्रा के प्रसंगों के वर्णन को सम्यक रूप से आपने अध्ययन किया । साथ ही आप जान चुके है कि कवि

ने राजा नल यात्रा के दौरान विभिन्न प्रकार के वर्णनों, केतकी पुष्प की निन्दा, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किस प्रकार किया है।

3.5- शब्दावली:-

शब्द	**=**	**अर्थ**
अमोघ	=	कभी विफल न होने वाली
धीरस्य	=	धैर्यशाली
वारिजं	=	कमल का पुष्प
पितामहः	=	ब्रह्मा
अनतिक्रमणीय	=	अनुल्लंघनीय
तन्वी	=	कृशाऽङगी दमयन्ती
शशाऽङंकोमला	=	चन्द्र से कोमल (शीतल)
अर्थान्तरन्यास अलंकार	=	जहॉ सामान्य से विशेष का समर्थनरूप हो
जिताऽखिलक्ष्माभृत्	=	सम्पूर्ण राजाओंको जीतनेवाले
अनल्पलोचनः	=	दीर्घ नेत्रोंवाले (अर्थात् हजार नेत्रोंवाले)
कुलक	=	पाँच श्लोकों में वा उनसे अधिक श्लोकों में परस्पर सम्बन्ध को ‘कुलक’कहते हैं

3.6- बोध प्रश्न:-

1. बहुविकल्पीनय प्रश्न:

1- दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन किस सर्ग में है।

क-प्रथम सर्ग

ग- दशम सर्ग

घ- ग-द्वितीय सर्ग

ङ- घ-अष्टम सर्ग

2- गुणोत्करं में कौन सा समास है।

क-ष0त0

ख-क0धा0

ग-बहु0

घ-द्वन्द

3- दमयन्ती के पिता का क्या नाम था।

क-अर्जुन

ख-सहदेव

ग-नकुल

घ-भीम

4- दमयन्ती की पिता कहां के राजा थे।

क-विदर्भ

ख-निषध

ग-मगध

घ-वत्स

5-'कुलक' किसे कहते हैं।

क-दो पदों में परस्पर सम्बन्ध

ख-तीन पदों में परस्पर सम्बन्ध

ग-चार पदों में परस्पर सम्बन्ध

घ- पाँच पदों में वा उनसे अधिक पदों में परस्पर सम्बन्ध

बोध प्रश्नों के उत्तर:-

1-क

2-क

3-घ

4-क

5-घ

3.7- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का आधुनिक इतिहास- डा0 राधावल्लाभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3.संस्कृत साहित्य की रूपरेखा

4.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा॰ कपिलदेव द्विवेदी

5.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

3.8- अन्य उपयोगी पुस्तकें:-

1.साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

2.दशरूपक -आचार्य धनंजय

3.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष

4.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वेर प्रकाशन

3.9- निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. किन्ही चार श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. राजा नल के घोड़े का वर्णन कीजिए।

खण्ड – द्वितीय, इकाई – 4
नैषधीयचरितम् के श्लोक संख्या 81 से 120 तक
(भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

4.1- प्रस्तावना

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सत्रार्द्ध द्वितीय प्रश्न पत्र के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 41 से 80 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या से परिचित हुवे। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 81 से 120 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या को विस्तार से अध्ययन करेंगे साथ ही कोकिलों का कूजन वर्णन, अगस्त वृक्ष एवं राजा नल का वन में हुए स्वागत वर्णन, साथ ही सरोवर एवं जलाशयों का वर्णन, मैनाकपर्वत का वर्णन, हंस के स्वरूपवर्णन आदि विषयों को आप प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जानेंगे।

4. 2- उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- ❖ कोकिलों के कूजन वर्णन को रेखांकित कर सकेंगे।
- ❖ अगस्त वृक्ष की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में कौन-कौन से अलंकारों का प्रयोग हुआ है ?
- ❖ राजा नल का वन में हुये स्वागत वर्णन की व्याख्या कर सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में किस छन्द का प्रयोग हुआ है ?
- ❖ सरोवर एवं जलाशय की समुद्ररूपता से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ मैनाकपर्वत के बारे में जान सकेंगे।
- ❖ हंस के स्वरूप को बता सकेंगे।

4.3- श्लोक संख्या 81 से 120 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

धनुर्मधुस्विन्नकरोऽपि भीम-
जापरं परागैस्तव धूलिहस्तयन्।
प्रसूनधन्वा शरसात्करोति मा-
मिति क्रुधाऽऽक्रुश्यत तेन केतकम्।।81।।

अन्वयः - (हे केतक!) ''प्रसूनधन्वा धनुर्मधुस्विन्नकरः अपि तव परागैः धूलिहस्तयन् भीमजापरं मां शरसात् करोति'', इति तेन क्रुधा केतकम् आक्रुश्यत।

व्याख्या - (हे केतक!) प्रसूनधन्वा = पुष्पचापः, काम इति भावः। धनुर्मधुस्विन्नकरः अपि = कार्मुक (पुष्प) मकरन्दार्द्रपाणिः सन् अपि, तव केतकी पुष्पस्य, परागैः = रजोभिः, धूलिहस्तयन् = धूलिहस्तभ् आत्मानं कुर्वन्, भीमजापरं = दमयन्त्यासक्तं, मां = नलं, शरसात् = श्राऽधीनं, करोति = विदधाति, इति = इत्थं, श्लोक = योक्त्या इति भावः। तेन = नलेन, क्रुधा = क्रोधेन, केतकं = केतकी पुष्पम्, आक्रुश्यत = आक्रुष्टं।

अनुवादः - (हे केतकी पुष्प!) पुष्परूप धनुको लेनेवाला कामदेव पुष्परूप धनुके मकरन्द (रस) से आर्द्रपाणि होकर भी तेरे परागसे हाथको धूलि युक्त करता हुआ दमयन्ती में आसक्त मुझको वाणका लक्ष्य बनता है इस प्रकार से (तीन श्लोकों की उक्ति से) नल ने केतकी पुष्प की निन्दा की।

टिप्पणी- प्रसूनधन्वा = प्रसूनं धन्व यस्य सः (बहु०)। अथवा प्रसूनं धनुः यस्य सः (बहु०), ''धनुर्मधुस्विन्नकरः = धनुषः मधु (ष०त०), स्विन्नः करः यस्य सः (बहु०)। धनुर्मधुना स्विन्नकरः

(तृ०त०)। धूलिहस्तयन् = धूलियुक्तो हस्तः धूलिहस्तः, भीमजापरं = भीमाज्जाता भीमजा, भीम+जन्+टाप्। भीमजायां परः, तम् (स०त०)। करोति = कृ+लट्+तिप्।

विशेष:- राजा नल ने विलास वन में प्रवेश कर केतकी के पुष्प को देखा और उस पुष्प की निंदा की। इसी का वर्णन प्रस्तुत पद्य में कवि करता है। कामदेव धनुष (पुष्पों) के मधु से गिले हाथ वाला होकर तुम्हारे परागों से हाथ को धूलयुक्त करता हुआ दमयंती की ओर लगे हुए मेरे मन को अपने बणों के अधीन कर रहा है, इस प्रकार से क्रोध के साथ उस नल ने केतकी के फूल की निंदा की।

हे केतकी पुष्प! फूलों से निर्मित धनुष वाला कामदेव पुष्पों के मधु से (कामदेव का धनुष पुष्पों से ही निर्मित हुआ करता है अतः पुष्पों से निर्मित धनुष के मधु से) गीले हाथों वाला होकर तुम्हारे परागों की धूलि से यदि अपने हाथ को न सुख पाता तो लक्ष्यभ्रष्ट होकर वह मुझे अपने बाणों से पीड़ित नहीं कर सकता था। अतः मेरे कामदेव के बाण से पीड़ित होने में तुम्हीं मुख्य कारण हो। इस भॉति क्रोध के साथ कहते हुए राजा नल ने केतकी के फूल की निंदा की।

धनुष का धारण करने वाला व्यक्ति जब अधिक देर तक अपने हाथ में धनुष धारण किये रहता है तब उसका हाथ पसीजने लगता है। अत: वह अपने हाथ में धूलि लगाकर उसे सुखा कर लिया करता है। ऐसा कहने पर भी वह लक्ष्य को ठीक रूप से बेध पाया करता है।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताऽऽप्तये
घटानिवाऽपश्यदलं तपस्यत्।
फलानि धूमस्य धयानधोमुखान्
स दाडिमे दोहदधूपिनि द्रुमे।।82।।

अन्वयः - स दोहदधूपिनि दाडिमे द्रुमे विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताऽऽप्तये अलं तपस्यतः धूमस्य धयान् अधोमुखान् घटान् इव फलानि अपश्यत्।

व्याख्या:- सः = नलः, दोहदधूपिनि = फलवर्द्धकदोहदधूपयुक्ते, दाडिमे = करके, द्रुमे = वृक्षे, विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताप्तये = दमयन्तीपयोधरोन्नततालाभाय, अलम् = अत्यर्थं, तपस्यतः = तपश्चरतः अतः धूमस्य = दोहद धूमस्य, धयान् = पातृन्, पानकारिण इत्यर्थः, अधोमुखान् = अवनतवदनान्, घटान् इव = कुम्भान् इव, फलानि = दाडिमफलानि, अपश्यत् = दृष्टवान्।

अनुवाद:- नलने (फलादिवर्द्धक) दोहद धूपवाले अनारके पेड़में दमयन्तीके पयोधरोंकी ऊँचाई पानेके लिए अत्यन्त तपस्या करते हुए और धूमको पीनेवाले अधोमुख घटोंके समान फलों को देखा।

टिप्पणी - दोहदधूपिनि = दोहदश्चासौ धूपः (क०धा०)। वृक्ष, गुल्म और लताओंमें फूल और फल उत्पन्न होनेके समयसे पूर्व ही फूल और फलोंके उत्पादनके लिए जिस द्रव्यका उपयोग किया जाता है उसे ''दोहद'' कहते हैं। दोहदधूपः अस्याऽस्तीति दोहदधूपी, तस्मिन् (दोहदधूप + इति + ङि)। विदर्भसुभ्रूस्तवतुङ्गताऽऽप्तये = शोभने ध्रुवौ यस्याः सा सुभ्रूः (विदर्भेषु सुभ्रू, दमयन्तीत्यर्थः (स०त०), विदर्भसुभ्रुवः स्तनौ (ष०त०)। तुङ्गस्य भावः तुङ्गता, तुङ्ग+तल्+टाप्। विदर्भसुभ्रूस्तनयोः तुङ्गता (ष०त०), तस्या आप्तिः, तस्मै (ष०त०), अधोमुखान् = अधो मुखं येषां ते, तान् (बहु०)। अपश्यत् दृश् (पश्य) + लङ् = तिप्।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्री हर्ष वर्णन करते हैं कि राजा नल विलास वन में तपस्या-रत अनार के वृक्ष को देखा उस राजा नल ने दोहद धूप से युक्त अनार के वृक्ष पर दमयंती के स्तनों की ऊंचाई के सदृश ऊंचाई को प्राप्त करने के लिए अधोमुख धूम का पान करने वाले, तप करते हुये घड़ों के सदृश

फलों की को भलीभॉति दिखा। दमयन्ति के स्तन उन्नत तथा विशाल थे। घटाकर अनार के फल भी उसी प्रकार की ऊंचाई और विशालता प्राप्त कर लेना चाहते थे। अतः वे दोहदधूपयुक्त अनार के वृक्ष पर अधोमुख हो लटके हुये ऐसे प्रतीत होते थे मानो वे दमयंती के स्तनों सदृश बड़े होने के लिए अधोमुख हो अत्यंत कठिन तपस्या कर रहे हों ऐसे उन अनार के फलों को राजा नल ने देखा। कवि ने यहां कल्पना की है कि मानो अनार के फल ही घट थे। फलों की वृद्धि के निमित्त, अनार में वृक्षों को दोहद क्रिया द्वारा सीचा गया था और धूप दी गई थी (वृक्ष में अच्छे फल लगने के लिए नाना प्रकार के द्रव्यों द्वारा पेड़ के नीचे दिये गये धूप को दोहद कहते हैं, और सुगन्धित पदार्थों को जलाकर उनका धुऑ देना धूप कहलाता है। इसी आधार पर कवि द्वारा यह उत्पेक्षा की गयी है कि मानो वे अनार के फल दमयन्ती के स्तनों के समान विशाल होने के लिए नीचे की ओर मुख करके धूमपान जैसे कठोर तपस्या कर रहे थे।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

वियोगिनीमैक्षत दाडिमीमसौ
प्रियस्मृतेः स्पष्टमुदीतकण्टकाम्।
फलस्तनस्थानविदीणरागिहृ-
द्विषच्छुकास्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगाम्।।83।।

अन्वयः- असौ वियोगिनीं प्रियस्मृतेः स्पष्टम् उदीतकण्टकां फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगां दाडिमीम् ऐक्षत।

व्याख्या:- असौ = नलः, वियोगिनीं = पक्षियोगिनीं, विरहिणीं च। प्रियस्मृतेः = प्रीतिकरणदोहदादिस्मरणात्, नायकस्मरणाच्च। स्पष्टं = व्यक्तम्, उदीतकण्टकाम् = उत्पन्नतीक्ष्णाऽग्रऽवयवाम्, उत्पन्नरोमाञ्चां च, फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकाऽऽस्य-स्मरकिंशुकाऽऽशुगां = दाडिमीफलस्थलस्फुटितरक्तहृदयप्रविशत्कीरमुखकामपलाशबाणां, दाडिमीं-दाडिमवृक्षं, कांचिन्नायिकां च, ऐक्षत = अपश्यत्।

अनुवादः- जिस पर तोता बैठा था, प्रिय के स्मरण से रोमांच से युक्त वियोगिनी स्त्री के समान कण्टक युक्त, नायिका के फल सदृश स्तनों के भीतर अनुराग युक्त विदीर्ण हृदय में प्रविष्ट कामदेवके पलाशपुष्प रूप बाणके सदृश जिसके विदीर्ण लाल फलमें प्रविष्ट तोतेकी चोंच दिखाई पड़ती थी ऐसी दाडिमी (अनार के पेड़) को राजा नलने देखा।

टिप्पणी:- वियोगिनीं = वियोगः अस्या अस्तीति वियोगिनी ताम्, वियोग + इनि + ङीप्। दाडिमी (दाडिम) वृक्ष में यह व्युत्पत्ति है। बिना (पक्षिणा) योगिनी (संयुक्ता) (तृ०त०) प्रियस्मृतेः = प्रियस्य (कान्तस्य, प्रीतिकारकदोहादादेर्वा) स्मृतिः तस्याः (ष०त०)। उदीतकण्टकाम् = उदीताः कण्टकाः (रोमाञ्चा, तीक्ष्णाऽग्रावयवाः वा) यस्याः सा उदीतकण्टका, ताम् (बहु०)। फलस्तनस्थानविदर्णरागिहृद्विशच्छुकाऽऽस्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगां = फलानि एव स्तनौ (रूपक०), तौ एव स्थानम् (रूपक०)। तस्मिन् विदीर्णम् (स०त०)। फलस्तनस्थानविदीर्णरागि च तत् हृत् (क०धा०)। दाडिमी पक्षमें हृत् मध्य भाग, नायिक पक्षमें-हृदय प्रदेश। शुकस्य आस्यम् (ष०त०)। किंशुकम् एव आशुगः (रूपक०)। स्मरस्य किंशुकाऽऽशुगः (ष०त०)। विशति इति विशत्, विश्+लट् (शतृ) विशच्च तत् शुकास्यम् (क०धा०)। फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृदि विषच्छुकास्यम् (स०त०) स्मरस्य किंशुगाऽऽशुगः (ष०त०)। फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकास्यम् एव स्मरकिंशुकाऽऽशुगः यस्याः सा, ताम् (बहु०)।

अलंकार:- रूपक अलङ्कार

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

स्मराऽर्धचन्द्रेंषुनिभे क्रशीयसां स्फुटं
पलाशेऽध्वजुषां पलाऽशनात्।
स वृन्तमालोकत खण्डमन्वितं
वियोगिहृत्खण्डिनि कालखण्डजम्।।84।।

अन्वयः - सः स्मराऽर्द्धचन्द्रेषुनिभे वियोगिहृत्खण्डिनि क्रशीयसाम् अध्वजुषां पलाऽशनात् स्फुटं पलाशे अन्वितं वृन्तं कालखण्डजं खण्डम् आलोकत्।

व्याख्याः- नलः नेषधः, स्मरार्धचन्द्रेषुनिभे = कामाऽर्धचन्द्राकारबाणसदृशे, वियोगिहृत्खण्डिनि = विरहिहृदयच्छेदिनि, क्रशीयसां = कृशतराणाम्, अध्वजुषां = पान्थानां, पलाशनात् = मांसभक्षणात्, स्फुटे = प्रकटम् एव, पलाशे = अन्वर्थ के पलाशे, किंशक पुष्पे। अन्वितं = सम्बद्धं, वृन्तं = प्रसवबन्धनं तदेव कालखण्डजं खण्डं = यकृत्खण्डम्, कृष्णवर्णत्वादिति भावः। आलोकत = दृष्टवान्।

अनुवादः- नलने कामदेव के अर्धचन्द्राकार बाणके सदृश, विरही जनोंके हृदयको खण्डित करनेवाले और प्रिया वियोगसे अत्यन्त दुर्बल पथिकों के पल (मांस) को भक्षण करनेसे अन्वर्थ पलाशकी कलीमें सम्बद्ध प्रसव बन्धन को कलेजे के टुकड़े के समान देखा।

टिप्पणीः- स्मराऽर्धचन्द्रेषुनिभे = अर्धं चन्द्रस्य अर्धचन्द्रः,। अर्धचन्द्राकार इषुः अर्धचन्द्रेषुः (मध्यमपदलोपी समास)। स्मरस्य अर्धचन्द्रेषुः (ष०त०) स्मराऽर्धचन्द्रेषुणा सदृशं स्मराऽर्धचन्द्रेषुनिभम् तस्मिन् (तृ०त०)। वियोगिहृत्खण्डिनि = वियोगः अस्ति येषां ते वियोगिनः, वियोग+इनिः। वियोगिनां हृत् (ष०त०)। तत्खण्डयतीति वियोगिहृत्खण्डि, तस्मिन्, वियोगिहृत्+खडि+णिनि+ङि। क्रशीयसाम् = अतिशयेन कृशाः क्रशीयांसः, अध्वजुषाम् = अध्वानं जुषन्ते इति अध्वजुषः, (उपद०)। पलाऽशनात् = पलस्य अशनं, तस्मात् (ष०त०)। अन्वितम् = अनु+इण+क्तः। कालखण्डजं = कालखण्डात् जातं, तत्, कालखण्ड+जन्+ड।

अलंकारः- संसृष्टि

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

नवा लता गन्धवहेन चुम्बिता
करम्बिताङ्गी मकरन्दशीकरैः।
दृशा नृपेण स्मितशोभिकुड्मला
दराऽऽदराभ्यां दरकस्पिनी पपे।।85।।

अन्वयः- गन्धवहेन चुम्बिता मकरन्दशीकरैः करम्बिताऽङ्गी स्मितशोभिकुड्मला दरकम्पिनी नवा लता नृपेण दराऽऽदराभ्यां दृशा पपे।

व्याख्याः- गन्धवहेन = वायुना, चन्दनाद्यनुलिप्तेन पुरुषेण च, चुम्बिता = स्पृष्टा, कृतमुखसंयोगा च, मकरन्दशीकरैः = पुष्परसकणैः, करम्बिताऽऽङ्गी = मिश्रिताऽवयवा, कस्यचित्पुरुष्ज्ञस्य स्पर्शेन स्वेदयुक्ताङ्गी च। स्मितशोभिकुडमला = विकासरम्यमुकुला, मधुरहासमनोहरदशनमुकुला च, दरकम्पिनी = वातस्पर्शात् इषत्कम्पिनी, पुरुषस्पर्शात्सात्त्विककम्पयुक्ता च, नवा = नूतना, लता = वल्ली, लतासदृशी कान्ता च, नृपेण नलेन, दराऽऽदराभ्यां = भयतृष्णाभ्याम्, उपलक्षितेन सता, कामोद्दीपनाद्भयं प्रियासादृश्यात् आदरश्चेति भावः। दृशा = नेत्रेण करणेन, पपे = पीता, लालसया अवलोकितेति भावः।

अनुवादः- चन्दन आदि से अनुलिप्त किसी पुरुषसे चुम्बित, पुरुषके स्पर्शसे स्वेदयुक्त शरीरवाली, मन्द हास्यसे मुकुलके समान दन्तोंवाली और पुरुषके स्पर्श से कुछ कम्पसे युक्त किसी नायिकाकी समान

वायुसे स्पृष्ट, पुष्परसोंसे मिश्रित अवयवोंवाली मन्दहास्यों के समान कोंपलोंसे शोभित होनेवाली और हवासे कुछ हिलनेवाली नयी लताको राजा नलने भय और आदरके साथ नेत्रोंसे पान किया (इच्छापूर्वक देख लिया)।

टिप्पणी:- गन्धवहेन = गन्धं वहतीति गन्धवहः, तेन गन्ध+वह+अच् (उपपद०)। चुम्बिता = चुबि + क्त (कर्ममें) + टाप्। मकरन्दशीकरैः = मकरन्दस्य शीकराः, तैः (ष०त०)। करम्बिताऽङ्गी = करम्बितानि अङ्गानि यस्या सा (बहु०), स्मितशोभिकुडमला = स्मितवत् शोभन्ते इति स्मितशोभिनः,स्मित + शुभ् णिनिः (उपपद०) स्मितशोभिनः कुड्मलाः यस्याः सा (बहु०), दरकम्पिनी = दरम् (ईषत्) कम्पते तच्छीला दर + कपि + णिनि + ङीप्। दराऽऽदराभ्यां = दरं च आदरश्च दराऽऽदरौ, ताभ्याम् (द्वन्द्वः)। पपे = पा + लिट् (कर्मणि)।

अलंकार:- समासोक्ति अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

विचिन्वतीः पान्थपतङ्गहिंसनैर
पुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात्।
व्यलोकयच्चम्पककोरकावलीः
स शम्बराऽरेर्बलिदीपिका इव॥86॥

अन्वयः - सः अलिकज्जलच्छलात् पान्थपतङ्गहिंसनैः अपुण्यकर्माणि विचिन्वतीः शम्बराऽरेः बलिदीपिका इव चम्पककोरकाऽऽवलीः व्यलोकयत्।

व्याख्या:- सः नलः, अलिकज्जलच्छलात् = भ्रमराऽञ्जनकैतवात्, पान्थपतङ्गहिंसनैः पथिकपक्षिवधैः, अपुण्यकर्माणि = पापक्रियाः, विचिन्वतीः = संगृह्णतीः, हिंसापापकारिणीरित्यर्थः। शम्बरारेः = कामदेवस्य, बलिदीपिका इव = पूजाप्रदीपान् इव, चम्पककोरकाऽवली = चम्पकपुष्पकलिकाश्रेणीः, व्यलोकयत् = अपश्यत्।

अनुवादः – नल ने भ्रमर रूप कज्जल के छल से पान्थ रूप पक्षियों के वध से पाप कर्मों को इकट्ठा करती हुई, कामदेवकी पूजा के प्रदीपों के समान चम्पक पुष्पों की कलियों को देखा।

टिप्पणी:- अलिकज्जलच्छलात् = अलयः कज्जलानि इव अलिकज्जलानि, अलिकज्जलानां छलं, तस्मात् (ष०त०)। पान्थपतङ्गसिंहसनैः = पन्थानं नित्यं गच्छन्तीति पान्थाः, पान्थपतङ्गानां हिंसनानि तैः (ष०त०)। अपुण्यकर्माणि = पुण्यानि च तानि कर्माणि (क०धा०)। न पुण्यकर्माणि, तानि (नञ्)। विचिन्वतीः = विचिन्वन्तीति विचिन्वन्त्यः ताः वि + चिञ् + लट् (शतृ) + ङीप् = शस्। शम्बराऽरेः = शम्बरस्य अरि, तस्य (ष०त०)। बलिदीपिका बलेः दीपिकाः, ताः (ष०त०)। चम्पककोरकाऽऽवली = कोरकाणाम् आवल्यः (ष०त०)। चम्पकानां कोरकावल्यः, ताः (ष०त०)। व्यलोकयत् = वि+लोक+णिच्+लङ्+तिप्।

अलंकार:- संकर

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अमन्यताऽसौ कुसुमेषु गर्भजं
परागमन्धङ्करणं वियोगिनाम्।
स्मरेण मुक्तेषु पुरा पुराऽरये
तदङ्गभस्मेव शरेषु सङ्गतम्॥87॥

अन्वयः:- अयं कुसुमेषुगर्भजं वियोगिनाम् अन्धङ्करणं परागं पुरा स्मरेण पुराऽरये मुक्तेषु शरेषु सङ्गतं तदङ्गभस्म इव अमन्यत।

व्याख्या:- असौ = नलः, कुसुमेषुगर्भजं = पुष्परुपबाणाऽभ्यन्तरजातं, ''कुसुमेषु गर्भगम्'' इति पाठान्तरे कुसुमेषु = पुष्पेषु गर्भगम् = अन्तः स्थितमित्यर्थः। वियोगिनां = विरहिणाम, अन्धङ्करणं नेत्रोपघातकं, परागं = सुमनोरजः, पुरा = पूर्व, स्मरेण = कामदेवेन, पुराऽरये = शिवाय, मुक्तेषु = निक्षिप्तेपु, शरेषु = बाणेषु, सङ्गतं = संसक्तं, तदङ्गभस्म इव = पुरार्यवयवभसितम् इव, अमन्यत = उत्प्रेक्षितवान्।

अनुवाद:- राजा ने फूलों के भीतर रहे हुए, विरहियों को अन्धा करानेवाले परागको पूर्वकाल में कामदेव से महादेव को लक्ष्य कर छोड़े हुए पुष्प रूप बाणों में लगा हुआ महादेव के अंग में संसक्त भस्मके समान जाना।

टिप्पणी:- कुसुमेषुगर्भजं = कुसुमानि एव इषवः (रूपक०) गर्भे जातः गर्भजः, गर्भ+जन्+ड (उपपद०) कुसुमेषूणां गर्भजः, तम् (ष०त०)। अन्धङ्करणम् = अनन्धान् अन्धान् कुर्वन्ति अनेन इति, पुराऽरये = पुराणाम् अरिः, तस्मै (ष०त०)। तदङ्गभस्म = तस्य अङ्ग (ष०त०), तस्मिन् भस्म (स०त०) ।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

पिकाद्वने शृण्वति भृङ्गहुं कृतै-
र्दशामुदञ्चत्करुणे वियोगिनाम् ।
अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं
ददर्श दूनः स्थलपद्मिनीं नलः ॥88॥

अन्वयः:- दूनः नलः वने पिकान् भृङ्गहुङ्कृतैः वियोगिनां दशाम् उदञ्चत्करुणं शृण्वति अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं स्थलपद्मिनीं ददर्श।

व्याख्या:- दूनः = उपतप्तः, दमयन्तीविरहेणेति शेषः। नलः = नैषधः, वने = उपवने श्रोतरि, पिकात् = कोकिलात् वक्तुः, सकाशात्, भृङ्गहुङ्कृतैः = भ्रमरहुङ्कारैः, वियोगिनां = विरहिणां, दशाम् = अवस्थां, दुःखाऽवस्थामित्यर्थः। उदञ्चत्करुणम् = उद्यत्कृपम्, विकसद्वृक्षविशेषं च यथा तथा, शृण्वति = आकर्णयति सति, अनास्थया = श्रोतुम् अनिच्छया, सूनकरप्रसारिणीं = पुष्परूपहरतविस्तारिणीं, निवारयन्तीम् इव स्थिताम् इति भावः। स्थलपद्मिनीं = स्थलकमलिनीं, ददर्श = दृष्टवान्।

अनुवाद:- दमयन्ती के विरह से संतप्त नल ने सुनने वाले उपवनके वक्ता कोकिलसे भौरों के हुङ्कारों से वियोगियोंकी दुर्दशाको करुणापूर्वक सुननेपर अनिच्छा से पुरुषरूप हाथको फैलाकर (निषेध करने वाली के समान) स्थल कमलिनी को देखा।

टिप्पणी:- भृङ्गहुङ्कृतैः = भृङ्गाणां हुङ्कृतानि तैः (ष०त०)। उदञ्चत्करुणं = उदञ्चन्ती (उद्यन्ती) करुणा यस्मिन् (कर्मणि) तद् यथा तथा (बहु०)। शृण्वति। श्रु+लट् (शतृ) + ङि। अनास्थया न आस्था, तया (नञ्०)। सूनकरप्रसारिणी = सूनम् एव करः (रूपक०)।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष वर्णन करते हैं कि राजा नल के विलास वन में प्रवेश करके उसमें विद्यमान कोयल, भ्रमर, पुष्प आदि को देखा तो राजा नल के विरह व्यथा उनको और भी अधिक सन्तप्त करने लगी उस उपवन में जब कोयल भ्रमरों के हुंकार रूपी माध्यम के द्वारा विरहियों की करुणाजनक अवस्था को कह रही थी तो स्थलकमलिनी उसे सुनना नहीं चाहती थी। अतः वह अपने पुष्परूपी हाथों को फैलाकर मानो कोयल को वैसा करने से रोक रही थी। इस प्रकार की स्थलकमलिनी को संतप्तावस्था से विद्यमान राजा नल ने देखा।

जहॉ करूण नामक वृक्ष विकसित हो रहे थे, कोयल वियोगियों की दशा का वर्णन अपने शब्दों में कर रही थी और जहां गुंजन करते हुये भ्रमर हूॅं, कह कह कर हुंकार भर रहे थे, ऐसे उस उपवन में

स्थलकलिनी अपने पुष्प रुपी हाथों को फैलाकर कोयल को ऐसा करने से रोक रही थी। ऐसी स्थलकमिलनी को राजा नल ने सन्तप्त होते हुये देखा।
इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि को कोयल का कूकना, वृक्षों का विकसित होना, भ्रमरों का गुंजन करना तथा कमलिनी का खिलना आदि सभी पदार्थ कामपीडित व्यक्तियों के हृदय में और भी अधिक कामोत्तेजना उदित करने वाले हुआ करते हैं। राजा नल कामपीड़ित थे ही और साथ ही विरहावस्था में भी विद्यमान थे। उसी अपनी काम सन्तप्तावस्था में उन्होंने उपर्युक्त सभी पदार्थों को देखा।
अलंकार:- संकर
छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

रसालसालः समदृश्यताऽमुना
स्फुरद्द्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः।
समीरलोलैर्मुकुलैर्वियोगिने
जनाय दित्सन्निव तर्जनाभियम्।।89।।

अन्वयः- अमुना स्फुरद्द्विरेफाऽऽवरोषहुङ्कृतिः समीरलोलैः मुकुलैः वियोगिने जनाय तर्जनाभियं दित्सन् इव रसालसालः समदृश्यत्।
व्याख्या:- अमुना = नलेन, स्फुरद्द्विरेफाऽऽवरोषहुङ्कृतिः संचलद्भ्रमरझङ्कारकोपहुङ्कारः, समीरलोलैः, समीरलोलैः = वायुचञ्चलैः, मुकुलैः = कुड्मलैः, अङ्गलिभिरिवेति भावः। वियोगिने = विरहिणे, जनाय = लोकाय, तर्जनाभिय = भर्त्सनाभयं, दित्सन् इव = दातुम् इच्छन् इव, रसालसालः = आम्रवृक्षः, समदृश्यत = सम्यग् दृष्टः।
अनुवादः- नलने घूमते हुए भौरों के झङ्काररूप क्रोधका हुङ्कारवाला और वायुसे चञ्चल उँगलियों के समान मुकुलोंसे वियोगी जनको भर्त्सन के भयको देने की इच्छा करते हुएके समान आमके पेड़को देखा।
टिप्पणी:- स्फुरद्द्विरेफाऽऽवरोषहुङ्कृतिः = द्वौ रेफौ येषां ते द्विरेफाः (बहु०), स्फुरन्तश्च ते द्विरेफाः (क०धा०)। तेषाम् आरवः (ष०त०)। रोषस्य हुङ्कृतिः (ष०त०)। स्फुरद्द्विरेफारव एव रोषहुङ्कृतिः यस्य सः (बहु०)। समीरलोलैः = समीरेण लोलाः, तैः (तृ०त०)। तर्जनाभियं = तर्जनाया भीः, तां (ष०त०), रसालसालः = रसालश्चासौ सालः (क०धा०)। समदृश्यत = सं दृश+लङ (कर्ममें) + त। ।
अलंकार:- सङ्कर
छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.1 कोकिलों का कूजन वर्णन—

दिने दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं
पुनः पुनमूर्च्छ च मृत्युमृच्छ च।
इतीव पान्थं शपतः पिकान्द्विजा-
न्सखेदमैक्षिष्ट स लोहितेक्षणान्।।90।।

अन्वयः- रे! त्वं दिने दिने अधिकं तनुः एधि, पुनः पुनः मूर्च्छ च; मृत्युम् ऋच्छ च ''इति पान्थं शपत इव लोहितेक्षणान् पिकान् द्विजान् स सखेदम् ऐक्षिष्ट।
व्याख्या:- रे हे दीन!, त्वं, दिने दिने प्रतिदिनम्, अधिकं = भृशं, तनुः = कृशः, एधि = भव, पुनः पुनः = भूयो भूयः, मूर्च्छ च = मूर्च्छा प्रप्नुहि च, किं बहुना-मृत्युं = मरणम्, ऋच्छ च गच्छ च, इति इत्थं, पान्थं = पथिकं, शपत इव = आक्रोशत इव, लोहितेक्षणान् = रक्तदृष्टीन्, कोकिलान्, पक्षान्तरे ब्राह्मणान्, सः = नलः, सखेदं = विषादपूर्वकम्, ऐक्षिष्ट = दृष्टवान्, स्याऽपि उक्तशङ्कयेति भावः।

अनुवादः - ''रे पान्थ! तुम प्रतिदिन अधिक कृश बनो, फिर फिर मूर्छित हो जाओ, मृत्युको भी प्राप्त करो'' इस प्रकारसे पथिकको शाप देते हुएके समान लाल नेत्रोंवाले पक्षियों (कोयलों) को क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले ब्राह्मणोंके समान नलने खेदके साथ देखा।

टिप्पणी:- ऋच्छ = ऋच्छ + लाट् + सिप्। पान्थम् पथिन् (पन्थ) + ण + अम्। शपतः = शपन्तीति शपन्तः, लोहितेक्षणान् = लोहिते ईक्षणे येषां, तान् (बहु०)। कोकिल स्वभावसे ही और ब्राह्मण कोपसे लाल नेत्रोंवाले है यह तात्पर्य है। द्विजान् = द्विर्जायन्ते इति द्विजाः, तान्। सखेदं खेदेन सहित यथा तथा (तुल्ययोग बहु०)। ऐक्षिष्ट ईक्ष + लुङ + त।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अलिस्रजा कुड्मलमुच्चशेखरं
निपीय चाम्पेयमधीरया दृशा।
स धूमकेतुं विपदे वियोगिना
मुदीतमातङ्कितवानशङ्कत।।91।।

अन्वयः- अलिस्रजा उच्चशेखरं चाम्पेयं कुड्मलम् अधीरया दृशा निपीय आतङ्कितवान् स वियोगिनां विपदे उदीत धूमकेतुम् अशङ्कत्।

व्याख्या:- अलिस्रजा = भ्रमरपडक्त्या, उच्चशेखरम् = उन्नतशिरोभूषणं, भ्रमरमलिनाऽङ्गमिति भावः। चाम्पेयं = चम्पकविकारं, कुड्मलं = मुकुलम्, अधीरया = धैर्यरहितया दृशा = दृष्ट्या, निपीय = सादरं दृष्ट्वा, आतङ्कितवान् = भीतः किञ्चिदनिष्टमुत्प्रेक्षितवानिति भावः। सः = नलः, वियोगिनां = विरहिणां, विपदे = विनाशसूचनाय, उदीतम् = उत्थितं, धूमकेतुम् = अशुभसुचकं तारापुञ्जम, अशङ्कत = शङ्कितवान्।

अनुवादः- भ्रमरोंकी पङ्क्तियों से ऊँचे शिरोभूषणवाली चम्पाकी कलीकी अधीर दृष्टिसे देखकर अनिष्ठकी आशङ्का करनेवाले नलने उसमें वियोगियोंके विनाशके लिए उठे हुए धूमकेतु होने की शङ्का की।

टिप्पणी:- अलिस्रजा = अलीनां स्रक् तथ्या (ष०त०)। उच्चशेखरम् = उच्च शेखरों यस्य, तम् (बहु०), चाम्पेयं = चम्पाया अपत्यं पुमन् चाम्पेयः, । अधीरया = न धीरा, तया (नञ्)। निपीय = नि+पा+क्त्वा ल्यप्)। आतङ्कितवान् आङ् + तकि + क्तवतु + सु। विपदे = तादर्थ्यमें चतुर्थी। धूमकेतु = धूमप्रधानः केतुः, तम् (मध्यमपदलापी स०)। अशङ्कत = शकि + लङ् + त।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

गलत्परागं भ्रमिर्भाङ्गभिः पतत्
प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेशरम्।
स मारनाराचनिघर्षणस्खल-
ज्ज्वलत्कणं शाणमिव व्यलोकयत्।।92।।

अन्वयः- स गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः पतत् प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेशरं मारनाराचनिघर्षणंस्खलज्ज्वलत्कणं शाणम् इव व्यलोकयत्।

व्याख्या:- सः = नल, गलत्परागं = निर्यद्रजस्कं, भ्रमिभङ्गिभिः = भ्रमणप्रकारैः, उपलक्षितं, पतत् = भ्रश्यत् प्रसक्तभृङ्गावलि = सक्तभ्रमरकुलं; नागकेशरं = कुसुमविशेषं,

मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं = स्मरशरकर्षणलुठद्दीप्यमानं स्फुलिङ्गं, शाणम् इव निकषम् इव, व्यलोकयत् = अपश्यत्।

अनुवाद:- नलने गिरते हुए परागवाले, घूमकर आती हुई भ्रमर पङ्क्तिसे सम्बद्ध, गिरे हुए नागकेशरके फूलको कामदेवके बाण संघर्षण से निकलते हुए जलते हुए स्फलिङ्ग से युक्त कसौटी के समान देखा।

टिप्पणी:- गलत्परागं = गलन्तः परागा यस्मात्, तत् (बहु०)। भ्रमिभङ्गिभिः = भ्रमेः भङ्गिमः, ताभिः (तृ०त०)। पतत् = पततीति, पत्+लट् (शतृ)। प्रसक्तभृङ्गाऽऽवलि = भृङ्गाणाम् आवलिः (ष०त०)। प्रसवता भृङ्गावलिः यस्मिन्, तत् (बहु०)। नागकेसरं = नागकेसरस्य विकारः (पुष्पम्) नागकेसरं, मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं = मारस्य नाराचाः (ष०त०), तेषां निघर्षणं (ष०त०), तस्मात् स्खलन्तः (ष०त०)। मारनाराचनिघर्षणस्खलन्तः ज्वलन्तः कणाः यस्यः सः, तम् (बहु०)। व्यलोकयत् = वि-लोकृ+णिच्+लङ्+तिप्। ।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

तदङ्गमुद्दिश्य सुगन्धि पातुकाः
शिलीमुखालीः कुसुमाद् गुणस्पृशः।
स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात्
स्मरः स्वनन्तीरवलोक्य लजिजतः॥93॥

अन्वयः - सुगन्धि तदङ्गम् उद्दिश्य गुणस्पृशः कुसुमात् पातुकाः स्वनन्तीः शिलमुखालीः, अवलोक्य स्मरः स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् लज्जितः (अभवत्)।

व्याख्या:- सुगन्धि = मनोहरगन्धं, तदङ्गं = नलाऽङ्गम्, उद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य, गुणस्पृशः गन्धादिस्पृशः, मौर्वीस्पृशश्च, कुसुमात् = पुष्पात्, पातुकाः = धावन्तीः, स्वनन्तीः = ध्वनन्तीः, शिलीमुखाली भ्रमरपङ्क्तीः, बाणपङ्क्तीश्च, अवलोक्य = दृष्टवा, स्मरः = कामदेवः, लज्जितः = व्रीडितः, अभवदितिशेषः।

अनुवादः– सुगन्ध से युक्त नलके अङ्गको उद्देश्य करके गुण (गन्ध आदि वा मौर्वी) को स्पर्श करनेवाले, पुष्पसे दौड़नेवाले, शब्द करते हुए भ्रमरसमूहों को देखकर कामदेव आपने धनु के निशाने से चूके हुए बाणके भ्रमसे लज्जित तुल्य हुए।

टिप्पणी:- सुगन्धि = शोभनः गन्धः यस्य, तत् (बहु०) तदङ्गं = तस्य अङ्ग, तत् (ष०त०)। उद्दिय = उद्+दिश् क्त्वा (ल्यप्)। गुणस्पृशः = गुणं (गन्धार्दि मौर्वी च) स्पृशन्तीति, ताः, स्वनन्ती = स्वनन्तीति स्वनन्त्यः, ताः, स्वन+लट् (शतृ)+ङीप्+शस्। शिलीमुखालीः = शिलीमुखानाम् (अलीनां बाणानां वा) आल्यः, ताः (ष०त०)। अवलोक्य = अव+लोक्+क्त्वा (ल्यप्)। स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् = स्वस्य चापः (ष०त०)। दुर्निर्गताश्च ते मार्गणाः (बाणाः), (क०धा०)। स्वचापात् दुर्निर्गतमार्गणाः (ष०त०)। तेषां भ्रमः, तस्मात् (ष०त०)। इस पद्यमें श्लेष, भ्रमरोंमें बाणके भ्रान्तिमान्, ''लज्जितः'' यहाँपर उत्प्रेक्षावाचक इव आदि शब्दों के न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा, इस प्रकार इन अलङ्कारोंका अङ्गाड्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है॥93॥

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

मरुललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं
समुच्चरच्चन्दनसारसौ रभम्।
स वारनारोकुचसञ्चितोपमं
ददर्श मालूरफलं पचेलिमम्॥94॥

अन्वयः:- स मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं समुच्चरच्चन्दनसारसौरभं वारनारीकुचसञ्चितोपमं पचेलिमं मालूरफलं ददर्श।

व्याख्या:- सः = नलः, मरूल्ललत्पल्लवकण्टकैः = वायुचलत्किसलयतीक्ष्णाऽग्राऽवयवैः, अन्य= विलसद्विटनखैरिति गम्यते। क्षतं = विलिखितम्, समुच्चरच्चन्दनसारसौरभं = प्रसर्पच्छ्रीखण्डसारसौगन्ध्यम्, अत एव वारनारीकुचसञ्चितोपमं = वेश्यापयोधरसम्पादितसादृश्यं, पचेलिमं = स्वतःपक्वं, मालूरफलं = बिल्वफलं, ददर्श = विलोकयामास।

अनुवाद:- नलने वायुसे चलते हुए पल्लवोंके काँटोंसे विद्ध फैलते हुए चन्दनके समान सौरभसे युक्त, वेश्याके पयोधरके सदृश पके हुए बेलफलको देखा।

टिप्पणी:- मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः = ललन्ति च तानि पल्लवानि (क०धा०)। मरुता ललत्पल्लवानि (तृ०त०)। समुच्चरच्चन्दनसारसौरभं = चन्दनस्य सारः (ष०त०), तस्य सौरभम् (ष०त०)। समुच्चरत् चन्दनसारसौरभं यस्य, तत् (बहु०)। वारनारीकुचसञ्चितोपमं = वारस्य (नरसम्हस्य) नारी वारनारी (ष०त०), तस्याः कुचः (ष०त०), सञ्चिता उपमा यस्य तत् (बहु०)। वारनारीकुचेन सञ्चितोपमं, तत् (तृ०त०)। मालूरफलं = मालूरस्य फलम् (ष०त०), तत्। ददर्श = दृश् + लिट + तिप्। ।

अलंकार:- उपमा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

> **युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचित**
> **प्रसूनशून्येतरगर्भगह्वरम्।**
> **स्मरेषुधीकृत्य धिया भियाऽन्धयां**
> **स पाटलायाः स्तबकं प्रकम्पितः।।95।।**

अन्वयः - स युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचितप्रसूनशून्येतरगर्भगह्वरं पाटलायाः स्तबकं भिया अन्धया धिया स्म षुधीकृत्य प्रकम्पितः।

व्याख्या:- सः = नलः, युवद्वयीचित्तेत्यादिः = तरुणमिथुनमानसब्रुडनसमर्थपुष्पपूर्णगर्भकुहरं पाटलायाः = पाटलवृक्षस्य, स्तबकं = गुच्छं, भिया = भयेन, अन्धया = मूढया, धिया = बुद्ध्या, स्मरेषुधीकृत्य = ''इदं कामतूणीरम्'' इति विभ्रभ्य, प्रकम्पितः = चकम्पे।

अनुवादः - नल युवती और युवकजनों को आकर्षण करने में समर्थ पुष्पोंसे पूर्ण भीतरी भागवाले पाटल पुष्पोंके गुच्छेको भयसे मूढ बुद्धिसे ''यह कामदेवका तरकश है'' ऐसा विचार कर कम्पित हुए।

टिप्पणी:- युवद्वयीचित्तेत्यादिः = युवतिश्च युवा च युवानौ, यूनोर्द्वयी (ष०त०)। युवद्वय्याः चित्ते (ष०त०)। युवद्वयीचित्तयोः निमज्जनं (ष०त०), तस्मिन् उचितानि (स०त०), त नि च तानि प्रसूनानि (क०धा०) गर्भस्य गह्वरम् (ष०त०)। युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचितप्रसूनः शून्येतरत् (तृ०त०), तत् गर्भगह्वरं यस्य, तम् (बहु०)। स्मरेषुधीकृत्य स्मरस्य इषुधिः (ष०त०)। स्मरेषुधि + च्वि + कृ + क्त्वा (ल्यप्)। प्रकम्पितः प्र + कपि + क्तः।

अलंकार:- भ्रान्तिमान् अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.2 अगस्त वृक्ष का वर्णन—

> **मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युति**
> **वनेऽमुनाऽमन्यत सिंहिकासुतः।**
> **तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं**
> **कलाकलापं किल वैधवं वमन्।।96।।**

अन्वयः- अमुना वने कोरकितः शितिद्युतिः मुनिद्रुमः तमिस्रपक्षत्रुटिकुटभक्षितं वैधवं कलाकलापं वमन् सिंहिकासुतः अमन्यत किल।

व्याख्या:- अमुना = नलेन, वने = उपवने, कोरकितः = संजातकोरकः, शितिद्युतिः = कृष्णकान्तिः पत्रेषु इति शेषः। मुनिद्रुमः = अगस्त्यवृक्षः, तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं = कृष्णपक्षक्षयव्याजगिलितं, त्रैधवं = चान्द्रमसं, कलाकलापं = कलासमूहं, वमन् = उद्गिरन्, सिंहिकासुतः = राहुः, अमन्यत = ज्ञातः, किल = निश्चयेन।

अनुवादः- नल ने वन में कलियों से युक्त, काली कान्ति वाले अगस्त्यके वृक्ष को कृष्णपक्ष के बहाने से खाये गये चन्द्रमा के कला समूह को वमन करता हुआ राहु समझा।

टिप्पणी:- कोरकितः = कोरकाः संजाता अस्य, शितिद्युतः शिति द्युतिः यस्य सः (बहु०)। तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं = तमिस्रस्य पक्षः (ष०त०), तस्य त्रुटिः (ष०त०) तस्याः कूटम् (व्याजः) (ष०त०), तेन भक्षितः, तम् (तृ०त०)। वैधवं = विधोः अयं वैधवः, तम्, विधु+अण्+अम्। कलाकलापं = कलानां कलापः, तम् (ष०त०)। सिहिकासुतः = सिंहिकायाः सुतः (ष०त०) अमन्यत = मन्+लङ+त (कर्मम)।

अलंकार:- सङ्कर अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

> **पुरो हठाक्षिप्ततुषारपाण्डर-**
> **च्छदाऽऽवृतेर्वीरुधि नद्धविभ्रमाः।**
> **मिलन्निमीलं विदधुर्विलोकिता**
> **नभस्वतस्तं कुसुमेषु केलयः।।97।।**

अन्वयः- पुरो हठाक्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदावृतेः नभस्वतः वीरुधि नद्धविभ्रमाः कुसुमेषु केलयः विलोकिताः (सत्यः) तं मिलन्निमीलं विदधुः।

व्याख्या:- पुरः = अग्रे, हठाक्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदाऽऽवृतेः = बलाकृष्टहिमशुक्ल- पत्राऽऽवरणस्य, नभस्वतः = वायोः, वीरुधि = लतायां, नद्धविभ्रमाः = अनुबद्धभ्रमणाः, कुसुमेषु = पुष्पेषु, केलयः = कम्पनादिक्रीडाः, कुसुमेषु केलयः = कामक्रीडाश्च, विलोकिताः = दृष्टाः सत्यः, तं = नलं, मिलन्निमीलं = निमीलितनेत्रं, विदधुः = चक्रुः। वायोर्लतायां कम्पनव्यापारस्य कामोद्दीपकत्वात् अथवा वायोर्लतायां कम्पनं समागमक्रियां ज्ञात्वा नलो निमीलितनयनो बभूवेति भावः।

अनुवाद:- सामने बलेसे बरफसे सफेद पत्ररूप वस्त्रको खींचने वाले वायुकी लतामें सम्बद्ध भ्रमण वा विलास से युक्त फूलों में कम्पन आदि क्रीडा वा कामक्रीडाओं को देखकर नलने आँखों को मूँद लिया।

टिप्पणी:- हठाऽऽक्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदावृतेः = हठेन आक्षिप्ता (तृ०त०)। तुषारेण पाण्डराः (तृ०त०), तुषारपाण्डराश्च ते छदाः (क०धा०)। तुषारपाण्डरच्छदानाम् आवृतिः (ष०त०)। हठाक्षिप्ता तुषारपाण्डुरच्छदावृतिः येन, तस्य (बहु०)। नद्धविभ्रमाः = नद्धा विभ्रमाः (भ्रमणानि विलासा वा) यासां ताः (बहु०)। कुसुमेषुकेलयः = कुसुमानि इषवः (बाणाः) यस्य सः कुसुमेषुः (बहु०), कुसुमेषोः केलयः (ष०त०)। मिलन्निमीलं मिलन् निमीलः यस्य, तम् (बहु०)। विदधुः = वि+धा+लिट्+झि (उस्)।

अलंकार:- समासोक्ति अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

> **यता यदुत्सङ्गतले विशालतां**
> **द्रुमाः शिरोभिः फलगौ रवेण ताम्।**
> **कथं न धात्रीमतिमात्रनामितैः स**

वन्दमानानभिनन्दति स्म तान्।।98।।

अन्वयः:- द्रुमाः यदुत्सङ्गतले विशालतां गताः, तां धात्रीं फलगौरवेण अतिमात्रनामितैः शिरोभिः वन्दमानान् तान् स कथं न अभिनन्दति स्म?।

व्याख्या:- द्रुमाः = वृक्षाः, यदुत्सङ्गबले = यदुपरिदेशे, यदङ्कतले च, विशालतां = विवृद्धिं, गताः = प्राप्ताः तां = धात्रीं, भुवं च, फलगौरवेण = फलभारेण, धर्माऽतिशयेन च हेतुना, अतिमात्रनामितैः = अतिशयप्रह्वीकृतैः, शिरोभिः = अग्रभागैः, उत्तमाङ्गैश्च, वन्दमानान् = स्पृशतः, अभिवादयमानांश्च, ताम् द्रुमान्, सः = नलः, कथं = केन प्रकारेण न अभिनन्दति स्म = अस्तौषीत्, अभिनन्द एवेति भावः। द्रुमाणां क्षेत्राऽनुरूपफलसम्पत्तिमपत्यानां मातृभक्तिं च को नाम नाऽभिनन्दतीति भावः।

अनुवाद:- पेड़ जिन (धरती) के गोदमें विशाल हो गये उन (माता) को फलोंके भारसे अत्यन्त झुके हुए शिरों (अग्र भागों) से अभिवादन करते हुए उन (पेड़ों) को नल कैसे अभिनन्दन नहीं करते थे ?।

टिप्पणी:- यदुत्सङ्गतले = उत्सङ्गस्य तलम् (ष०त०), यस्या उत्सङ्गतलं तस्मिन् (ष०त०)। विशालतां = विशालस्य भावो विशालता ताम् विशाल + तल + टाप् + अम्। धात्रीं धयन्ति याम् इति फलगौरवेण = फलानां गौरवं, तेन (ष०त०)। अतिमात्रनामितैः = अतिमात्रं नामितानि, तैः (सुप्सुपा०)। वन्दमानान् = वन्दन्त इति वन्दमानाः, तान्, वदि + लट् (शानच्) + शस्। अभिनन्दति = अभि + नदि + लट् + तिप्।

अलंकार:- समासोक्ति अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

नृपाय तस्मै हिमितं वनाऽनिलै
सुधीकृतं पुष्परसैरहर्महः।
विनिर्मितं केतकरेणुभि सितं
वियोगिनेऽधत्त न कौमुदीमुदः।।99।।

अन्वयः:- वनाऽनिलैः हिमितं, पुष्परसैः सुधीकृतं, केतकरेणुभिः सितं विनिर्मितम् अहर्महः (एव) कौमुदी वियोगिने तस्मै नृपाय मुदः न अधत्त।

व्याख्या:- वनाऽनिलैः = उद्यानवातैः, हिमितं = हिम (शीतलं) कृतम् षुष्परसैः = कुसुमरसैः, मकरन्दैरित्यर्थः, उपवनवाताऽऽनीतैरिति शेषः। सुधीकृतम् = अमृतीकृतं, तथा केतकरेणुभिः = केतकीपुष्परजोभिः, सितं = शुक्लं, विर्निर्मितं = कृतम्, इत्थं च - अहर्महः दिनतेजः आतप एव, कौमुदी = चन्द्रिका, वियोगिने = विरहिणे, तस्मै = पूर्वोक्ताय, नृपाय = नरेशाय, नलायेति भावः। मुदः = हर्षान् न अधत्त = न कृतवती, प्रत्युत उद्दीपनमेव चकारेति भावः।

अनुवाद:- उद्यानकी हवाओंसे ठण्डा किया गया, फूलोंके रससे अमृतके समान किया गया, केतकी पुष्पोंके परागोंसे सफेद बनाया गया प्रकाश ही चाँदनीने वियोगी नलको हर्षप्रदान नहीं किया।

टिप्पणी:- वनाऽनिलैः = वनस्य अनिलाः, तैः (ष०त०)। पुष्परसैः = पुष्पाणां रसाः, तैः (ष०त०)। सुधीकृतम् = असुधा सुधा यथा संपद्यते तथा कृतम्, सुधा + च्वि + कृ + क्तः। केतकरेणुभिः = केतक्या विकाराः (पुष्पाणि) केतकानि, केतकानां रेणवः, तैः (ष०त०) विनिर्मितं वि + निर् + मा + क्तः। अहर्महः = अह्नः महः (ष०त०) अधत्त = धा + लङ् + त।

अलंकार:- रूपक अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

वियोगभाजोऽपि नृपस्य पश्यता
तदेव साक्षादमृतांऽशुमाननम्।

पिकेन रोषाऽरुणचक्षुषा मुहुः
कूहूरुताऽऽहूयत चन्द्रवैरिणी।।100।।

अन्वयः-वियोगभाजः अपि नृपस्य तत् आननम् एव साक्षात् अमृतांऽशुं पश्यता (अतएव) रोषाऽरुणचक्षुषा पिकेन कुहूरुता चन्द्रवैरिणी मुहुः आहूयत।

व्याख्याः- वियोगभाजः अपि = वियोगिनः अपि, नृपस्य = राज्ञः, नलस्येत्यर्थः। तत्, आननम् एव = मुखम् एव, साक्षात् = प्रत्यक्षम्, अमृतांऽशुं = चन्द्रं, पश्यता = विलोकयता, अत एव रोषाऽरुणचक्षुषा = कोपरक्तनयनेन, वियोगेऽप्ययं चन्द्रतां न मुञ्चतीति रोषहेतुर्बोद्धव्यः। पिकेन = कोकिलेन, कूहूरुता = कुहूशब्देन, अमावास्यावाचकशब्देन वा, चन्द्रवैरिणी = कुहूः, अमावास्या इति भावः। मुहुः = वारं वारम्, आहूयत = आहूता (किम्)।

अनुवादः- वियोगी होनेपर भी नलके मुखको ही प्रत्यक्ष चन्द्र देखते हुए और क्रोधसे लाल नत्रोंवाले कोयलने कुहू (स्वाभाविक वा अमवास्यावाचक) शब्दसे चन्द्रकी वैरिणी अमावास्याको वारंवार बुलाया।

टिप्पणीः- वियोगभाजः = वियोगं भजतीति वियोगभाक्, तस्य (वियोग + भज + ण्विः ङस्)। अमृतांऽशुम् = अमृतम् इव अंशुः यस्य सः, तम् (बहु०)। पश्यता = पश्यतीति पश्यन्, तेन, दृश् + (पश्य) + लट् (शतृ) + टा। रोषाऽरुणचक्षुषा = अरुणे चक्षुषी यस्य सः (बहु०)। रोषात् (इव) अरुणचक्षुः, तेन (ष०त०), कुहूरुता = कुहूश्चाऽसौ रुत् कुहूरुत् तया (क०धा०)। चन्द्रवैरिणी = चन्द्रस्य वैरिणी (ष०त०)। आहूयत = आङ् + ह्वेञ् + लङ् + त (कर्ममें)।

अलंकारः- सङ्कर अलङ्कार

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अशोकमर्थाऽन्वितनामताऽऽशया
गताञ्शरण्यं गृहशोचिनीऽध्वगान्।
अमन्यताऽवन्तमिवैष पल्लवैः
प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम्।।101।।

अन्वयः- एष पल्लवैः प्रतोष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् अशोकम् अर्थाऽन्वितनामताशया शरण्यं गतान् गृहशोचिनः अध्वगान् अवन्तम् इव अमन्यत्।

व्याख्याः- एषः = नलः, पल्लवैः = किसलयैः, प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकं = गृहीतमदनदीप्यमानायुधक्षारकम्, अशोकम् = अशोकवृक्षं वञ्जुलाऽपरनामधेयम्, अर्थाऽन्वितनामताऽऽशया = अन्वर्थाभिधानताऽभिलाषेण, अयमशोकः, अतएव शोकरहितोऽस्ति अतः अस्मानपि शोकरहितं करिष्यतीत्याशयेति भावः। शरण्यम् = शरणसाधुं, तम् अशोकमित्यर्थः। गतान् = प्राप्तान्, गृहशोचिनः = गृहम् (पत्नीम्) उद्दिश्य शोकं कुर्वतः, अध्वगान् = पान्थान्, अवन्तम् इव = रक्षन्तम् इव, अमन्यत = ज्ञातवान्।

अनुवादः- नलने पल्लवोंसे कामदेवके जलते हुए अस्त्रोंकी नयी कलियोंको लेनेवाले अशोक वृक्षको उसके नामकी अन्वर्थता (यह अशोक = शोकरहित है, अतः हम लोगोंको भी शोकरहित करेगा) ऐसी आशासे रक्षा करनेमें निपुण विचार कर गये हुए, पत्नीका शोक करनेवाले पथिकोंकी मानों रक्षा कर रहा है ऐसा समझा।

टिप्पणीः- प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकं = ज्वलन्ति च तानि अस्त्राणि ज्वलदस्त्राणि (क०धा०), तेषां जालकानि (ष०त०), कामस्य ज्वलदस्त्रजालकानि (ष०त०)। प्रतीष्टानि कामज्वलदस्त्रजालकानि येन, तम् (बहु०)। अशोकम् = अविद्यमानः शोकः यस्य सः, तम् (नञ्बहु०)। अर्थाऽन्वितनामताऽऽशया =

नाम्नो भावो नामता, नाम+तल्+टाप्। अर्थेन अन्विता (तृ०त०)। अर्थाऽन्विता चाऽसौ नामता (क०धा०), तस्या आशा तया (ष०त०)। शरण्यं = शरणे साधुः शरण्यः, गृहशोचिनः = गृहं शोचन्तीति गृहशोचिनः, तान्, गृह + शुच् + णिनि (उपपद०) + शस्। अवन्तम् = अवतीति अवन्, तम्-अव+लट् (शतृ) + अम्। अमन्यत = मन + लङ् + त।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष यह अभिव्यक्त करते हैं कि राजा नल ने विलासवन में स्थित अशोक वृक्ष को रक्षा करते हुए के सदृश माना—शोकरहित को अशोक कहा जाता है ऐसे सार्थक नाम की आशा से पास में गए हुये अपनी अपनी स्त्रियों के बारे में चिंतामग्न परदेश जाते हुए पथिकों कि, पल्लवों के द्वारा कामदेव के जलते अस्त्र-सदृश कलियों के गुच्छों को छिपाये हुये अथवा लाल-लाल नवीन को कपोलों से कामदेव के जलते हुए अस्त्र को अपने शरीर पर ग्रहण किए हुये शरण में आए हुये, अतएव शरण में आये हुये लोगों के लिए साधु श्रेष्ठ अशोक को राजा नल ने अपने रक्षक के रूप में माना अथवा कामदेव के जलते हुए अस्त्र को स्वीकार कर परदेश गये हुये पथिकों को पल्लवों से मारते हुये अशोक के वृक्ष को राजा नल ने वध करने वालों में श्रेष्ठ माना।

संसार में भी देखने को मिलता है कि सज्जन पुरुष शरण में आए हुए व्यक्ति की रक्षा अवश्य किया करता हैं। चाहे उन्हें उसके शत्रुओं के अस्त्रों के प्रहारों को क्यों न सहन करना पड़े। ऐसे ही अशोक का वृक्ष भी अपने सार्थक नाम से युक्त था। वह अपनी शरण में आए हुए काम बाणों से आहत पथिकों को शोकरहित करने में समर्थ था। अतः राजा नल ने अशोक वृक्ष को सार्थक नाम से प्रयुक्त समझा। अथवा जो पथिक अशोक वृक्ष की शरण में रक्षार्थ गए थे उनको अशोक वृक्ष ने अपनी कलियों के गुच्छों के रूप में विद्यमान कामस्त्रों द्वारा मारा (अर्थात् अशोक वृक्ष के नवीन रक्तवर्ण के पत्तों से आच्छादित कलियों के गुच्छों को देखकर राजा नल की कामपीड़ा और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हुयी) आतः राजा नल ने उस अशोक वृक्ष को वध करने वालों में श्रेष्ठ माना।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.3 राजा नल का वन में स्वागत—

विलासवापीतटवीचिवादनात्
पिकाऽलिगीतेः शिखिलास्यलाघवात्।
वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं,
क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः।।102।।

अन्वयः- विलासवापीतटवीचिवादनात् पिकाऽलिगीतेः शिखिलास्यलाघवात् वने अपि तं तौर्यत्रिकम् आरराध, भाग्यभाक् जनः क्व भोगम् न आप्नोति।

व्याख्या:- विलासवापीतटवीचिवादनात् = विहारदीर्घिकातीरतरङ्गनादात्, पिकाऽलिगीतेः = कोकिलभ्रमरगानात्, शिखिलास्यलाघवात् = मयूरनृत्यनैपुण्यात्, वने अपि = उपवने अपि, तं = नलम्, तौर्यत्रिकं = नृत्यगीतवाद्य=यम्, आरराध = आराधयामास, तथा हि-भाग्यभाक् भाग्यवान्, जनः = लोकः, क्व = कुत्र, स्थाने गृहे वनेऽपिवा इति शेषः, भोगं = सुखं, न आप्नोति = न प्राप्नोति, सर्वत्रैव सुखं प्राप्नोतीति भावः।

अनुवाद:- बिहारकी बावलीके किनारेमें तरङ्गोंके शब्दसे (वादनसे), कोयल और भौंरोके गानेसे, मयूरोंके नृत्यकी निपुणतासे उपवनमें भी महाराज नलकी नृत्य, गीत और वाद्य इन तीनोंने सेवा की। भाग्यवान् जन कहाँ सुखको प्राप्त नहीं करते हैं ?।

टिप्पणी:- विलासवापीतटवीचिवादनात् = विलासस्य वापी, विलासवाप्याः तटम् (ष०त०), वीचीनां वादनम् (ष०त०)। विलासवापीतटे वीचिवादनं तस्मात् (स०त०), सर्व= हेतुमें पञ्चमी। पिकाऽलिगीतेः = पिकाश्च अलयश्च पिकालयः (द्वन्द्वः), तेषां गीतिः, तस्याः (ष०त०) शिलिखलास्यलाघवात् = शिखिनां लास्यम् (ष०त०), शिखिलास्यस्य लाघवं, तस्मात् (ष०त०)। आरराध = आङ् + राध + लिट् + तिप्। भाग्यभाक् = भाग्यं भजतीति भाग्यभाक्, भाग्य + भज् + ण्विः (उप०)। आप्नोति = आप् + लट् + श्नु + तिप्।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष वर्णन करते हैं कि विलासवन में नृत्य, गीत एवं वाद्य रूप संगीत के द्वारा राजा नल की सेवा की गयी—क्रीड़ा संबंधित बावड़ी के किनारे पर तरगों के बजने से कोयलो और भ्रमरों के गाने से तथा मयूरों द्वारा प्रस्तुत किए गए नृत्य चातुर्य से बना में भी उस राजा नल की वादन, गायन तथा नर्तन रूप संगीत ने सेवा की। भाग्यशाली पुरुष कहाँ पर भोग की प्राप्ति नहीं कर पाता है। अर्थात् भाग्यशाली व्यक्ति भोग विलास संबंधी साधनों को सर्वत्र ही प्राप्त कर लिया करता है। यद्यपि विरही राजा नल के लिए हुए सभी भोग साधन आदि कामोद्दीपक ही थे तथापि वन की बावड़ी, वृक्ष एवं प्राणियों द्वारा राजा को राजा को सुख पहुंचाना उनका कर्तव्य था। इस कारण से सभी अपने-अपने कर्तव्य में संलग्न थे। राजा नल अपने महल में कामपीड़ा से संतप्त थे और वे उस उद्यान में विनोदार्थ आये थे। अतएव उद्यान में विद्यमान सभी चर, अचर पदार्थों और प्राणियों का कर्तव्य था कि हुए उनका विरोध करें। इस भॉति यहॉ यह स्पष्ट होता है कि काम पीड़ा की शांति हेतु राजा नल उस उद्यान में पधारे थे किंतु फिर भी वे वहां पर अपनी कामपीड़ा से छुटकारा न प्राप्त कर सके।

अलंकार:- अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

तदर्थमध्यप्य जनेन तद्वने
शुका विमुक्ताः पटवस्तमस्तुवन्।
स्वराऽमृतेनोपजगुश्च शारिका
स्तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः।।103।।

अन्वयः:- जनेन तदर्थम् अध्याप्य तद्वने विमुक्ताः पटवः शुकाः तम् अस्तुवन्; तथैव (तदर्थम् अध्याप्य तद्वने विमुक्तः) तत्पौरुषगायनीकृताः शारिकाः स्वराऽमृतेन उपजगुश्च।

व्याख्या:- जनेन = सेवकजनेन, तदर्थ = नलप्रीत्यर्थम्, अध्याप्य = स्तुतिं पाठयित्वा, तद्वने = तस्मिन् उपवने, विमुक्ताः = विसृष्टाः, पटवः = व्यक्तगिरः, शुकाः = कीराः, तं = नलम्, अस्तुवन् = स्तुतवन्तः, तर्थव = तेन प्रकारेणैव, शुकवत् एव (तदर्थम् अध्याप्य तद्वने विमुक्ताः) तत्पौरुषगायनीकृताः = नलपराक्रमगायनीकृताः, शारिकाः = शुकवध्वः, स्वराऽमृतेन = मधुरस्वरेणेति भावः। उपजगुश्च = उपगीतवत्यश्च, तुष्टुवुश्चेति भावः।

अनुवाद:- सेवकजनसे नलकी प्रीतिके लिए उस वनमें छोड़े गये स्पष्ट शब्दवाले तोतोंने नलकी स्तुति की, उसी तरह नलके पराक्रमकी गायिका बनायी गयी शारिकाओं (मैनाओं) ने मीठी आवाजसे गान किया।

टिप्पणी:- तदर्थ = तस्मै इदम् (च०त०; क्रियाविशेषण)। अध्याप्य = अधि + आङ् + इञ् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)। तद्वने = तच्च तद्वनं, तस्मिन् (क०धा०)। विमुक्ताः = वि + मुच् + क्त + (कर्ममें) टाप् + जस्। तत्पौरुषस्य गायनीकृताः (ष०त०)। स्वराऽमृतेन = स्वरः अमृतम् इव स्वराऽमृतं, उपजगुः = उप + गै + लिट् + झि (उस्)।

अलंकार:- उपमा अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

इतीष्टगन्धाऽऽढ्यमटन्नसौ वनं
पिकोपगीतोऽपि शुकस्तुतोऽपि च।
अविन्दताऽऽमोदभरं बहिः परं
विदर्भसुभ्रूविरहेण नाऽऽन्तरम्।।104।।

अन्वयः:- इति इष्टगन्धाऽऽढ्यं वनम् अटन् असौ पिकोपगीतः अपि शुकस्तुतः अपि च पर बहिः आमोदभरम् अविन्दतः विदर्भसुभ्रूविरहेण आन्तरम् आमोदभरं न अविन्दत।

व्याख्या:- इति = इत्थम्, इष्टगन्धाऽऽढ्यम् = अभीष्टसौरभसम्पन्नं, वनम् = उपवनम्, अटन् = गच्छन, असौ = नलः, पिकोपगीतः अपि = कोकिलगीतिविषयीकृतः अपि, शुकस्तुतः अपि च = कीरस्तुतिविषयीकृतः अपि च, परं = केवलं, बहिः = बाह्यम्, आमोदभरं = सौरभ्याऽतिरेकम्, अविन्दत = अलभत, विदर्भसुभ्रूविरहेण = दमयन्तीवियोगेन, आन्तरम् = अन्तश्चरं, मानसमिति भावः, आमोदभरम = आनन्दाऽतिरेकमिति भावः, न अविन्दत = न अलभत, ।

अनुवाद:- इस प्रकारसे अभीष्ट सौरभसे सम्पन्न उपवनमें भ्रमण करते हुए नलने कोयलके गानेसे और तोतेकी स्तुतिसे भी केवल बाहरी हर्षविशेषका अनुभव किया, परन्तु दमयनतीके वियोगसे भीतरी हर्षविशेषका अनुभव नहीं किया।

टिप्पणी:- इष्टगन्धाऽऽढ्यम् = इष्टचाऽसौ गन्धः (क०धा०), तेन आढ्यं, तत् (तृ०त०) अटन् = अटतीति, अट + लट् (शतृ) + सु। पिकोपगीतः = पिकैः उपगीतः (तृ०त०)। शुकस्तुतः = शुकैः स्तुतः (तृ०त०)। आमोदभरम् आमोदस्य भरः, तम् (ष०त०) विदर्भसुभ्रूविरहेण = शोभने भ्रूवौ यस्याः सा सुभ्रूः (बहु०) विदर्भाणां सुभ्रूः (ष०त०), तस्या विरहः, तेन (ष०त०)। आन्तरम् = अन्तरे भवः आन्तरः,।

अलंकार:- विशेषोक्ति अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

करेण मीनं निजकेतनं दधद्
द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्कया।
व्यतर्कि सर्वर्तुघने वने मधुं
स मित्रमत्राऽनुसरन्निव स्मरः।।105।।

अन्वयः:- स निजकेतनं मीनं द्रुमाऽऽलवालाम्बुनिवेशशङ्कया करे दधत् सर्वर्तुघने अत्र वने मित्रं मधुम् अनुसरन् स्मर इव व्यतर्कि।

व्याख्या:- सः = नलः, निजकेतनं = स्वलाञ्छनं, मीनं = मत्स्यं, द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्क्या = वृक्षाऽऽवापजलप्रवेशभीत्या, करेण = हस्तेन, दधत् = धारयन्, मत्स्यरेखाच्छलेन दधानं इति भावः। सर्वर्तुघने = सकलर्तुसङ्कुले, अत्र = अस्मिन्, वने = उपवने, मित्रं = सखायं, मधु = वसन्तम्, अनुसरन् = अन्विष्यन्, स्मर इव = कामदेव इव, व्यतर्कि = वितर्कितः ।

अनुवाद:- नलको अपने चिह्न मत्स्यको वृक्षोंके आलवालके जलमें घुसनेके भयसे हाथसे धारण करते हुए, सब ऋतुओंसे परिपूर्ण इस उपवनमें अपने मित्र वसन्त ऋतुओंको ढूँढ़नेवाले कामदेवके समान लोगोंने तर्कना की।

टिप्पणी:- निजकेतनं = निजं च तत् केतनं तत् (क०धा०)। द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्क्या = द्रुमाणाम् आलवालानि (ष०त०)। द्रुमालवालानाम् अम्बु (ष०त०), सर्वर्तुघने = सर्वे च ते ऋतवः (क०धा०), तैः धनं, तस्मिन् (तृ०त०)। अनुसरन्, अनुसरतीति, अनु + सृ + लट् (शतृ०)। व्यतर्कि = वि + तर्क + लुङ् + त (कर्ममें)।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरु
प्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः।
असेवताऽमुं मधुगन्धवारिणि
प्रवीतलीलाप्लवनो वनाऽनिलः।।106।।

अन्वयः- लताऽबलालास्यकलागुरुः तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनः वनाऽनिलः अमुम् असेवत।

व्याख्या:- लताऽबलालास्यकलागुरुः = वल्लीवधूनृत्यविद्याशिक्षकः, एतेन मान्द्योक्तिः प्रतीयते। तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः = वृक्षपुष्पसौरभसमूहचोरः, एतेन सौरभ्यं प्रतीयते। एवं च मधुगन्धवारिणि = मकरन्दगन्धोदके, प्रणीतलीलाप्लवनः = कृतविलासाऽवगाहनः, अनेन शैत्यं व्यज्यते। तादृशः वनाऽमिलः = उपवनवातः, अमुं = नलम्, असेवत = सेवितवान्।

टिप्पणी:- लताऽबलालास्यकलागुरुः = लता एव अबलाः (रूपक०)। लास्यस्य कलाः (ष०त०)। लताऽबलानां लास्यकलाः (ष०त०), तासु गुरुः (स०त०)। तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः = तरूणां प्रसूनानि (ष०त०), तेषां गन्धाः (ष०त०), तेषाम् उत्कराः (ष०त०)। तरुप्रसूनगन्धोत्कराणां पश्यतोहरः (ष०त०)। मधुगन्धवारिणि = गन्धपूर्णं वारि गन्धवारि (मध्यपदलोपी स०)। मधु एव गन्धवारि, तस्मिन् (रूपक०)। प्रणीतलीलाप्लवनः = लीलया प्लवनं (तृ०त०), प्रणीतं लीलाप्लवनं येन सः (बहु०)। वनाऽनिलः = वने अनिलः (स०त०)। असेवत = सेव + लङ् + त।

अलंकार:- रूपक अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.4 सरोवर वर्णन—

अव स्वमादाय भयेन मन्थना-
च्चिरत्नरत्नाऽविकमुच्चितं चिरात्।
निलीय तस्मिन्निवसन्नपानिषि
वने तडागो ददृशेऽवनीभुजा।।107।।

अन्वयः- अथ मन्थनात् भयेन चिरात् उच्चितं चिरत्नरत्नाऽधिकं स्वम् आदाय तस्मिन् वने निलीय निवसन् अपा निधिः इव तडागः अवनीभुजा ददृशे।

व्याख्या:- अथ = वनाऽवलोकनाऽनन्तरं, मन्थनात् = मथनात्, भयेन = भीत्या, धनाऽर्थं पुनर्मथिष्यतीति भिया इति भावः। चिरात् = बहुकालात्, उच्चितं = सञ्चितं, चिरत्नरत्नाऽधिकं = चिरन्तनश्रेष्ठवस्तुप्रचुरं, स्वं = धनम्, आदाय = गृहीत्वा, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, वने = उपवने, निलीय = तिरोहितीभूय, निवसन् = वर्तमानः, अपांनिधिः = समुद्रः (इव), तडागः = पद्माकरः, सरोविशेष इति भावः, अवनीभुजा = राज्ञा, ददृशे = दृष्टः।

अनुवाद:- तब फिर मन्थन होनेके डरसे बहुत समयसे सञ्चित प्राचीन श्रेष्ठ वस्तुओंसे प्रचुर धन लेकर उस उपवन में छिपकर रहते हुए समुद्रके समान तालाब को राजा नलने देखा।

टिप्पणी:- मन्थनात् = मन्थ + ल्युट + ङसि। उच्चितम् = उद् + चिञ् + क्त + अम्। चिरत्नरत्नाऽधिकं = चिरात् भवानि चिरत्नानि, चिरत्नानि च तानि रत्नानि (क०धा०), चिरत्नरत्नैः (ऐरावतादिभिः) अधिकः, तम् (तृ०त०)। आदाय = आङ् + दा रु क्त्वा (ल्यप्)। निलीय नि + ली + क्त्वा (ल्यप्),

निवसत् = नि + वस रु लट (शतृ) + सु। अवनीभुजा = अवनीं भुनक्तीति अवनीभुक्, तेन, अवनी + भुज् + क्विप् (उपपद०) + टा। ददृशे = दृशरु + लिट् (कर्ममें) + त।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

पयोनिलीनाऽभ्रमुकामुकावली
रदाननन्तारगपुच्छसच्छवीन्।
जलाऽर्धरुद्धस्य तटाऽन्तभूमिदो
मृणालजालस्य निभाद् बभार यः।।108।।

अन्वयः:- यः जलाऽर्धरुद्धस्य तटाऽन्तभूमिदः मृणालजालस्य निभात् अनन्तोरगपुच्छसच्छवीन् पयोनिलीनाऽभ्रमुकामुकावलीरदान् बभार।

व्याख्या:- अथ श्लोकनवकेन तडागस्य पयोधिधर्मत्वं प्रतिपादयति-पयोनिली नेत्यादिभिः। यः = तडागः, जलाधरुद्धस्य = सलिलाऽर्धच्छन्नस्य, तटाऽन्तभूमिदः तीरान्तभूमिनिर्गतस्य, मृणाजालस्य = बिसवृन्दस्य, निभात् = व्याजात्, अनन्तोरगपुच्छसच्छवीन् = शेषाऽहिलाङ्गूलतुल्यवर्णान्, शुक्लवर्णानिति भावः। पयोनिलीनाऽभ्रमुकाऽऽवलीग्दान् = जलमग्नैरावतश्रेणीदन्तान्, बभार = धारयामास, समुद्रे त्वेक एवैरावतः, अ= त्वसख्या एवैरावता इति भावः।

अनुवाद:- जो तालाब जलसे अर्ध आच्छादित तीरके समीपकी जमीनसे निकले हुए मृणालसमूहके बहानेसे शेषनागके पुच्छके समान कान्तिवाले, जलमें छिपे हुए ऐरावतोंके दाँतोंको धारण करता था।

टिप्पणी:- जलार्धरुद्धस्य = अर्ध (यथा तथा) रुद्धम् (सुप्सुपा०) जलेन अर्धरुद्धं, तस्य (तृ०त०)। तटाऽन्तभूमिदः = तटस्य अन्तः (ष०त०), तस्मिन् भूः (स०त०), तां भिनत्तीति, तस्य, तटाऽन्त + भू + भिद् + क्विप् (उपपद०)। मृणालजालस्य = मृणालानां जालं, तस्य (ष०त०)। अनन्तोरगपुच्छसच्छवीन् = अतन्तश्चाऽसौ उग्गः (क०धा०), अनन्तोरगस्य पुच्छम् (ष०त०), समाना छविः येषां ते सच्छवयः (बहु०) अनन्तोरगपुच्छेन सच्छवयः, तान् (तृ०त०)। पयोनिलीनाऽभ्रमुकावलीरदान् पर्यांस निलीनाः (स०त०)। अभ्रमोः कामुकाः (ष०त०), तेषाम् आवल्यः (ष०त०)। बभार = भृञ् + लिट् + तिप्। इस पद्यमें उपमा और कैतवाऽपह्नुति इन दोनों का अङ्गाऽङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

तटाऽन्तविश्रान्ततुरंगमच्छटा-
स्फुटाऽनुबिम्बोदयचुम्बनेन यः।
बभौ चलद्वीचिकशाऽन्तशातनैः
सहस्रमुच्चैःश्रवसामिव श्रयन्।।109।।

अन्वयः:- यः तटाऽन्तविश्रान्ततरंगमच्छटास्फटाऽनुबिम्बोदयचुम्बनेन वीचिकशाऽन्तशातनैः चलत् उच्चैःश्रवसां सहस्र श्रयन् इव बभौ।

व्याख्या:- यः = तडागः, तटाऽन्तविश्रान्ततुरगमच्छटास्फुटाऽनुबिम्बोदयचुम्बेन = तीरप्रान्तस्थितनलाऽश्वश्रेणीप्रकट गतिबिम्बोत्पत्तिसम्बन्धेन, वीचिकशाऽन्तशातनैः = तरङ्गाऽश्वताडनीप्रान्तताडनैः, चलत् = स्फुरत्, उच्चैःश्रवसाम् = उच्चैःश्रवो नामकमहेन्द्रऽश्वानां, सहस्रं = दशशतीं, बाहुल्यमिति भावः। श्रयन् इव = प्राप्नुवन् इव, बभौ = शुशुभे।

अनुवाद:- जो तालाब तीरके प्रान्तमें विश्राम करते हुए घोड़ोंके प्रतिबिम्बों के सम्बन्धसे तरङ्गरूप चाबुकोंके प्रहारों से चलते हुए हजारों उच्चै श्रवाओं को धारण करते हुएके समान शोभित होता था।

टिप्पणी:- तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटाऽनुबिम्बोदयचुम्बनेन = तटस्य अन्तः (ष०त०) तस्मिन् विश्रान्ताः (स०त०)। तुरङ्गमाणां छटाः (ष०त०)। तटान्तविश्रान्ताश्च ताः तुरङ्गमच्छटाः (क०धा०), अनुबिम्बोदय, चुम्बनम (सुप्सुपा०)। वीचिकशानाम् अन्ताः (ष०त०), तैः शातनानि, तैः (तृ०त०)। चलत् = चल + लट् + (शतृ)। इस पद्यमें ''वीचिकशा' इस अंशमें रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, उत्प्रेक्षासे नलके घोड़ोंकी इन्द्रके अश्व उच्चैःश्रवा से समता व्यङ्ग्य होती है इस प्रकारसे अलङ्कार से वस्तुध्वनि है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

सिताऽम्बुजानां निवहस्य यश्छला
द्बभावलिश्यामलितोदरश्रियाम्।
तमः समच्छायकलङ्कमङ्कुलं
कुलं सुधांऽशोर्बहुलं वहन्बहु।।110।।

अन्वय:- यः अलिश्यामलितोदरश्रियां सिताऽम्बुजानां निवहस्य छलात् तमः समच्छायकलङ्कसङ्कलं बहुलं सुधांऽशोः कुलं बहन बहु बभौ।

व्याख्या:- यः = तडागः, अलिश्यामलितोदरश्रियां = भ्रमरश्यामीकृतमध्यशोभानां, सिताऽम्बुजानां = श्वेतकमलानां, पुण्डरीकाणामित्यर्थः, निवहस्य = समूहस्य, छलात् = कैतवात्, तमः समच्छायकलङ्कमङ्कलं = तिमिरवर्णलाञ्छनव्याप्तं, बहुलं = प्रचुरं, सुधांशोः = चन्द्रमसः, कुलं = समूहं, वहन् = धारयन् समम्, बहु = अधिकं बभौ = शुशुभे।

अनुवाद:- जो तालाब मध्यमें भौंरोंसे श्यामवर्णवाली शोभासे सम्पन्न श्वेत कमलोंके छलसे श्यामवर्णवाले कलङ्कोंसे व्याप्त बहुतसे चन्द्रोंको धारण करता हुआ अधिक शोभित था।

टिप्पणी:- अलिश्यामलितोदरश्रियाम् = स्यामला कृता श्यामलिता, अलिभिः श्यामलिता (तृ०त०)। उदरस्य श्रीः (ष०त०)। अलिश्यामलिता उदरश्रीः येषां तानि अलिश्यामलितोदरश्रीणि, तेषाम् (बहु०), सिताऽम्बुजानां = सितानि च तानि अम्बुजानि, तेषाम् (क०धा०)। तमःसमच्छायकलङ्कसंकुलं = तमसा समा (तृ०त०), सा छाया (कान्तिः) येषां ते तमः समच्छायाः (बहु०), ते च ते कलङ्काः (क०धा०), तैः सङ्कुलं, तत् (तृ०त०)। सुधांऽशोः = सुधा (युक्ता) अंशवः यस्य स सुधांऽशुः, तस्य (बहु०)। वहन् = वह + लट् (शतृ) + सु। बहु क्रियाविशेषण है बभौ = भा + लिट् + तिप् (णिल्)।

विशेष:- राजा नल ने उद्यान में स्थित क्रीड़ा सरोवर को देखा। उस सरोवर की शोभा का वर्णन प्रस्तुत पद्य में महाकवि हर्ष करते हैं— जो तालाब बीच में भ्रमरों के बैठने के कारण श्याम वर्ण के मध्य भाग से युक्त श्वेत कमलों के समूह के बहाने से अंधकार सदृश (कृष्णवर्ण के) कलंक से युक्त संपूर्ण एवं अनेक चंद्रमा के समूह को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा था।

इस वर्णन में भी यह स्पष्ट किया गया है कि वह तालाब अनेक चंद्रमाओं के सदृश अनेक विकसित श्वेत कमलों से युक्त था। चंद्रमा में कृष्ण वर्ण का कलंक विद्यमान रहा करता है। श्वेतकमलों के मध्य भाग में भी कृष्ण वर्ण के भ्रमर बैठे हुये हैं। अतः उनका बैठना ही कलंक सदृश्य है।

चंद्रमा की उत्पत्ति भी समुद्र से ही हुयी थी। अतः समुद्र चंद्रमा को धारण करने वाला है किंतु में इसकी संख्या केवल एक ही है किंतु इस तालाब में अनेक चंद्रमा श्वेतकमलों के रूप में विद्यमान हैं। अतः यह तालाब समुद्र की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ हुआ।

अलंकार:- सङ्कर अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा

शिलीमुखस्तोमसखेन शार्ङ्गिणा ।
सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवान्-
मृणालशेषाहिभुवान्वयायि यः ।।111।।

अन्वयः- रथाऽङ्गभाजा कमलाऽनुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन मृणालशेषाऽहिभुवा शार्ङ्गिणा सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् यः (अपानिधिः) यथा अन्वयायि (तथैव) रथाङ्गभाजा कमलाऽनुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन मृणालशेषाऽहिभुवा सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् यः अन्वयायि।

व्याख्या:- रथाङ्गभाजा = सुदर्शनचक्रधारिणा, कमलाऽनुषङ्गिणा = कमलासंसर्गवता, शिलीमुखस्तोमसखेन = भ्रमरसमूहसदृशेन, कृष्णवर्णनेत्यर्थः। मृणालशेषाऽहिभूवा = बिससदृशशेषनागाऽऽधारेण, सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् = कमलिनीगुल्मसमूहच्छलात् कमलिनीगुल्मसमूहोऽपि शेषनागसदृशो भवतीति भावः। शार्ङ्गिणा = विष्णुना, यः = अपानिधिः समुद्रः, (यथा = येन प्रकारेण) अन्वयायि = अनुगतः। (तथैव) रथाऽङ्गभाजा = चक्रवाकयुक्तेन कमलाऽनुषङ्गिणा = कमलसंसर्गयुक्तेन, शिलीमुखस्तोमसखेन = अलिकुलसहचरेण, सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् = कमलिनीगुच्छसमूहच्छलात्, मृणालशेषाऽहिभुवा = शेषसदृशबिसाधारेण, सरोजिनीस्तम्बकदम्बेन = कमलिनीगुच्छसमूहेन, सरोजिनीस्तम्बकदम्बे एव मृणालानि भवन्तीति भावः। यः = अपानिधिः, तडागः, अन्वयायि = अनुगतः।

अनुवादः- चक्र (सुदर्शन चक्र) को धारण करनेवाले, कमला (लक्ष्मी) के संसर्गसे युक्त, भ्रमरसमूहके सदृश (कृष्णवर्णवाले), मृणालसदृश (श्वेतवर्ण) शेषनागके ऊपर शयन करनेवाले विष्णुके जैसे समुद्र अधिष्ठित होता है, उसी तरह जो तालाब रथाङ्गों (चक्रवाकों) से युक्त, कमलोंके संसर्गसे युक्त, भ्रमरों के भ्रमणका स्थान, शेषनागके सदृश (सफेद) मृणालोंका आधारभूत कमलिनीगुच्छोंसे अनुगत था।

टिप्पणी:- रथाऽङ्भाजा = रथस्य अङ्ग (ष०त०), चक्रमित्यथः। कमलाऽनुषङ्गिणा = अनुषङ्गः अस्य अस्तीति अनुषङ्गी, अनुषङ्ग + इनिः। कमलया अनुषङ्गी, तेन (तृ०त०) शिलीमुखस्तोमसखेन = शिलीमुखानां स्तोमः (स०त०) तस्य सखा (सदृशः) तेन (ष०त०), मृणालशेषाऽहिभुवा = शेषश्चाऽसौ अहिः (क०धा०)। सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् = सरोजिनीनां स्तम्बाः (ष०त०) सरोजिनीस्तम्बानां कदम्बं (ष०त०), तस्य कैवतं, तस्मात् (ष०त०)। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति उपमा और श्लेष इन अलङ्कारोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.5 जलाशय की समुद्ररूपता का वर्णन—

तरङ्गिणीरङ्कजुषः स्ववल्लभा
स्तरङ्गरेखा बिभराम्बभूव यः।
दरोद्गतैः कोकनदौधकोरकै-
र्धृतप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयश्च यः।।112।।

अन्वयः- यः अङ्कजुषः तरङ्गरेखाः (एव) स्ववल्लभाः तरङ्गिणीः बिभराम्बभूव। (किञ्च) यः दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकैः घृप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयश्च (अस्ति)।

व्याख्या:- यः तडागः, अपां निधिरिव इति शेषः। अङ्कजुषः = निकटवर्तिनोः, उत्सङ्गसङ्गिनश्च, तरङ्गरेखाः = भङ्गराजीः (एव, स्ववल्लभाः = निजप्रियाः, तरङ्गिणीः = नदीः बिभराम्बभूव धारयामास। (किञ्च) यः = तड़ागः, दरोद्गतैः = ईषदुद्बुद्धैः, कोकनदौघकोरकैः = रक्तोत्पलसमूहकलिकाभिः, धृतप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयश्च = गृहीतविद्रुमाङ्कुरनिकरश्च, ।

अनुवादः- जैसे समुद्र गोदमें रहनेवाली अपनी प्रियाओं नदियोंको धारण करता है वैसे ही जो तालाब अपने पासमें रहनेवाली तरङ्गरेखारूप अपनी प्रियाओंको धारण कर रहा था। जैसे समुद्र विद्रमों (मूगों) के समूहको धारण करता है वैसे ही जो तालाब कुछ खिली हुई लाल कमलोंकी कलियोंको धारण कर रहा था।

टिप्पणी:- तरङ्गरेखाः = तरङ्गाणां रेखाः, ताः (ष०त०), एव स्ववल्लभाः = स्वस्य वल्लभाः, ताः (ष०त०)। कोकनदौधकोरकैः = कोकनदानाम् ओघाः (ष०त०), कोकनदौघानां कोरकाः तैः (ष०त०)।

अलंकार:- रूपक अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

महीयसः पङ्कजमण्डलस्य
श्छलेन गौरस्य च मेचकस्य च।
नलेन मेने सलिले निलीनयोस्त्विषं
विमुञ्चन्विधुकालकूटयोः।।113।।

अन्वयः- यः महीयसः गौरस्य मेचकस्य च पङ्कजमण्डलस्य छलेन सलिले निलीनयोः विधुकालकूटयोः त्विषं विमुञ्चन् (इव) नलेन मेने।

व्याख्या:- यः = तडागः, महीयसः = महत्तरस्य, गौरस्य = श्वेतस्य, मेचकस्य च नीलस्य च, पंकजमण्डलस्य = कमलसमूहस्य, शुक्लनीलकमलयोरिति भावः। छलेन = कैतवेन, सलिले = जले, निलीनयोः = निमग्नयोः, विधुकालक्टयोः = चन्द्रकालकूटविषयोः सिताऽसितयोः, त्विषं = कान्तिं, विमुञ्चन् = विसृजन्, (इव) नलेन = नैषधैन, मेने = संभावितः।

अनुवाद:- जिस तालाबको बड़ेसे सफेद और नीले कमलसमूहके बहानेसे जलमें डूबे हुए चन्द्रमा और कालकूट विषकी कान्तिको छोड़ते हुएके समान नलने सम्भावना की।

टिप्पणी:- महीयसः = अतिशयेन महत् महीयः, तस्य, महत् + ईयसुन् + ङस्। पंकजमण्डलस्य = पंकजानां मण्डलं, तस्य (ष०त०), निलीनयोः = नि + ली + क्त + ओस्। विधुकालकूटयोः = विधुश्च कालकूटं च, तयोः (द्वन्द्वः)। विमुञ्चन् = विमुञ्चतीति, वि + मुच् + लट् (शतृ) + सु।

विशेष:- पद्य में महाकवि श्रीहर्ष राजा नल द्वारा देखे गए सरोवर की शोभा का वर्णन करते हुए उसे समुद्र सदृश बतलाते हैं— जिस प्रकार समुद्र श्वेतवर्ण के चंद्रमा और कृष्णवर्ण के कालकूट नामक विष से युक्त हैं उसी प्रकार यह तालाब भी श्वेत तथा नीलवर्ण के कमल समूह के विद्यमान होने के से चंद्रमा तथा कालकूट नामक विष से युक्त था।

चंद्रमा तथा कालकूट विष दोनों ही पदार्थ समुद्रमंथन के समय समुद्र से निकले थे कहने का तात्पर्य यह है कि इस इन दोनों की उत्पत्ति स्थान समुद्र ही है। अर्थात् दोनों ही पदार्थों से युक्त समुद्र ही है। उसी प्रकार श्वेत कमलरूपी चंद्रमा से तथा नीलकमल रूपी कालकूट नामक विष से यह तालाब भी युक्त है।

अलंकार:- संकर अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

चलीकृता यत्र तरङ्गरिङ्गणै-
रबालशैवाललतापरम्पराः।
ध्रुवं दधुर्वाडवहव्यवाडव
स्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमताम्।।114।।

अन्वयः- यत्र तरङ्गरिङ्गणैः चलीकृता अबालशैवाललतापरम्पराः वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमतां दधुः ध्रुवम्।

व्याख्या:– यत्र = यस्मिन्, तडाग इति भावः। तरंगङ्गिणैः = भंगकम्पनैः, चलीकृताः = चञ्चलीकृताः, अबालशैवाललतापरम्पराः = कठोरजलनीलीवल्लीपङ्क्तयः, वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमतामं = वडवाऽनलाऽवस्थानबहिःप्रादुर्भवत्तमबाहुल्यधमतां, दधुः = धारयामासुः, ध्रुवम् = इव।

अनुवाद:- जिस तालाबमें तरंगोंके कम्पनसे चञ्चल बनाई गयी कठोर सेवारकी लताएँ नीचे वडवाग्निकी स्थितिसे प्रादुर्भूत होनेवाले धूमकी बहुलताको मानों धारण कर रहीं थीं।

टिप्पणी:- तरंगरिङ्गणैः = तरङ्गाणां रिङ्गणानि, तैः (ष०त०) चलाकृताः = अचलाः चलाः संपद्यन्ते तथा कृताः, चल+च्वि+कृ+क्त+टाप्+जस्। अबालशैवाललतापरम्पराः = न बालाः अबालाः (नञ् त०)। शैवालानां लताः (ष०त०)। अबालाश्च ताः शैवाललताः (क०धा०), तासां परम्परा, (ष०त०)। वाडवश्चासौ हव्यवाट् (क०धा०), तस्य अवस्थितिः (ष०त०)। प्ररोहत्तमो भूमा येषां ते प्ररोहत्तमभूमानः (बहु०), ते च ते धूमाः (क०धा०)। वाडवहव्यवाडवस्थित्या प्ररोहत्तमभूमधूमाः (तृ०त०), तेषां भावस्तत्ता, ताम् वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूम + तल् + टाप् + अम्। दधुः = धा + लिट् + झि (उस्)।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

प्रकाममादित्यमवाप्य कण्टकैः
करम्बिताऽऽमोदभरं विवृण्वती।
धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा दिवा
सरोजिनी यत्प्रभवाऽप्सरायिता।।115।।

अन्वयः- आदित्यम् अवाप्य कण्टकैः प्रकामं करम्बिता, आमोदभरं विवृण्वती, दिवा धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा यत्प्रभवा सरोजिनी अप्सरायिता।

व्याख्या:- आदित्यं = सूर्यम्, अप्सरःपक्षे-इन्द्रम्; अवाप्य = प्राप्य, कण्टकैः = नालगततीक्ष्णाऽवयवैः, अप्सरःपक्षे-रोमाञ्चैः, प्रकामम् = अत्यर्थं, करम्बिता = दन्तुरिता, अप्सरःपक्षे-युक्ता। आमोदभरं = परिमलसम्पदम्, अप्सरःपक्षे-आनन्दसम्पदं, विवृण्वती = प्रकटयन्ती, दिवा = दिवसे, धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा = गृहीतव्यक्तकमलस्वरूपा, अप्सरःपक्षे-दिवा = स्वर्गेण, धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा = गृहीशोभास्थानशरीरा, स्वर्गलोकवासिनीति भावः, एतादृशी यत्प्रभवा = यत् तडागोत्पन्ना, सरोजिनी = कमलिनी, अप्सरायिता = अप्सरोवत् आचरिता।

अनुवादः - जैसे स्वर्गलोक में रहने वाली अप्सरा इन्द्रको पाकर अत्यन्त रोमांचोंसे युक्त होती है, अतिशय आनन्दको प्रकट करती है वैसे ही जिस तालाबसे उत्पन्न कमलिनी सूर्यको पाकर नालमें स्थित कण्टकोंसे अत्यन्त युक्त होकर अतिशय सुगन्धको प्रकट कर तथा स्पष्ट रूपसे कमलरूप शरीरको धारण करती हुई अप्सरा के समान आचरण करती है।

टिप्पणी:- अवाप्य = अव + आप् + क्त्वा (ल्यप्)। आमोदभरम् = आमोदस्य भरः, तम् (ष०त०)। विवृण्वती = विवृणोतीति, वि = वृञ् + लट् (शतृ) + ङीप् + सु। धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा = श्रियः गृहाणि (ष०त०)। स्फुटानि च तानि श्रीगृहाणि (क०धा०)। धृतानि स्फुटश्रीगृहाणि (पद्मानि) यस्य सः (बहु०), धृतस्फुटश्रीगृहः विग्रहः (स्वरूपम्) यस्याः सा (बहु०) धृतं स्फुटं श्रीगृहं विग्रहः (शरीरम्) यस्याः सा (बहु०) उज्ज्वलशोभायुक्त शरीरवाली यह तात्पर्य है। यत्प्रभवा = प्रभवति अस्मात् इति प्रभवः, इस पद्य में श्लेष और उपमा अलङ्कार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.5 मैनाक पर्वत का वर्णन—

यदम्बुपूरप्रतिबिम्बितायति-
र्मरुत्तरङ्गैस्तरलस्तटद्रुमः ।
निमज्ज्य मैनाकमहीभृतः सत-
स्ततान पक्षान्धुवतः सपक्षताम् ।।116।।

अन्वयः- यदम्बुपूरप्रतिबिम्वताऽऽयतिः मरुत्तरङ्गैः तरलः तटद्रुमः निमज्ज्य सतः पक्षान् धुवतः मैनाकमहीभृतः सपक्षतां ततान।

व्याख्याः- मदम्बुपूरप्रतिबिम्बताऽऽयतिः = यज्जलप्रवाहप्रतिफलिताऽऽयामः, मरुत्तरङ्गैः = वायुचालितोर्मिभिः, तरलः = चञ्चलः, तटद्रुमः = तीरवृक्षः, निमज्ज्यनिमग्नीभूय, सतः = विद्यमानस्य, पक्षान् = पतत्त्राणि, धुवतः = कम्पयतः, मैनाकमहीभृतः = मैनाकपर्वतस्य, सपक्षतां = तुल्यतां, पक्षयुक्ततां च, ततान = विस्तारयामास।

अनुवादः- जिस तालाबके जलप्रवाहमें प्रतिबिम्बित विस्तारवाला, वायु से कम्पित तरङ्गोंसे चञ्चल किनारे का पेड़ डूबकर रहते हुए और पंखों को हिलाते हुए मैनाक पर्वतके समानताका वा पक्षयुक्त भावका विस्तार कर रहा था।

टिप्पणीः- यदम्बुपूरप्रतिबिम्बिताऽऽयतिः = अम्बुनः पूरः (ष०त०) यस्य (तडागस्य) अम्बुपूरः (ष०त०)। प्रतिबिम्बिता आयतिः यस्य सः (बहु०)। यदम्बुपूरे प्रतिबिम्बिताऽऽयतिः (स०त०)। मरुत्तरङ्गैः = मरुतः तरङ्गाः, तैः (ष०त०)। तटद्रुमः = तटे द्रुमः (स०त०)। निमज्ज्य = नि + मस्ज + क्त्वा (ल्यप्)। सतः = अस्तीति सत्, तस्य, अस् + लट् (शतृ) + ङस्। धुवतः = धुवतीति धुवन्।

अलंकारः- उपमा अलङ्कार

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.3.7 हंस का वर्णन—

पयोधिलक्ष्मीमुषि केलिपल्वले रिरंसुहंसीकलनादसादरम्।
स तत्र चित्रं विचरन्तमन्तिके हिरण्मयं हंसमबोधि नैषधः।।117।।
प्रियासु बालासु रतिक्षमासु च द्विपत्रितं पल्लवितं च बिभ्रतम्।
स्मराऽर्जितं रागमहीरुहाङ्कुरं मिषेण चञ्च्वोश्चरणद्वयस्य।।118।।

अन्वयः - स नैषधः पयोधिलक्ष्मीमुषि तत्र केलिपल्वले रिरंसुहंसीकलनादसादरं बालासु रतिक्षमासु च प्रियासु चञ्च्वोः चरणद्वयस्य च मिषेण द्विपत्रितं पल्लवितं च स्मराऽर्जितं रागमहीरुहाऽङ्करं बिभ्रतम् अन्तिके विचरन्तं चित्रं हिरण्मयं हंसम् अबोधि।

व्याख्याः- सः = पूर्वोक्त, नैषधः = नलः, पयोधिलक्ष्मीमुषि = समुद्रशोभाहरे, समुद्रसदृश इति भावः। त = तस्मिन्, केलिपल्वले = क्रीडासरसि, रिरंसुहंसीकलनादसाऽऽदरं = रमणेच्छुवरटामधुरशब्दसस्पृहं, बालासु = आसन्नयौवनासु, अरतिक्षमास्विति भावः। रतिक्षमासु च रमणसमर्थासु, युवतीष्विति भावः। इत्थं द्विविधासु, प्रियासु = वल्लभासु, क्रमात्, चञ्च्वोः = त्रोट्योः चरणद्वयस्य च = पादद्वितयस्य य, मिषेण = छलेन द्विपत्रितं = सञ्जातद्विपत्रं, चञ्च्वोः द्विखण्डत्वेन साम्यादियमुक्तिः, पल्लवितं च = सञ्जातपल्लवत्वं च, चरणयोः विसृमराऽङ्गुलित्वेन पल्लवसाम्यादियमुक्तिः स्मराऽर्जितं = कामोपार्जितं, स्मरेणैव वृक्षरोपणेनोत्पादिति भावः। रागमहीरुहाऽङ्कुरं = अनुरागवृक्षनूतनोद्भिवदं, बिभ्रतं = धारयन्तं, चञ्चुपुटमिषेण द्विपत्रितं बालागोचररागं, चरणमिषेण पल्लवितं युवतिविषये रागं च धारयन्तमिति भावः। अन्तिके = हंसीनिकटे, विचरन्तं = युवतिविषये रागं च धारयन्तमिति भावः।

अन्तिके = हंसीनिकटे, विचरन्तं = गच्छन्तं, चित्रम् = अद्भुतं, हिरण्मयं = सुवर्णमयं, हंसं = चक्राङ्गम्, अबोधि = ज्ञातवान्, अद्राक्षीदिति भावः।

अनुवाद:- महाराज नलने समुद्रकी शोभाका हरण करनेवाले, विहारसरोवरमें रमणकी इच्छा करनेवाली हंसियोंके अव्यक्त मधुर शब्दोंमें अभिलाष करनेवाले, बाला और प्रौढ अपनी प्रियाओंमें दो चोंचों और दो चरणोंके बहानेसे दो पत्तोंसे तथा पल्लवसे युक्त कामदेवसे उपार्जित अनुरागरूप वृक्षके अङ्कुरको धारण करते हुए और हंसियोंके पास जाते हुए अनूठे सुनहरे हंसको देखा।

टिप्पणी:- नैषधः = निषध + अण्। पयोधिलक्ष्मीमुषि = पयोधेः लक्ष्मीः (ष०त०)। तां मुष्णातीति पयोधिलक्ष्मीमुट्, तस्मिन्, पयोधिलक्ष्मी + मुष् + क्विप् + ङि (उपपद०)। केलिपल्वले = केलेः पल्वलं, तस्मिन् (ष०त०)। 'वेशन्तः पल्वलं चाऽल्पसरः'' इत्यमरः। रिरंसुहंसीकलनादसादरं = रन्तुम् इच्छवः रिरंसवः, रम् + सन् + उः। ताश्च ता हंस्यः (क०धा०)। कलश्चासौ नादः (क०धा०), आदरेण सहितः सादरः (तुल्योगबहु०)। रिरंसुहंसीनां कलनादः (ष०त०), तस्मिन् सादरः, तम् (स०त०)। रतिक्षमासु = रतौ क्षमा, तासु (स०त०), स्मराऽर्जितं = स्मरेण अर्जितः, तम् (तृ०त०)। रागमहीरुहांऽङ्कुर = राग एव महीरुहः (रूपक०) तस्य अङ्कुरः, तम् (ष०त०)। बिभ्रतं = भृ + लट् (शतृ) + अम्। हिरण्मयं = हिरण्यस्य विकारः, ।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष वर्णन करते हैं कि राजा नल ने विलासवन में कीड़ा तड़ाग के समीप विचरण करते हुए एक स्वर्णमय हंस देखा—उस राज आनंद नल ने समुद्र की शोभा को चुराने वाले अर्थात् समुद्र के सदृश शोभाधारी उस क्रीड़ा तड़ाग में रमणाभिलाषिणी हंसिनियों के अव्यक्त एवं मधुर शब्द के प्रति अभिलाषा युक्त, किशोरावस्था में विद्यमान वाला, प्रियाओं तथा युवावस्था में विद्यमानसुरत समर्था युवती प्रियाओं में दोनों चोचों तथा दोनों चरणों के बहाने से दो पत्रयुक्त तथा पल्लवयुक्त, कामदेव द्वारा उत्पादित अनुराग रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण किए हुये विचित्र प्रकार के समीप में (कीड़ा सरोवर के पास में अथवा राजा नल के समीप में) विचरण करते हुये अथवा मन्दगति से चलते हुये हंस को देखा।

अलंकार:- उत्प्रेक्षा

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

महीमहेन्द्रस्तमवेक्ष्य स क्षणं
शकुन्तमेकान्तमनोविनोनदिम् ।
प्रियावियोगाद्विधुरोऽपि निर्भरं
कुतूहलाक्रान्तमना मनागभूत् ।।119।।

अन्वयः:- महीमहेन्द्रः स एकान्तमनोविनोदिनं तं शकुन्तं क्षणम् अवेक्ष्य प्रियावियोगात् निर्भर विधुरः अपि मनाक् कुतूहलाक्रान्तमनाः अभूत्।

व्याख्या:- महीमहेन्द्रः = पृथिवीन्द्रः, सः = नलः, एकान्तमनोविनोदिनं = नितान्तचित्ताह्लादकं, तं = पूर्वोक्तं, शकुन्तं = पक्षिणं हंसमित्यर्थः। क्षणं = कश्चित्कालम्, अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, प्रियावियोगात् = दयिताविरहात्, दमयन्तीवियोगादित्यर्थः। निर्भरम् = अतिमात्रं, विधुरः अपि = विह्वलः अपि, मनाक् = ईषत्, कुतूहलाक्रान्तमनाः = कुतूहलाऽन्वितचित्तः, अभूत् = अभवत्, ग्रहीतुकामोऽभूदिति भावः।

अनुवाद:- राजा नल चित्त को अत्यन्त आनन्दित करनेवाले उस पक्षी (हंस) को कुछ समयतक देखकर दमयन्तीके विरहसे अत्यन्त विह्वल होकर भी कुछ कुतूहल से युक्त हो गये।

टिप्पणी:- महीमहेन्द्रः = महांश्चाऽसौ इन्द्रः (क०धा०), मह्यां महेन्द्रः (स०त०)। एकान्तमनोविनोदिनं = मनो विनोदयतीति मनोविनोदी, मनस् + वि + नुद् + णिच् + णिनि (उपपद०)। एकान्तं (यथा तथा)

मनोविनोदी, तम् (सुप्सुपा०)। अवेक्ष्य = अव + इक्ष + क्त्वा (ल्यप्)। प्रियावियोगात् = प्रियाया वियोगः, तस्मात् (ष०त०)। कुतूहलाक्रान्तमनाः आक्रान्तं मनो यस्य सः (बहु०), कुतूहलेन आक्रान्तमनाः (तृ०त०)। अभूत् भू + लुङ् + तिप्।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा
यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा ।
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते
जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ।।120।।

अन्वय:- अवश्यभव्येषु अनवग्रहग्रहा बेधसः स्पृहा यया दिशा धावति तया भृशाऽवशात्मना जनस्य चित्तेन तृणेन वात्या इव अनुगम्यते।।120।।

व्याख्या:- अवश्यभव्येषु = नियमभवितव्येषु विषयेषु अनवग्रहग्रहा = अप्रतिबन्धनिर्बन्धा, निरङ्कुशाऽभिनिवेशेति भावः। वेधसः = ब्रह्मणः, स्पृहा = इच्छा, यया दिशा = येन मार्गेण, धावति = गच्छति, तया = दिशा, भृशा वशात्मना = अत्यर्थपरतन्त्रस्वभावेन, जनस्य = लोकस्य, चित्तेन = मानसेन, तृणेन = अर्जुनेन, वात्या इव = वातसमूह इव, अनुगम्यते = अनुस्रियते, वेधसः स्पृहा कर्म।

अनुवाद:- नियमसे भवितव्य विषयोंमें प्रतिबन्धसे रहित आग्रहवाली ब्रह्माकी इच्छा जिस दिशासे जाती है उसी दिशाको अत्यन्त परतन्त्र स्वभाववाले मनुष्यका चित्त अनुगमन करता है, जैसे कि तृण वायुसमूहका अनुगमन करता है।

टिप्पणी:- अनवग्रहग्रहा = अविद्यमानः अवग्रहः यस्मिन् सः (नञ्बहु०), स ग्रहः यस्यां सा (बहु०) भृशाऽवशात्मना = अवशः (अधीनः) आत्मा (स्वभावः) यस्य सः (बहु०)।

विशेष:- राजा नल क्रीड़ा तड़ाग के समीप विचरण करते हुये एक स्वर्णमय हंस देखा। अत्यधिक कामपीड़ित एवं विरहीराजा के मन में उस हंस को पकड़ने में उत्सुकता उत्पन्न हुई। हंस को पकड़ने की उत्सुकता उत्पन्न होने के कारण को प्रस्तुत पद्य में कवि ने बतलाया है। अवश्यंभावी ब्रह्मा की इच्छा निर्बाधगति से जिस ओर गमन किया करती है उसी और मनुष्य का मन भी वायु समूह से तिनके के समान अनुगमन किया करता है। जैसे तिनके तीव्र वायु के झोंको के साथ उसी ओर गमन किया करती हैं जिस ओर की वायु बहा करती है। इसी प्रकार मनुष्यों का पराधीन मन भी उसी और चला जाया करता है जिस ओर ब्रह्मा की इच्छा का गमन हुआ करता है। राजा नल तो धीरे प्रकृति थे। फिर उनका मन हंस को पकड़ने के लिए चंचल क्यों हो उठा! इस विषय का समाधान कवि ने किया है कि ब्रह्मा की इच्छा अथवा होनहार अत्यन्त प्रबल हुआ करती है। उसे कोई रोक नहीं सकता है। ब्रह्मा की इच्छा के अनुरूप ही मनुष्य भी परवश होकर उसी प्रकार से कार्य में प्रवृत्त हो जाया करता है। अतः राजा नल भी विधाता की इच्छा के आधार पर ही हंस को पकड़ते हुये प्रवृत्त हुये। कहने का तात्पर्य यह है कि अवश्यम्भावी दमयंती के विवाह की अनुकूलता से विधि प्रेरित हंस के विषय में राजा के मन में उत्सुकता उत्पन्न हुयी।

अलंकार:- उपमा अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

4.4- सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप केतकी पुष्प की निन्दा, कोयलों का वर्णन, नागकेसर का वर्णन, पाटल पुष्पों का वर्णन,राजा नल की दशा के वर्णन को सम्यक रूप से जान चुके है।साथ हीमहाकवि श्री हर्ष नेअपने काव्य कौशल से वन्य जीव जन्तुओंको सम्बोधित करते हुए सरोवर, तालाब,

उपवन,मैनाक पर्वत का वर्णन, अगस्त वृक्ष की विशेषता, आदि का वर्णनकिस प्रकार किया है, इन सभी वर्णनों आपने समझा देखा। साथ ही आप यह भी जान चुके है कि इस मार्ग में कौन-कौन सी नदियों,जलाशयों,सरोवरों का वर्णन किया गया है।

4.5- शब्दावली

प्रसूनधन्वा धनुर्मधुस्विन्नकरः = फूलों से निर्मित धनुष वाला कामदेव पुष्पों के मधु से (कामदेव का धनुष पुष्पों से ही निर्मित हुआ करता है अतः पुष्पों से निर्मित धनुष के मधु से)

दोहदधूपिनि = वृक्ष, गुल्म और लताओंमें फूल और फल उत्पन्न होनेके समयसे पूर्व ही फूल और फलोंके उत्पादनके लिए जिस द्रव्यका उपयोग किया जाता है उसे ''दोहद'' कहते हैं।

षुष्परसैः = फूलोंके रससे

4.6- बोध प्रश्न

1- नैषधीयचरीतम् के नायिक का क्या नाम हैं।

क- दमयन्ती

ख- ख-नमयन्ती

ग- ग-भैमी

घ- घ-सैमी

2-नैषधीयचरीतम् के रचियता श्री हर्ष की माता का क्या नाम था।

क-प्रतिमा देवी

ख-प्रतिभा देवी

ग-मामल्ल देवी

घ-मल्लिका देवी

3- मैनाक पर्वत का वर्णन किस सर्ग में है।

क- प्रथम

ख- ख-द्वितीय

ग- ग-तृतीय

घ- घ-चतुर्थ

4-दोहदधूपिनि पद में कौन सा समास है।

क-क०धा०

ख-ष०त०

ग-बहु०

घ- द्वन्द

5-निपीय शब्द में कौन सा प्रत्यय है।

क-क्त्वतु

ख-क्त

ग-ल्यप्

घ-क्त्वा

बोध प्रश्नों के उत्तर—

1-ख

2-ग

3-क

4-क

5-घ

4.7- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय,शारदा निकेतन,वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का आधुनिक इतिहास- डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3.संस्कृत साहित्य की रूप रेखा

4.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा॰ कपिलदेव द्विवेदी

5.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

4.8- अन्य उपयोगी पुस्तकें

1.साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

2.दशरूपक -आचार्य धनंजय

3.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष

4.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रकाशन

4.9- निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजा नल द्वारा उद्यान में देखे हंस का वर्णन कीजिए।

2- किन्ही चार श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

खण्ड – द्वितीय, इकाई – 5
नैषधीयचरितम् के श्लोक संख्या 121 से सर्गान्त पर्यन्त तक
(भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.1- प्रस्तावना

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सत्रार्द्ध द्वितीय प्रश्न पत्र के द्वितीय खण्ड की पंचम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 81 से 120 तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या से परिचित हुवे। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 121 से सर्गान्त पर्यन्त तक भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या को विस्तार से अध्ययन करेंगे साथ ही राजा नल एवं हंस के वार्तालाप वर्णन, प्रमोद वन का वर्णन, हंस विलाप वर्णन को आप प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जानेंगे।

5. 2- उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- ❖ नल एवं हंस के मध्य हो रही वार्तालाप को जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में कौन-कौन से अलंकारों का प्रयोग हुआ है ? यह जान सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में किस छन्द का प्रयोग हुआ है ? यह जान सकेंगे।
- ❖ हंस विलाप वर्णन को रेखांकित कर सकेंगे।

5.3- श्लोक संख्या 81 से 120 तक (भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या)

अथाऽवलम्स्य क्षणमेकपादिकां
तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः।
स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः
पिधाय पक्षेण रतिक्लमाऽलसः।।121।।

अन्वयः - अथ रतिक्लमाऽलसः खगः तदा एकपादिकाम् अवलम्ब्य तिर्यगावर्जितकन्धरः (सन्) पक्षेण शिरः पिधाय उपपल्वलं क्षणं निदद्रौ।।121।।

व्याख्या:- अथ = नलोत्कण्ठोत्पत्यनन्तरं, रतिक्लमाऽलसः = सुरतखेदालस्ययुक्तः, सः पूर्वोक्तः, खगः = पक्षी, हंस इत्यर्थः। तदा = तस्मिन् समये, एकपादिकाम् = एकपादाऽवस्थानक्रियाम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, निर्यगावर्जितकन्धरः = तिर्यगावर्तितग्रीवः (सन्), पक्षेण = पतत्त्रेण, शिरः = मूर्धानं, पिधाय = आच्छाद्य, उपपल्वलं = क्रीडासरोवरनिकटे, क्षणं = कञ्चित्कालं, निदद्रौ = सुष्वाप।

अनुवादः – नल को उत्कण्ठा होने के अनन्तर रमण की ग्लानि से आलस्य युक्त होकर वह पक्षी (हंस) उस समय एक पैर से भूतल का अवलम्बन कर गरदन को टेढ़ा कर पंखे से शिर ढककर तालाब के पास कुछ समय तक सो गया।

टिप्पणी:- रतिक्लमाऽलसः = रतेः क्लमः (ष०त०), तेन अलसः (तृ०त०)। खगः = खे गच्छतीति, ख + गम् + डः। तिर्यगावर्जितकन्धरः = तिर्यक् आवर्जिता कन्धरा येन सः (बहु०)। पिधाय = अपि + धा + क्त्वा (ल्यप्), उपपल्वलं = पल्वलस्य समीपे, समीप अर्थ में अव्ययीभाव। निदद्रौ = नि + द्रा + लिट् + णल (औ)।

अलंकार:- स्वभावोक्ति अलङ्कार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

सनालमात्माऽऽननिर्जितप्रभं
ह्रिया नतं काञ्चनमम्बुजन्म किम् ?।
अबुद्ध तं विद्रुमदण्डमण्डितं

स पीतमम्भःप्रभुचामरं च किम्?।।122।।

अन्वयः- स तम् आत्माऽऽननिर्जितप्रभं ह्रिया नतं सनालं काञ्चनम् अम्बुजन्म किम्? (तथा) विद्रमदण्डमण्डितं पीतम् अम्भःप्रभुचामरं च किम् (इति) अबुद्ध।

व्याख्या- सः = नलः, तं = हंसम्, आत्माऽऽननिर्जितप्रभं = स्वमुखपराजित कान्ति, अतएव ह्रिया = लज्जया, नतं = नम्रं, सनालं = नालसहितम्, एकचरणाऽवस्थानादिति शेषः। काञ्चनं = सौवर्णं, हंसस्य हिरण्मयत्वादिति शेषः। अम्बुजन्म = जलजं, कमलमित्यर्थः, किं किमु, (तथा) विद्रुमदण्डमण्डितं = प्रवालदण्डभूषितं, चरणस्य रक्तत्वादीति शेषः। पीतं = पीतवर्णं हिरण्मयत्वादिति शेषः। अम्भःप्रभुचामरं च = वरुणप्रकीर्णकं च, किं = किमु, इति अबुद्ध = बुद्धवान् उत्प्रेक्षितवानिति भावः।

अनुवादः- नल ने हंस को अपने मुख से पराजित कान्ति वाला अतएव लज्जा से झुका हुआ, नाल से युक्त सुनहला कमल है क्या? अथवा मूँगे के दण्ड से अलंकृत पीला वरुण देव का चामर है क्या ? ऐसा विचार किया।

टिप्पणी:- आत्माननिर्जितप्रभम् = निर्जिता प्रभा यस्य तत् (बहु०)। आत्मनः आननम् (ष०त०), तेन निर्जितप्रभम् (तृ०त०)। नतं = नम् + क्तः। सनालं = नालेन सहितम् (तुल्ययोग बहु०)। काञ्चनं = काञ्चनस्य विकारः। अम्बुजन्म = अम्बुनः जन्म यस्य तत् (व्यधिकरण बहु०)। विद्रुमदण्डमण्डितं = विद्रुमस्य दण्डः (ष०त०), तेन मण्डितम् (तृ०त०)। अम्भ प्रभुचामरम् = अम्भसः प्रभुः (ष०त०), अम्भः प्रभोः चामरम् (ष०त०)।

अलंकार:- सङ्कर

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

कृताऽवरोहस्य हयादुपानहौ
ततः पदे रेजतुरस्य बिभ्रती।
तयोः प्रवालैर्वनयोस्तथाऽम्बुजै
र्नियोद्धुकामे किमु बद्धवर्णमी ?।।123।।

अन्वयः- ततः हयात् कृताऽवरोहस्य अस्य उपानहौ बिभ्रती पदे तयोः वनयोः प्रवालैः तथा अम्बुजैः नियोद्धुकामे (अतः) बद्धवर्मणी रेजतुः किमु ?।

व्याख्या - ततः = हंसदर्शनानन्तरं, हयात् = अश्वात्, कृताऽवरोहस्य = विहिताऽवतरणस्य, अस्य = नलस्य, उपानहौ = पादत्राणौ, वर्मरूपे इति भावः। बिभ्रती = धारयती, पदे = चरणे, तयोः = पूर्वोक्तयोः, वनयोः = विपिनसलिलयोः प्रवालैः = पल्लवैः, तथा = तेन प्रकारेण, अम्बुजैः = कमलैः, नियोद्धुकामे = युद्धकामे, अतः बद्धवर्मणी = सन्नद्धकवचे, रेजतुः = शुशुभाते, किमु।

अनुवाद:- तब घोड़े से उतरने वाले नल के जूतों को पहनने वाले पाँव उपवन और जलके पल्लवों और कमलों से युद्ध करने की इच्छा से कवच पहने हुए हैं क्या ? इस प्रकार शोभित हुए।

टिप्पणी- हयात् = अपादान में पञ्चमी। कृताऽवरोहस्य = कृतः अवरोहः येन, तस्य (बहु०)। उपानहौ = उपनह्येते इति उपानहौ, बिभ्रती = भृ + लट् (शतृ) + औ। नियोद्धुकामे नियोद्धुं कामः ययोस्ते (बहु०)। बद्धवर्मणी = बद्धं वर्म याभ्यां ते (बहु०)। इस पद्यमें श्लेष यथासंख्य और उत्प्रेक्षाका अङ्गाङ्गिभावरूप सङ्कर अलंकार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

विधाय मूर्तिं कपटेन वामनीं
स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम्।
उपेतपार्श्वश्चरणेन मौनिना नृपः

पतङ्गं समधत्त पाणिना।।124।।

अन्वयः- अयं नृपः स्वयं कपटेन वामनीं बलिध्वंसिविडम्बिनीं मूर्तिं विधाय मौनिना चरणेन उपेतपार्श्वः पाणिना पतंगं समधत्त।

व्याख्या- अयम् = एषः, नृपः = राजा, नल इत्यर्थः। स्वयम् = आत्मना, नत्वनुचरेण, कपटेन = छलेन, वामनीं = ह्रस्वां, बलिध्वसिविडम्बिनीं = भगवद्वामनाऽनुकारिणीं, मूर्तिं = शरीरं, विधाय = कृत्वा, शरीरं सङ्कुचयेति भावः। चरणेन = पादेन, उपेतपार्श्वः = आसादित हंससामीप्यः सन्, पाणिना = करेण, पतंगं = पक्षिणं, हंसमिति भावः। समधत्त = जग्राहेत्यर्थः।

अनुवादः- राजा नलने स्वयम् कपट से बलि को छलने वाले विष्णु (वामन) की नकल करनेवाला छोटा शरीर बनाकर शब्दसे रहित चरणसे (दबे पाँव) हंसके पास पहुँचकर हाथसे हंसको पकड़ लिया।

टिप्पणी- वामनीं = वामनस्य इयं वामनी, वाम् वामन + अण् + ङीप् + अम। विधाय = वि + धा + क्त्वा (ल्यप्)। मौनिना मुनेर्भावः मौनम्, मौनम् अस्याऽस्तीति मौनी, तेन, मौन + इनि + टा। उपेतपार्श्वम् = उपेतं पार्श्वं येन सः, तम् (बहु०)। पाणिना = साधकतमं करणम्, इससे करणसंज्ञा होकर तृतीया। समधत्त = सं + धा + लुङ् + त। इस पद्यमें स्वभावोक्ति और उपमाका संसृष्टि अलङ्कार है। पूर्वकालमें भगवान् नारायणने अदितिकी प्रार्थनासे वामन अवतार लेकर त्रिपादपरिमित भूमि की प्रार्थना कर छलपूर्वक बलिको स्वर्गसे हटा दिया था यहाँ पर उसी बातका संकेत है।

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

तदात्तमात्मानमवेत्य संभ्रमात्
पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः।
गतो विरुत्योड्डयने निराशतां
करौ निरोद्धुर्दशति स्म केवलम्।।125।।

अन्वयः - स आत्मानं तदात्तम् अवेत्य संभ्रमात् उत्प्लवाय पुनःपुनः प्रायसत्; उड्डयने निराशतां गतः (सन्) विरुत्य निरोद्धुः करौ केवलं दशति स्म।

व्याख्या - सः = हंसः, आत्मानं = स्वं, तदात्तं = नलगृहीतम्, अवेत्य = ज्ञात्वा, संभ्रमात् = त्वरायाः, उत्प्लवाय = उत्पतनाय, पुनः पुनः = भूयो भूयः, प्रायसत् = प्रयासम् अकार्षीत्, उड्डयने = उत्पतने, निराशतां = नैराश्यं, गतः = प्राप्तः सन्, विरुत्य = विक्रुश्य, निरोद्धुः = ग्रहीतुः, नलस्येति भावः। करौ = हस्तौ, केवलम् = एव, दशति स्म = दष्टवान्।

अनुवादः- उस हंस ने अपने को नलसे पकड़ा गया जानकर घबड़ाहट से उड़नेके लिए बारम्बार प्रयत्न किया, आखिर उड़ने में निराश होकर चिल्लाकर नल के दोनों हाथों को काटने लगा।

टिप्पणी - तदात्तं तेन आत्तः, (तृ०त०)। अवेत्य = अव + इण् + क्त्वा (ल्यप्)। संभ्रमात् हेतुमें पञ्चमी। निराशतां = निर्गता आशा यस्मात् सः (बहु०)। निराशाय भावो निराशता, ताम्, निराश + तल् + टाप्, निरोद्धुः = निरुणद्धीति निरोद्धा, तस्य नि + रुध् + तृण + ङस्। इस पद्य में भी स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

5.3.1 सरोवर में खिले कमलों का वर्णन—

ससंभ्रमोत्पातिपतिपतत्कुलाऽऽकुलं
सरः प्रपद्योत्कतयाऽनुकम्पिताम्।
तमूर्मिलोलैः पतगग्रहान्नृपं
न्यवारयद्वारिरुहैः करैरिव।।126।।

अन्वयः:- ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं सरः उत्कतया अनुकम्पितां प्रपद्य तं नृपम् ऊर्मिलोलैः वारिरुहैः करै इव पतगग्रहात् न्यवारयत्।

व्याख्या- ससं भ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं = सत्वरोत्पतनशीलपक्षिसमूहव्याकुलं, सरः = तडागः, उत्कतया = उत्कण्ठितत्वेन, अनुकम्पितां = दयालुतां, प्रपद्य = प्राप्य, तं = पूर्वोक्तं, नृपं = राजानं, नलमिति भावः। ऊर्मिलोलैः = तरङ्गचञ्चलैः, वारिरुहैः = कमलैः, करैः इव = हस्तैः इव, पतगग्रहात् = पक्षिग्रहणात्, न्यवारयत् इव = निवारितवान् इव।

अनुवाद:- घबड़ाहट के साथ उड़नेवाले पक्षियों से आकुल तालाब, उत्कण्ठित होनेसे दयालु होकर राजा नलको तरंगों से चंचल कमलसदृश हाथोंसे पक्ष को ग्रहण करनेमें मानों रोक रहा है ऐसा मालूम होता था।

टिप्पणी:- ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं = पतन्तीति पतन्तः, पत् + लट् (शतृ । पततां कुलम् (ष०त०)। संभ्रमेण सहितं (तुल्ययोगबहु०)। उत्पततीति उत्पाति, ससंभ्रमोत्पाति च तत् पतत्कुलम् (क०धा०), तेन आकुलम (तृ०त०)। उत्कस्य भाव उत्कता, तया, उत्क + तल् + टाप् + टा। अथवा उद्गतं कं (जलम्) यस्मात् उत्कं (बहु०), तस्य भावः तत्ता तया। पक्षियोंके उड़नेसे जलके हिलनेसे यह तात्पर्य है। अनुकम्पिताम् = अनुकम्पते तच्छीलः अनुकम्पी, अनु = कपि + णिनिः। अनुकम्पिनः भावः अनुकम्पिता ताम्, अनुकम्पिन् + तल् + टाप् + अम्। प्रपद्य प्र + पद् + क्त्वा (ल्यप्)। ऊर्मिलोलैः = उर्मिभिः लोलानि, तैः (तृ०त०)। वारिरुहः = वारिणि रोहन्तीति वारिरुहाणि, पतगग्रहात्-पतगस्य ग्रहः, तस्मात् (ष०त०)। न्यवारयत् = नि + व् + णिच् + तिप्। इस पद्यमें उपमा और ''न्यवारयत्'' यहाँ पर उत्प्रेक्षावाचक इव आदि शब्दके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अंगाङ्गिभाव होने से सङ्कर अलंकार है।

विशेष:- राजा नल ने क्रीड़ा तड़ाग, जिसमें कमल खिल रहे थे, के समीप विचरण करते हुए एक स्वर्णमय हंस को पकड़ लिया। तालाब में खिले हुए कमलों को देखकर कवि प्रस्तुत पद्य में बहुत सुंदर वर्णन करता है— वह तालाब अपने कामरूप हाथों द्वारा उस हंस को पकड़ने से राजा नल को मना कर मना कर रहा था— (अपने सजातीय हंस को पकड़ जाने के कारण) भय से उड़ जाने वाले पक्षीसमूह से व्याप्त (अथवा हंस विषयक उत्कण्ठा के कारण दयालुता को प्राप्त) वह सरोवर तरगों से चंचल कामरूप हाथों के द्वारा उस राजा नल को पक्षियों के पकड़ने से रोका रहा था। राजा ने जब उस हंस को पकड़ लिया तब उस तड़ाग में बिहार करने वाले अन्य सभी हैं पक्षी भय के कारण (कहीं हमकों भी न पकड़ लिया जाए इस भाव से उड़ गए और उड़ते समय उनके पंखों की हवा से उस तालाब का जल चंचल हो गया और तालाब में उत्पन्न हुई लहरों से कमल हिलने डुलने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों कमल रूपी हाथों के हिलने डुलने रूप माध्यम द्वारा यह तालाब ही राजा को पक्षियों के पकड़ने से रोक रहा है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

पतत्त्रिणा तद्रुचिरेण वञ्चितं श्रियः
प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्वलम्।
चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा
चुकूज कूले कलहंसमण्डली।।127।।

अन्वयः:- रुचिरेण पतत्त्रिणा वञ्चितं तत् पल्वलं प्रविहाय प्रयान्त्याः श्रियः चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा कलहंसमण्डली कूले चुकूज।।127।।

व्याख्या- रुचिरेण = सुन्दरेण, पतत्त्रिणा = पक्षिणा, हंसेनेति भावः, वञ्चितं = विरहितं, तत् = पूर्वोक्तं, पल्वलं = तडागं, प्रविहाय = संत्यज्य, प्रयान्त्याः = गच्छन्त्याः, श्रियः = लक्ष्म्याः, चलत्पदाऽम्भोरुहनूपुरोपमा गच्छच्चरणकमलपादाऽङ्गदसाम्ययुक्ता, कलहंसमण्डली = राजहंससंहतिः, कूले = तडागतटे, चुकूज = अव्यक्त शब्दं चकार।

अनुवाद:- सुन्दर पक्षी (राजहंस) से रहित उस तालाबको छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी के चलते हुए चरणकमलोंके नूपुरके सदृश राजहंससमूह किनारे में शोर मचाने लगा।

टिप्पणी:- प्रविहाय = प्र + वि + हा + क्त्वा (ल्यप्)। प्रयान्त्याः = प्रयातीति प्रयान्ती, तस्याः, प्र + या + लट् + शतृ + ङीप् + ङस्। चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा = अम्भसि रोहत इति अम्भोरुहे अम्भस् + रुह + कः। पदे अम्भोरुहे इव (उपमित०)। चली चाते पदाम्भोरुहे (क०धा०), तयोः नूपुरौ (ष०त०), कलहंसमण्डली = कलवाचो हंसाः कलहंसाः (मध्यमपदलोपी स०)। कलहंसानां मण्डली (ष०त०)। चुकूज = ''कूज अव्यक्ते शब्दे'' इस धातुसे लिट् + तिप् (णल्)।

अलंकार:- सङ्कर अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

न वासयोग्या वसुधेयमीदृश-
स्त्वमङ्ग ! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः
खगास्तमाचुकुशुरारवैः खलु ।।128।।

अन्वय:- इयं वसुधा वासयोग्या न, अंग! यस्या उज्झितस्थितिः ईदृशः त्वं पतिः इति खगाः क्षितिं प्रहाय नभ आश्रिताः (सन्तः) तम् आरवैः आचुक्रशुः खलु।

व्याख्या:- इयम् = एषा, वसुधा = पृथिवी, वासयोग्या न = निवासाऽर्हा न, अंग = भो राजन्, यस्याः = वसुधायाः, उज्झितस्थितिः = त्यक्तमर्यादः, ईदृशः = एतादृशः, निरपराधपक्षिग्रहीतेति भावः। त्वं, पतिः = पालकः, असीति शेषः। इति = एवं, कथयित्वा इवेति शेषः। खगाः = पक्षिणः, क्षितिं = वसुधां, प्रहाय = परित्यज्य, नभः = अन्तरिक्षम्, आश्रिताः = प्राप्ताः सन्तः, तं = नलम्, आरवैः = उच्चध्वनिभिः, आचुक्रुशुः = निनिन्दुः (इव), खलु = निश्चयेन।

अनुवाद:- ''यह धरती रहने लायक नहीं है, हे राजन्! मर्यादा छोड़नेवाले आप जैसे जिसके पालक हैं।'' इसी प्रकार पक्षिगण धरती को छोड़कर अन्तरिक्षका आश्रय लेते हुए नलकी उच्च ध्वनियों से निन्दा कर रहे हैं ऐसा मालूम होता था।

टिप्पणी:- वासयोग्या = वासे योग्या (स०त०)। उज्झितस्थितिः = उज्झिता स्थितिर्येन सः (बहु०)। प्रहाय = प्र + हा + क्त्वा (ल्यप्)। आचुक्रुशः = आङ् + क्रुश + लिट् + झि (उस्)। इस पद्यमें ''आचुक्रूशुः'' इस क्रियापदमें उत्प्रेक्षाद्योतक इव आदि पद के अभावसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

न जातरूपच्छदजातरूपता
द्विजस्य दृष्टे'' यमिति स्तुवन्मुहुः।
अवादि तेनाऽथ स मानसौकसा
जनाधिनाथः करपञ्जरस्पृशा।।129।।

अन्वय:- ''इयं जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य न दृष्टा'' इति मुहुः स्तुवन् स जनाऽधिनाथः अथ करपञ्जरस्पृशा तेन मानसौकसा अवादि।।129।।

व्याख्या:- इयम् = ईदृक्, जातरूपच्छदजातरूपता = सुपर्णपक्षोत्पन्नसौन्दर्यता, द्विजस्य = पक्षिणः, न दृष्टा = न विलोकिता, इति = इत्थं, मुहुः = वारंवारं, स्तुवन् = प्रशंसन्, सः = पूर्वोक्तः, जनाऽधिनाथः = नराऽधिपतिः, नल इति भावः। अथ = अनन्तरं, करपञ्जरस्पृशा = हस्तपिञ्जरस्पर्शकारिणा। तेन = पूर्वोक्तेन, मानसौकसा = मानवरोवरवासिना, हंसेनेत्यर्थः। अवादि = उक्तः।

अनुवाद:- ''किसी भी पक्षीमें सुनहले पंखोंका ऐसा सौन्दर्य मैंने नहीं देखा था'' इस प्रकार बारंबार तारीफ करनेवाले राजा नलको पिंजड़े सदृश उनके हाथ में विद्यमान उस हंस ने कहा।

टिप्पणी- जातरूपच्छदजातरूपता = जातं रूपं (सौन्दर्यम्) यस्य सः जातरूपः (बहु०), तस्य भावो जातरूपता, जातरूप + तल् + टाप्। जातरूपस्य छदाः (ष०त०), जातरूपच्छदैः जातरूपता (तृ०त०)। स्तुवन् = स्तौतीति, ष्टु + लट् (शतृ०) + सु। जनाऽधिनाथः = जनानाम् अधिनाथ (ष०त०)। करपञ्जरस्पृशा करः पञ्जरम् इव (उपमित०)। मानसौकसा = मानसम् ओकः (स्थानम्) यस्य स मनसौकाः, तेन (बहु०)। अवादि = वद + लुङ् (कर्म में) + त। इस पद्य में ''करपञ्जरस्पृशा ''इसमें उपमा अलङ्कार है और ''जातरूप'' यहाँ पर यमक अलंकार है-

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः
समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मनः।
तवाऽर्णवस्येव तुषारशोकरै
र्भवेदमीभिः कमलोदयः कियान्?।।130।।

अन्वय:- हेमजन्मनः मम पक्षान् समीक्ष्य तृष्णातरलं भवन्मनः धिक् अस्तुः, तुषारशीकरैः अर्णवस्य इव तव अमीभिः कियान् कमलोदयः भवेत?।।130।।

व्याख्या:- हेमजन्मनः = सौवर्णान्, मम = हंसस्य, पक्षान् = पतत्राणि, समीक्ष्य = दृष्टवा, तृष्णातरलं = लालसाचञ्चलं, भवन्मनः धिक् = त्वच्चितं, धिक्, भवन्मनसो निन्देत्यर्थः। अस्तु = भवतु, तुषारशीकरैः = हिमकणैः, अर्णवस्य इव = समुद्रस्य इव, तव = भवतः, अमीभिः = एभिः, हेमजन्मभिः पक्षैरिति भावः, कियान् = किंपरिमाणः, कमलोदयः-भवतः-कमलायाः = लक्ष्म्याः, समुद्रस्य-कमलस्य = जलस्य, उदयः = वृद्धिः, भवेत् = स्यात्, अतिस्वल्पः स्यादिति भावः।

अनुवाद:- सुनहरे मेरे पंखों को देखकर तृष्णा से चञ्चल आपके मन को धिक्कार हो। हिम कणों से समुद्रको जैसे कितनी जलवृद्धि होगी? वैसे ही मेरे इन सुनहले पंखोंसे आपको कितनी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी ?।

टिप्पणी:- हेमजन्मनः = हेम्नः जन्म येषां ते हेमजन्मानः तान् (व्याधिकरणबहु०)। समीक्ष्य = सम् + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्)। तृष्णातरलं = तृष्णया तरलं तत् (तृ०त०)। अस्तु = अस् + लोट् + तिप्। तुषारशीकरैः = तुषाराणां शीकराः, तैः (ष०त०)।

अलंकार:- संसृष्टि

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

5.3.2 हंस द्वारा राजा की निंदा का वर्णन—

न केवलं प्राणिवधो वधो मम
त्वदीक्षणाद्विश्वसिताऽन्तरात्मनः।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं
विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि।।131।।

अन्वयः- (हे नृप!) त्वादीक्षणात् विश्वसिताऽन्तरात्मनः मम वधः केवलं प्राणिवधः न। विश्वासजुषां द्विषाम् अपि निबर्हणं धर्मजनैः विशिष्य विगर्हितम्।।131।।

व्याख्या- (हे नृप!) त्वदीक्षणात् = भवन्मूर्तिदर्शनात्, विश्वसिताऽन्तरात्मनः = विस्रब्धचित्तस्य, मम = हंसस्य, वधः = व्यापादनं, केवलः प्राणिवधः = जन्तुव्यापादनमात्रं, न = न अस्ति। किन्तु विश्वासजुषां = विस्रम्भभाजां, द्विषाम् अपिः = शत्रूणाम् अपि, निबर्हणं = वधः, धर्मधनैः = धर्मपरैः, मन्वादिभिरिति शेषः। विशिष्य = अतिरिच्य, विगर्हितम् = अत्यन्तनिन्दितम्।

अनुवादः- आपको देखने से विश्वस्त चित्तवाले मेरी हिंसा खाली प्राणिहिंसा नहीं है। विश्वास करनेवाले शत्रुओं की भी हत्याकी धर्मज्ञों ने अत्यन्त निन्दा की है।

टिप्पणी - त्वादीक्षणात् तव ईक्षणं, तस्मात् (ष०त०)। विश्वसिताऽन्तरात्मनः विश्वसितिः अन्तरात्मा यस्य स विश्वसिताऽन्तरात्मा, तस्य (बहु०)। प्राणिवधः प्राणिनः वधः (ष०त०)। विश्वासजुषां विश्वासं जुषन्त इति विश्वासजुषः, तेषाम्, विश्वास + जुष् + क्विप् + आम्। द्विषां द्विषन्ति ते द्विषः, तेषाम्, द्विष् + क्विप् + आम्। विशिष्य वि + शिष् + क्त्वा (ल्यप्)।

विशेष:- राजा नल ने हंस को पकड़ लिया। वह हंस राज नल द्वारा स्वयं को हिंसा किए जाने की आशंका करके राजा की निंदा करता है— हे राजन् ! मैंने तुम्हारे दर्शनमात्र से ही तुम पर विश्वास कर लिया है। फिर ऐसे मुझ जैसे विश्वासी का तुम्हारा द्वारा बध किए जाना केवल जीवहिंसा सा मात्र ही नहीं कही जाएगी अपितु विश्वासघात संबंधी महान् पाप के भी आप भागी होंगे। क्योंकि मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने तो विश्वास में आए हुए शत्रु का वध करना भी अत्यंत निंदनीय कर्म कहा है। फिर मैं तो आपका शत्रु ही नहीं हूं। आपका अपना ही व्यक्ति हूँ तथा आप पर पूर्ण विश्वास भी कर रहा हूँ अत: आप द्वारा मेरा वध किया जाना नितांत अनुचित ही होगा।

अलंकार:- सङ्कर

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा
न तेषु हिंसारस एष पूर्यते?।
धिगोदृशं ते नृपतेः कुविष्क्रर्म
कृपाश्रये यः कृपणे पतत्त्रिणि।।132।।

अन्वयः - रणोद्भटाः मटाः पदे पदे सन्ति, एष हिंसारसः तेषु न पूर्यते? नृपतेः ते इदृशं कुविक्रमं धिक्; यः कृपाऽऽश्रये कृपणे पतत्त्रिणि (क्रियते)।

व्याख्या - रणोद्भटाः = युद्धप्रचण्डाः, भटाः = योधाः, पदे पदे = प्रतिपदं, सन्ति = वर्तन्ते। एशः = अयं, हिंसारसः = वधरागः, तेषु = भटेषु, न पूर्यते = परिपूर्णो न भवति? इति काकुः। नृपतेः = राज्ञः, ते = तव, ईदृशम् = एतादृशम्, अवध्यवधरूपमिति भावः। कुविक्रमं = कुत्सितपराक्रमं, धिक् कुविक्रमस्य निन्देत्यर्थः। यः कुविक्रमः, कृपाऽऽश्रये = करुणाविषये, कृपणे = दीने, पतत्त्रिणि = पक्षिणि, क्रियत इति शेषः।

अनुवादः- (हे राजन्) युद्धमें प्रचण्ड योद्धा पग-पगमें मौजूद हैं, यह हिंसाराग क्या उनमें पूर्ण नहीं होता है? प्रजापालक आपके इस कुत्सित पराक्रम को धिक्कार है, जो कि करुणाके विषय दीन पक्षीमें किया जा रहा है।।132।।

टिप्पणी:- रणोद्भटाः = रणेषु उद्भटाः (स०त०)। हिंसारसः = हिंसाया रसः (ष०त०), पूर्यते = पूरी + लट् + श्यन् + त। नृपते = नृणां पतिः, तस्य (ष०त०)। कुविक्रमं = कुत्सितः विक्रमः, कृपाऽऽश्रये = कृपाया आश्रयः, तस्मिन् (ष०त०), पतत्त्रिणि = पतत्त्र + इति + ङि।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां
मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।
त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा
कथं न पत्या धरणी हृणीयते?।।133।।

अन्वयः- यस्य मम मुनेः इव वारिभूरुहां फलेन मूलेन च इत्थं वृत्तयः, तस्मिन् अपि दण्डधारिणा पत्या त्वया अद्य धरणी कथं न हृणीयते ? ।

व्याख्या:- यस्य, मम = हंसस्य, मुनेः इव = ऋषेः इव वारिभूरुहां = जल-भूम्युत्पन्नानां, पद्मवृक्षादीनामित्यर्थः, फलेन = सस्येन, मूलेन च = कन्दादिना च इत्थम् = अनेन प्रकारेण, वृत्तयः = जीविकाः, सन्तीति शेषः। तस्मिन् अपि = मुनिसदृशे अपि, निर्दोषेऽपीति शेषः, दण्डधारिणा = निग्रहकारिणा, पत्या = पालकेन, त्वया = भवता, राज्ञेत्यर्थः। अद्य = अस्मिन्दिने धरणी = धरित्रि, कथं = केन प्रकारेण, न हृणीयते = न लज्जते।

अनुवाद:- जल और वृक्षों से उत्पन्न कन्द और फलसे मुनि के समान मेरी वृत्ति है वैसे मेरे पति दण्ड धारण करनेवाले पालक आपसे पृथ्वी क्यों नहीं लज्जा करती है?।

टिप्पणी:- वारिभूरुहां = वारि च भूश्च वारिभुवौ (द्वन्द्वः), वारिभुवोः रोहन्तीति वारिभूरुहः, तेषाम्, वारिभू + रुह + क्विप् (उपपद०) + आम्। दण्डधारिणा = दण्डं धारयतीति तच्छीलः दण्डधारी, तेन दण्ड + धृञ् + णिच् + णिनि + टा (उपपद०)।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में हंस राजा नल की निंदा करता हुआ कहता है कि जो राजा दुष्टों को दण्ड देता है और सज्जनों की रक्षा करता है वह प्रशंसनीय होता है और इसके विपरीत जो दण्ड का अनुचित प्रयोग करता है, जैसा कि आप मेरे साथ कर रहे हैं वह स्वयं ही दण्ड का भागी बनता है। दण्ड देना राजा राजा का धर्म है इस संबंध मैं हंस रहा है— जिसकी जीविका जल भूमि से उत्पन्न कमल के फल तथा मूल से होने के कारण मुनियों के सदृश है ऐसे कृपा के पात्र मुझ पर भी (अनुचित) दण्ड का प्रयोग करने वाले तुम्हारे जैसे पालकों अथवा रक्षकों से यह पृथ्वी लज्जित क्यों नहीं होती है।
राजा का कर्तव्य है कि वह दुष्टों को दण्ड दे तथा सज्जनों की रक्षा करें किंतु आप तो इस प्रकार के राजा हैं कि जो मुझ जैसे अपराध को ही दण्डित कर रहे हैं। अतः आप पृथ्वी के अधिपति हैं वह पृथ्वी आप जैसे स्वामी को पाकर लज्जित क्यों नहीं होगी- अर्थात् अवश्य होगी।

अलंकार:- उपमा अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः
सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः।
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथी
चकार कारुण्यसापगा गिरः।।134।।

अन्वयः- स खगः इति तं नृपम् ईदृशैः वाङमयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं विरचय्य दयासमुद्रे तदाशये कारुणरसाऽऽपगाः गिरः अतिथीचकार।।134।।

व्याख्या:-सः = पूर्वोक्तः, खगः = पक्षी, हंस इत्यर्थ, इति = इत्थं, तं = पूर्वोक्तं, नृपं = राजानं, नलमित्यर्थः। ईदृशैः = एतादृशैः, पूर्वोक्तैरिति भावः। वाङ्मयैः = वाग्विकारैः दोषोद्घाटकैरिति भावः। सचित्रवैलक्ष्यकृपम् = आश्चर्य-लज्जातिशयकरुणासहितं, विरचय्य = विधाय, दयासमुद्र = करुणासागरे,

तदाशये = नलचित्ते, कारुण्यरसापगाः = करुणारसनदीस्वरूपाः, गिरः = वाणीः, अतिथीचकार = प्रवेशयामासेत्यर्थः। समुद्रे नदीप्रवेशो युक्त इति भावः।

अनुवाद:- उस पक्षी (हंस) ने इस प्रकार राजा नलको ऐसे वचनोंसे आश्चर्य, लज्जा और करुणासे युक्त बनाकर दया के समुद्र के समान उनके चित्त में करुण रस की नदियों के समान वाणियों का प्रवेश कराया।

टिप्पणी:- वाङ्मयैः = वाचां विकारा वाङ्मयानि, सचित्रवैलक्ष्यकृपं = विलक्षस्य भावो वैलक्ष्यम् विलक्ष + ष्यञ्। चित्रं च वैलक्ष्यं च कृपा च चित्रवैलक्ष्यकृपाः (द्वन्द्व), दयासमुद्रे = दयायाः समुद्रः, तस्मिन् (ष०त०)। तदाशये तस्य आशयः, तस्मिन् (ष०त०)। कारुण्यरसाऽऽपगाः = करुणा एवं कारुण्यं, करुणा + ष्यञ् (स्वार्थमें)। ''कारुण्यम् एव रसः, (रूपक०), तस्य आपगा, ताः (ष०त०)। इस पद्यमें हंस की वाणियों में नदीत्व का आरोप करने के लिए नल के हृदयमें समुद्रत्व का आरोप निमित्त है और ''रस'' पद श्लिष्ट है इस कारणसे श्लिष्टपरम्परित रूपक अलंकार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

'मदेकपुत्रा जननी जराऽऽतुरा,
नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो!
विधे! त्वां करुणा रुणद्धि नी?।।135।।

अन्वयः:- जननी मदेकपुत्रा जराऽऽतुरा, वरटानवप्रसूतिःतपस्विनी; एष जनः तयोः गतिः, तम् अर्दयन् हे विधे! त्वां करुणा नो रुणद्धि? अहो!।

व्याख्या:- जननी = जनयित्री, मदीया मातेत्यर्थः। मदेकपुत्रा = मदेकतनया । जरातुरा = वार्धक्याकुला, प्रसवेऽसमर्थेति भावः। वरटा = मम भार्या, नवप्रसूतिः = अचिरप्रसवा, अतः, तपस्विनी = शोचनीया, एषः अयं, जनः = पुरुषः, तयोः जननीजाययोः, गतिः = शरणं, तं = तादृशं शरणभूतं जनं, मामिति भावः। अर्दयन् = मारयन्। हे विधे = हे विधातः। त्वां = भवन्तं, करुणा = दया, नो रुणद्धि = न निवारयति ? इति काकुः। अहो = आश्चर्यम्, विधिर्नृशंसतर इति भावः।

अनुवाद:- मेरी माता, उसका मैं ही एक पुत्र हूँ, उसपर भी वह बुढ़ापा से आकुल है। मेरी भार्या (हंसी) नये प्रसववाली है, अतः शोचनीया है। उन दोनों का मैं ही एकमात्र रक्षक हूँ, उसकी हिंसा करते हुए हे ब्रह्मदेव! क्या तुम्हें करुणा नहीं रोकती है? आश्चर्य है!।

टिप्पणी:- मदेकपुत्रा = अहम् एव एकः पुत्रः यस्याः सा (बहु०), जराऽऽतुरा = जरया आतुरा (तृ०त०)। नवप्रसूतिः = नवा (नूतना) प्रसूतिः (प्रसवः) यस्याः सा (बहु०)। इस पद्य में विशेषणोंके अभिप्रायगर्भित होनेसे परिकर अलंकार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दया
सखाः सखायः स्रवदश्रवो मम।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तर-
स्त्वयैव मातः। सुतशोकसागरः।।136।।

अन्वयः:- हे मातः! मम सखायः दयासखायः भवनिन्दया मुहूर्तमात्रं स्रवदश्रवः (सन्तः) निवृत्तिम् एष्यन्ति, परं त्वया एव सुतशोकसागरः दुरुत्तरः।।136।।

व्याख्या:- हे मातः = जननि! मम, सखायः = सुहृदः, दयासखाः = करुणासहचराः, भवनिन्दया = संसारगर्हणेन मुहूर्तमात्रं, क्षणमात्रं, स्रवदश्रवः = गलितनयनजलाः सन्तः, निवृत्तिं = शोकोपरतिम्,

एष्यन्ति = यास्यन्ति, परं = किन्तु, त्वया एव = भवत्या एव, सुतशोकसागरः = तनयशुक्समुद्रः, दुरुत्तरः = दुस्तरः।

अनुवाद:- हे मातः! मेरे मित्र सदय होकर संसार की निन्दासे कुछ क्षण तक आँसुओंको गिराते हुए शोकनिवृत्ति को प्राप्त होंगे, परन्तु आपसे ही पुत्र का शोकसमुद्र दुस्तर होगा।

टिप्पणी:- दयासखायः = दयया सखायः (तृ०त०) भवनिन्दया = भवस्य निंदा, तया (तृ०त०)। मुहूर्तमात्रं = मुहूर्त एव, मुहूर्तमात्रं, तत् (रूपक०), । स्रवदश्रवः स्रवन्ति अश्रूणि येषां ते (बहु०)। एष्यन्ति = इण् + लृट् + झि। सुतशोकसागरः = सुतस्य शोकः (ष०त०), स एव सागरः (रूपक०)। इस पद्यमें रूपक अलंकार है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

5.3.3 हंस विलाप वर्णन—

> **मतर्थसन्देशमृणालमन्थरः**
> **प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते।**
> **विलोकयन्त्या रुदताऽथ पक्षिणः**
> **प्रिये! स कीदृग्भविता तव क्षणः? ॥137॥**

अन्वय:- हे प्रिये! ''मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूरे'' इति त्वया उदिते, अथ रुदतः पक्षिणः विलोकयन्त्याः तव स क्षणः कीदृक् भविता ? ।

व्याख्या:- हे प्रिये = हे दयिते!, मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = मदर्थवाचिकबिसाऽलसः, प्रियः = वल्लभः, कियद्दरे = किंपरिमाणविप्रकृष्टप्रदेशे, वर्तत इति शेषः। इति = एवं, त्वया भवत्या, उदिते = उक्ते, पृष्टे सतीति भावः। अथ = प्रश्नाऽनन्तरं, रुदतः अश्रूणि विमुञ्चतः, पक्षिणः = विहङ्गान्, विलोकयन्त्याः = पश्यन्त्याः, तव = भवत्याः, स = तादृशः, क्षणः = कालः, कीदृक् = कीदृशः, भविता = भविष्यति, वज्रपातसदृशः असहनीय इति भावः।

अनुवाद:- हे प्रिये! ''मेरे लिए सन्देश और मृणाल भेजनेमें विलम्ब करने वाले मेरे प्यारे कितने दूर है'' ऐसा तुम्हारे पूछनेपर रोते हुए पक्षियोंको देखती हुई तुम्हारा वह क्षण कैसा होगा?।

टिप्पणी:- मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = सन्देशश्च मृणालं च संदेशमृणाले (द्वन्द्वः) मदर्थे च ते सन्देशमृणाले (क०धा०), तयोः मन्थरः (स०त०)। कियद्दूरे = कियच्च तत् दूरं, तस्मिन् (क०धा०)। उदिते = वद् + क्त + ङि। रुदतः = रुदन्तीति रुदन्तः, तान् रुद् + लट् (शतृ) + शस्। विलोकयन्त्याः = वि + लोक + णिच् + लट् (शतृ) + ङीप् + ङस्। भविता = भू+ लुट् + तिप्। यहाँ पर अद्यतन भविष्यदर्थ में लृट्का प्रयोग इष्ट था परन्तु अनद्यतनभविष्यत्लुट्का प्रयोग होनेसे च्युतसंस्कृति दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, शोकाऽऽकुल हंस की ऐसी उक्ति करुणरस के अनुकूल होनेसे गुणस्थानीय है। इस पद्यमें शोकका उदय होनेसे भावोदय अलंकार है।

विशेष:- राजा नल द्वारा पकड़ लिए जाने पर उसके द्वारा मारे जाने की आशंका कर हंस अपनी पत्नी को लक्षित कर विलाप करता है— हे प्रिये! वन से वापिस लौटे हुये अन्य पक्षियों से जब तुम यह पूछोगी कि मेरे लिए संदेश भेजने अथवा मृणाल लाने वाले मेरा प्रिय हंस कितनी दूर है रह गया है— तब वे पक्षी मुझ हंस को पकड़े जाने की बात मुख से ना निकालेंगे तथा उनकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगेगी। यह देखकर है प्रिये! तुम्हारी दशा क्या होगी- तुम किसी अनिष्ट को समझकर वज्राहत सी हो जाओगी।

अलंकार:- भावोदय अलंकार

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजा-
त्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः।
''वियोक्ष्यसे वल्लभये'' ति निर्गता
लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा?॥138॥

अन्वयः- हे विधातः! प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः, तव पाणिपङ्कजात् मयि ''वल्लभया वियोक्ष्यसे'' इति ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा लिपिः कथं निर्गता?॥138॥

व्याख्या- हे विधातः = हे विधे!, प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = वल्लभाशीतलत्वकोमलत्वनिर्मातुः, तव = भवतः, पाणिपङ्कजात् = करकमलात्, मयि = विषये, वल्लभया = प्रियया सह, वियोक्ष्यसे = वियुक्तो भविष्यसि, इति = एवं, ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा = भालतापिकठिनवर्णा, लिपिः = अक्षरविन्यास इत्यर्थः, कथं = केन प्रकारेण, निर्गता = निःसृता।

अनुवादः- हे ब्रह्मदेव! मेरी प्रियाकी शीतलता और कोमलताका निर्माण करनेवाले तुम्हरे हाथसे मेरे विषयमें ''तुम प्रियासे बिछुड़ जाओगे'' इस तरह ललाटको ताप करनेवाली निष्ठुर अक्षरोंसे युक्त लिपि कैसे निकली?।

टिप्पणी:- विधातः = विदधातीति विधाता, तत्सम्बुद्धौ, वि + धा + तृच + सु। प्रिय, शैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = शीतस्य भावः शैत्यम्। शीत + ष्यञ्। मृदोर्भावः मृदुत्वम्, मृदु + त्व। शैल्यं च मृदुत्वं च (द्वन्द्वः)। शिल्पम् अस्याऽस्तीति शिल्पी, शिल्प + इनि। प्रियायाः शैत्यमृदुत्वे (ष०त०), तयोः शिल्पि, तस्मात् (ष०त०)। पाणिपंकजात् = पाणिः पंकजम् इव, तस्मात् (उपमित०)। वियोक्ष्यसे = वि + युज् + लृट् (कर्ममें) + थास् (से)। ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा ललाटं तपन्तीति ललाटन्तपानि, ललाटन्तपानि निष्ठुराणि अक्षराणि यस्याः सा (बहु०)। निर्गता निर् + गम् + क्त + टाप्। इस पद्यमें कारणसे विरुद्ध कार्यकी उत्पत्तिके कथनसे विषम अलंकार है।

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

अपि स्वयूथ्यैरशनिक्षतोपमं
ममाऽद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता।
मुखानि लोलाऽक्षि! दिशामसंशयं
दशाऽपि शून्यानि विलोकयिष्यसि॥139॥

अन्वयः- अपि (च) अद्य स्वयूथ्यैः अशनिक्षतोपमं मम इमं वृत्तान्तम् उदिता (सती) हे लोलाक्षि! दश अपि दिशां मुखानि शून्यानि विलोकयिष्यसि असंशयं वत!॥139॥

व्याख्या- अपि च = अन्यच्च, अद्य = अस्मिन् दिने, स्वयूथ्यैः = आत्मसङ्घभवैः। अशनिक्षतोपमं = वज्रप्रहारसदृशं, मम = प्रियस्य, इमम् = एतं, वृत्तान्तम् = उदन्तं, नरहस्तपतनरूपमिति शेषः। उदिता = उक्ता सती, हे लोलाक्षि = हे चपलनयने!, दश दशसंख्यकानि,दिशां = काष्ठानां, प्राच्यादीनामित्यर्थः। मुखानि = सम्मुखस्थानानि, शून्यानि रिक्तानि, विलोकयिष्यसि = द्रक्ष्यसि, मद्वियोगादिति भावः। असंशयम् = अत्र सन्देहो न, बत इति खेदे।

अनुवादः- और भी, आज अपने वर्गके हंसोंके वज्रप्रहारके सदृश इस वृत्तान्तको कहनेपर हे चंचल नयने! तुम दिशाओं के दशों संमुखवर्ती स्थानों को शून्य देखोगी, इसमें सन्देह नहीं है, हा!।

टिप्पणी- स्वयूथ्यैः = यूथे भवा यूथ्याः, यूथ + यत्। स्वस्य यूथ्याः, तैः (ष०त०)। अशनिक्षतोपमम् अशनिना क्षतम् (तृ०त०), तत् उपमा (सादृश्यम्) यस्य, तम् (बहु०)। वृत्तान्तम् = वद धातुके द्विकर्मक होनेसे मुख्य कर्ममें द्वितीया। उदिता = वद + क्त (कर्ममें) + टाप्। लोलाक्षि = लोले अक्षिणी वस्याः सा लोलाक्षी, तत्सम्बुद्धौ (बहु०)। विलोकयिष्यसि = वि + लोक + णिच् + लृट् + सिप्। असंशयं =

संशयस्य अभावः, अव्ययं विभक्ति०'' इत्यादिसे अर्थाऽभावमें अव्ययीभाव समास। इस पद्यमें उपमा अलंकार है।।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा
त्वयाऽपि चित्राङ्गि! विपद्यते यदि।
तदस्मि दैवेन हतोऽपि हा! हतः
स्फुटंयतस्त शिशवः पराऽसवः।।140।।

अन्वयः:- हे चित्राऽङ्गि! मम शोकेन एव विर्दीणवक्षसा त्वया अपि विपद्यते यदि, तद् दैवेन हतः, स्फुटः हतः अस्मि, हा! यतः ते शिशवः पराऽसवः।।140।।

व्याख्या:- हे चित्राङ्गि = हे विचित्रगात्रे!, लोहितचञ्चुचरणत्वादिति भावः। मम प्रियस्य, शोकेन = मन्युना, एव, विदीर्णवक्षसा = विदलितहृदयया त्वया अपि = भवत्या अपि, प्रियया अपीति भावः। विपद्यते यदि = म्रियते चेत्, तत् = तर्हि, दैवेन = भाग्येन, हतः = नाशितः, स्फुट = व्यक्तं, पुनः हतः = नाशितः, अस्मि = भवामि, हा = दैवपुनर्हतस्य मे शोच्यत इति भावः। यतः = यस्मात्कारणात्, ते = तव, शिशवः शावकाः, पराऽसवः = मृताः, भवेयुरिति शेषः। मच्छोकेन त्वमपि प्राणांस्त्यक्ष्यसि चेच्छरणयोर्मातापित्रोरभावेनाऽस्मच्छावका अपि मरिष्यन्तीति दैवहतोऽहं पुनर्हतो भविष्यामीति भावः।

अनुवाद:- हे विचि = अङ्गोवाली प्रिये! मेरे शोकसे ही विदीर्णहृदय होकर तुम भी मर जाओगी तो भाग्यसे मारा जाकर व्यक्त रूपसे फिर भी मारा जाऊँगा, क्योंकि, तब तो तुम्हारे बच्चे भी (हम लोगोंके अभावसे) मर जायेंगे।

टिप्पणी:- चित्राऽङ्गि = चित्राणि अङ्गानि यस्याः सा चित्राङ्गी, तत् सम्बुद्धौ (बहु०), विदीर्णवक्षसा = विर्दर्णः वक्षो यस्याः सा विदीर्णवक्षाः, तया (बहु०), विपद्यते = वि + पद् + लट् (भावमें) + त। शिशवः = परागता असवः (प्राणाः) येषां ते (बहु०)। बच्चोंके मरनेकी भावनासे द्विगुण मरणका दुःख मैं पाऊँगा यह भावार्थ है। इस पद्यमें मरनेकी भावनासे द्विगुण मरणका दुःख मैं पाऊँगा यह भावार्थ है। इस पद्यमें शोकके स्थायिभाव होनेसे करुण रस है।

छन्द:- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

जवाऽपि हा! हा विरहात्क्षुधाकुलाः
कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिमनोरथर्गताः
क्षणेनाऽस्फुटितेक्षणा मम।।141।।

अन्वयः:- (हे प्रिये!) बहुभिः मनोरथैः चिरेण लब्धाः अस्फुटितेक्षणाः मम ते अपि विरहात् क्षुधा आकुलाः तेषु कुलायकूलेषु विलुठ्य क्षणेन गताः, हा! हा!!।।141।।

व्याख्या:-मन्मरणे कथं सुतानां मरणमिति प्रतिपादयति। (हे प्रिये!) बहुभिः = अधिकैः, मनोरथैः = अभिलाषैः, चिरेण = बहुकालेन, लब्धाः = प्राप्ताः, अस्फुटितेक्षणाः = अनुन्मीलितनयनाः, अद्याऽपीति शेषः। मम = हंसस्य, ते = पूर्वोक्ताः, शिशव इति भावः। तव अपि = न केवलं मम तव अपि इति भावः। विरहात् = वियोगात्, क्षुधा = बुभुक्षया, आकुलाः = पीडिताः सन्तः, तेषु = स्वसम्पादितेषु इति भावः, कुलायकूलेषु = नीडसमीपभागेषु, विलुठ्य = परिवृत्य, क्षणेन = अल्पकालेनैव, गताः = याताः, मृता भविष्यन्ति, । हा! हा! = त्वां मां च इति शेषः ।

अनुवादः- (हे प्रिय) बहुत मनोरथों से बहुत समय में पाये गये अस्फुटित नेत्रोंवाले मेरे और तुम्हारे वे बच्चे हमारे वियोगसे भूखसे पीड़ित होकर घोंसले के समीप लोटकर थोड़े ही समयमें मर जायेंगे हाय! हाय!।

टिप्पणी:-लब्धाः = लभ् + क्त +जस्। अस्फुटितेक्षणाः = न स्फुटिते (नञ्), अस्फुटिते इक्षणे येषां ते (बहु०)। विरहात् हेतुमें पंचमी। कुलायकूलेषु = कुलायस्य कुलानि, तेषु (ष०त०)। कूलका अर्थ यहाँपर समीप स्थान है। ''कुलायो नीडमस्त्रियाम्'' इत्यमरः। विलुठ्य = वि + लुठ + क्त्वा (ल्यप्)।

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

सुताः! कमाहूय चिराय चूङ्कृतै
विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति?।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमोल्य स
स्नुतस्य सेकाद् बुबुधे नृवाऽश्रुणः।।142।।

अन्वयः-'हे सुताः! चूङ्कृतैः चिराय कम् आहूय कं प्रति मुखानि कम्प्राणि विधाय कथासुशिष्यध्वम्'' इति प्रमील्य सः स्रुतस्य नृपाऽश्रुणः सेकात् सः बुबुधे।

व्याख्या:- हे सुताः = हे पुत्राः!, चूङ्कृतैः = चूङ्कारैः, चिराय = बहुकालपर्यन्तम्, कं = कतरं जनम्, आहूय आकार्य, कं प्रति = कतरं प्रति, उभय = जननीजनकयोरिति शेषः। मुखानि = आननानि, कम्प्राणि = कम्पनशीलानि, चंचलानीति भावः। विधाय = कृत्वा, कथासु = शब्दमात्रेषु, शिष्यध्वम् = अवशिष्टा भवत, इति = एवम्, उक्त्वेति शेषः। प्रमील्य = मूर्च्छां प्राप्य, सः = हंसः स्रुतस्य = गलितस्य, नृपाऽश्रुणः = नलनयनजलस्य, सेकात् = सेचनात्, बुबुधे = सञ्ज्ञां प्राप।

अनुवादः- 'हे बच्चों! चूँ चूँ करके बहुत समय तक किसे बुलाकर और किसे लक्ष्य करके मुँह को चंचल बनाकर शब्द मात्र से अवशिष्ट हो जाओंगे। ऐसा कहकर मूर्च्छित होकर वह हंस राजा के गिरे हुए आँसूके सेचनसे होशमें आ गया।

टिप्पणी:- प्रमील्य प्र + मील + क्त्वा (ल्यप्)। नृपाऽश्रुणः नृपस्य अश्रु, तस्य (ष०त०)। सेकात् = सिच + घञ् + ङसि। बुबुधे = बुध + लिट् + त (एश)।

अलंकार:- स्वभावोक्ति अलंकार है।

छन्दः- वंशस्थछन्द। (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।।143।।

अन्वयः- इत्थं विलपन्तम् अमुम् अवनिपालः दीनदयालुतया ''रूपम् अदर्शि, यदर्थं धृतः असिः; अथ यथेच्छं गच्छ इति अभिधाय अमुंचत्।

व्याख्या:- इत्थम् = अनेन प्रकारेण, विलपन्तं = परिदेवमानम्, अमुं = हंसम्, अवनिपालः = भूपालः, नल इति भावः। दीनदयालृतया = आर्तकृपालुतया, रूपम् = आकृतिः, अदर्शि = अवलोकितम, यदर्थः = रूपदर्शनाऽर्थं घृतः = गृहीतः, असि = वर्तते, अथ = अनन्तरं, यथेच्छं = यथेष्टं, गच्छ = व्रज, इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, अमुंचत् = मुक्तवान्।

अनुवादः- इस प्रकार विलाप करते हुए उस हंसको दीनोंमें दयालु होनेसे राजा नलने ''रूप देख लिया जिसके लिए मैंने तुम्हें पकड़ा था, अब इच्छाके अनुसार जाओ'' ऐसा कहकर छोड़ दिया।

टिप्पणी:- विलपन्तं = विपतीति विलपन्, तम्, वि + लप + लट् (शतृ) + अम्। अवनिपालः = अवनिं पालयतीति, अवनि + पाल + अच्। दीनदयालुतया = दयत इति दयांलुः, दयालोर्भावः, दयालु + तल् + टाप्। दीनेषु दयालुता, तया (स०त०)। अदर्शि दृश् + लुङ् (कर्ममें) + त। यदर्थं + यस्मै इदम् (च०त०)

यथा तथा, (क्रि०वि०) धृतः + धृञ् + क्तः (कर्ममें)। यथेच्छम् = इच्छाम् अनतिक्रम्य (अव्ययीभाव०)। गच्छ-गम् + लौट् + सिप्। अभिधाय = अभि + धा + क्त्वा (ल्यप्)। अमुंचत् मुच् + लङ् + तिप्। महाकाव्यमें सर्गके अन्तमें छन्द बदलना चाहिए जैसे कि कहा है- **''एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः''**।

छन्द:- दोधक छन्द। (दोधकवृत्तमिदं भभभा गो)

5.3.4 हंस की बन्धनमुक्ता का वर्णन—

आनन्दजाश्रुभिरनुस्रियमाणमार्गान्-
प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयः प्रवाहान् ।
चक्रे स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन
नीराजनां जनयतां निजबान्धवानाम् ।।144।।

अन्वयः- स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानां प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् आनन्दजाऽश्रुभिः अनुस्रियमाणमार्गान् चक्रे।

व्याख्या:- सः = हंसः, चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = मण्डलाकारभ्रमणमिषेण, नीराजनाम् = आरर्तिकां, जनयतां, कुर्वतां, निजबान्धवानां = स्वबन्धूनां, प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयः प्रवाहान् = पुराशुङ्नि सरितबाष्पपूरान्, आनन्दजाऽश्रुभिः = हर्षजनयनसलिलैः, अनुस्रियमाणमार्गान् = अनुगम्यमानाऽध्वनः, चक्रे = कृतवान्।

अनुवाद:- राजा नल द्वारा पकड़े गए हंस को छोड़ दिए जाने पर उसके साथियों को अत्यधिक आनंद हुआ। इसी आनंद का वर्णन प्रस्तुत पद्य में कवि करता है—राजा नल द्वारा हंस को पकड़ लिए जाने पर उसके सभी बन्धुओं ने रोकर तथा उस हंस के बन्धनमुक्त हो जाने पर आंसू बहाने लगे तथा उसे बंधनमुक्त हंस के चारों ओर आ-आकर बैठते हुए ऐसी प्रतीत हो रहे हैं कि मानो उसे बंधनमुक्त हंस की आरती-सी उतार रहे हों।

टिप्पणी:- चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = चक्रेण सदृशं चक्रनिभम् (तृ०त०), अस्वपदविग्रह होनेसे नित्य समास। चक्रनिभं च तच्चङ्क्रमणं (क०धा०)। तस्य छलं, तेन (ष०त०)। जनयतां = नियन्तीति तेषाम्, जन् + णिच् + लट् (शतृ) + आम्। निजबान्धदानां = निजाश्च ते बान्धवाः; तेषाम् (क०धा०), प्राक्शोकनिर्गमितने=पयःप्रवाहान् पयसां प्रवाहाः (ष०त०), ने=योः पयःप्रवाहाः (ष०त०)। प्राग्भवः शोकः प्राक्शोकः (मध्यमपद०)। प्राक्शोकेन निर्गमिताः (तृ०त०), ते च ते नेत्रपयःप्रवाहाः, तान् (क०धा०)। आनन्दजाऽश्रुभिः = आनन्दात् जातानि, आनन्द + जन् + डः। आनन्दजानि च तानि अश्रूणि, तैः (क०धा०)। अनुस्रियमाणमार्गान् = अनुस्रियन्ते इति अनुस्रियमाणाः, अनु + सृ + लट् (कर्ममें) + शानच्। ते मार्गा येषां ते, तान् (बहु०)। इस पद्यमें बन्धन से छूटे हुए अपने समूहके पक्षी के चारों ओर पक्षिगण मण्डलाकार रूपसे घूमते हैं इस बातको मनुष्योंके समान नीराजनाके रूपमें प्रदर्शित किया है। इस महाकाव्य में सर्ग के अन्तिम प्रत्येक पद्यमें ''आनन्द'' पदका प्रयोग किया है, अतः यह ''आनन्दाऽङ्क'' महाकाव्य है।

अलंकार:- कैतवाऽपह्नुति अलंकार

छन्द:- वसन्ततिलका छन्द (उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः)

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।
तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्गया महा-
काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः।।145।।

अन्वयः- कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च जितेन्द्रियच्च्य यं श्रीहर्षं सुती सुषुवे। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृंङ्गारभङ्ग्या चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयम् आदिः सर्गः गतः॥145॥

व्याख्या:- अथ महाकविः सर्गान्ते काव्य वर्णनं सर्गसमाप्तिं च पद्यबन्धेन प्रदर्शयति- श्रीहर्षमिति। कविराजराजिमुकुटाङलङ्कारहीरः = पण्डितश्रेष्ठश्रेणीकिरीटभूषणवज्रमणिः श्रीहीरः = श्रीहीरनामकः, मामल्लदेवी च = मामल्लदेवीनाम्नी च, जितेन्द्रियचय = वशीकृतहृषीकसमूहम्। यं श्रीहर्षं = श्रीहर्षनामकं सुतं = पुत्रं सुषुवे = जनयामास, तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले = तच्चितामणिनामकमनूपासनाफलरूपे, शृङ्गारभङ्ग्या = आदिरसविच्छित्या, चारुणि मनोहरे, नैषधीयचरिते = नैषधीयचरितनामके, महाकाव्ये = बृहत्काव्ये काव्यविशेष इति भावः। अथं निकटस्थः, आदि = प्रथमः, सर्ग = अध्यायः, गत = समाप्त इत्यर्थः।

अनुवाद:- श्रेष्ठ पण्डितों की श्रेणीके मुकुट के अलंकार हीरेके समान श्री हीर और मामल्लदेवीने जिस श्री हर्ष नाम के पुत्र को उत्पन्न किया, उन (श्रीहर्ष) के चिन्तामणि नामक मन्त्री की उपासनाके फलस्वरूप श्रृंगारकी विचित्रता से मनोहर नैषधीयचरितनामक महाकाव्यमें यह पहला सर्ग समाप्त हुआ।

टिप्पणी:- कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः = कवीनां राजानः कविराजाः (ष०त०), कविराजानां राजिः (ष०त०), तस्या मुकुटानि (ष०त०), जितेन्द्रियचयम् = इन्द्रियाणां चयः (ष०त०), जित इन्द्रियचयो येन, तम् (बहु०)। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले ''चिन्तामणि'' पदके दो अर्थ हैं, एक मन्त्रविशेष और दूसरा मणिविशेष। दोनों ही चिन्तित पदार्थों को देने वाले हैं। प्रकृतमें चिन्तामणिपदका अर्थ मन्त्रविशेष है चिन्तापूरको मणिः चिन्तामणिः (मध्यमपद०)। मन्त्रके अर्थमें ''चिन्तामणि'' पद लाक्षणिक है। चिन्तामणिश्चाऽसौ मन्त्रः (क०धा०) तस्य चिन्तनं (ष०त०) तस्य फलं तस्मिन् (ष०त०)। शृंङ्गारभङ्ग्या शृंङ्गारस्य भङ्गि, तया (ष०त०) नैषधीयचरिते = निषधानाम् अयं नैषधः, निषध + अण्। नैषधस्य इदं नैषधीयम् नैषध + छ (ईयः)। नैषधीयं च तत् चरितम्, तस्मिन् (क०धा०), महाकाव्ये = कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्, कवि + ष्यञ्। महच्च तत् काव्यं, तस्मिन् (क०धा०)

छन्द:- शार्दूलविक्रीडित छन्द । (सूर्याऽश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्)

5.4- सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान चूके है कि दमयन्ती के वियोग में व्याकुल राजा नल हंस के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उस हंस की कौतुहलता को देख उसको पकड़ने तथा पक्षियों द्वारा राजा नल की निन्दा विषयक चर्चा को आपने सम्यक रूप से जाना साथ ही हंस द्वारा नल के पौरूष को धिक्कारने तथा उस हंस की हीन दशा एवं अपने परिवार की दशा की कल्पना करने के वर्णन को कवि ने अपने शब्दों में लिखा।

5.5- शब्दावली

शब्द	=	अर्थ
प्रवालैः	=	पल्लवों
करौ	=	हाथ से
वारिरुहैः	=	कमलसदृश

5.6- बोध प्रश्न

1- नैषधीयचरीतम् के प्रथम सर्ग में कुल कितने छन्द हैं।

क- 140

ख-141

ग-142

घ-143

2-नैषधीयचरीतम् के प्रथम सर्ग की समाप्ति किस छन्द से हुई है।

क-हरिणी

ख-दोधक

ग-स्रगधरा

घ-मालिनी

3- हंस द्वारा राजा की निंदा का वर्णन किस सर्ग में है।

क- प्रथम

ख-द्वितीय

ग-तृतीय

घ-चतुर्थ

4-हेमजन्मनः में कौन सा समास है।

क-क०धा०

ख-ष०त०

ग-बहु०

घ- व्याधिकरणबहु०

5-''आनन्दाऽङ्क'' महाकाव्य है।

क- रामायण महाकाव्य

ख- नैषध महाकाव्य

ग-महाभारत

घ- शिशुपालवध महाकाव्य

बोध प्रश्नों के उत्तर—

1-घ

2-ख

3-क

4-घ

5-ख

5.7- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय,शारदा निकेतन,वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का आधुनिक इतिहास- डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3.संस्कृत साहित्य की रूप रेखा

4.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी

5.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

5.8- अन्य उपयोगी पुस्तकें

1.साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

2.दशरूपक -आचार्य धनंजय

3.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष

4.नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रकाशन

5.9- निबन्धात्मक प्रश्न

1. किन्ही दो श्लोकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. राजा नल एवं हंस के संवाद का वर्णन कीजिए।

खण्ड – द्वितीय, इकाई – 6
नैषधीयचरितम् महाकाव्य की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना:-

गद्य एवं पद्य काव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ सत्रार्द्ध द्वितीय प्रश्न पत्र के द्वितीय खण्ड की अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आप नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग का भावानुवाद सहित विश्लेषण एवं व्याख्या से परिचित हुये। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप नैषधीयचरितम् महाकाव्य की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या को विस्तार से अध्ययन करेंगे।

महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य में सूक्तियों के माध्यम से समाज को विभिन्न सन्देश दिये हैं, जिनसे कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और पाण्डित्य का दिग्दर्शन होता है। नैषध महाकाव्य एक ऐसा सम्पूर्ण शास्त्र है जो वैदुष्य के धारा प्रवाह के कुन्द हो जाने पर उसे पुनः प्रखर बनाने में समर्थ है। श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य को **'शृङ्गारामृतशीतगु:'** ही नहीं बनाया वरन् भारतीय संस्कृति एवं अनेक गम्भीर विषयों से अलङ्कृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह महाकाव्य मात्र कृति न रहकर ज्ञान की विविध श्रेणियों का बृहत्कोश बन गया है। यही कारण है कि नैषध को **'नैषधं विद्वदौषधं'** एवं माघ तथा भारवि की रचनाओं से उत्कृष्ट माना जाता है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्तित्रयो गुणाः ।।
तावद् भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भरविः ।।

नैषध में अर्थगौरव, पदलालित्य एवं उपमा की मञ्जुलता ही नहीं वरन् भारतीय संस्कृति के प्राण रूप पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परक जीवन मूल्यों की भी अभिव्यक्ति होती है। नैषधीयचरितम् महाकाव्य की विशिष्टता यह रही कि प्रत्येक सर्ग के अन्त में मणिरत्न श्रीहर्ष ने अपने माता-पिता का स्मरण और अपनी रचनाओं का सङ्केत किया, यह अद्भुतता अन्यत्र दुर्लभ है।

साहित्य सूक्ति के विना अधूरे है। सूक्ति का प्रयोग व्यवहार में मृदुता एवं भाव व्यक्त करने के लिए किया जाता है। सूक्ति शब्द सु और उक्ति इन दो शब्दों के योग से वना है, सूक्ति में सु उपसर्ग तथा उक्ति में कथनार्थक वच् धातु से भाव और कर्म में क्तिन् प्रत्यय लगा है। जिसका अर्थ है शोभन उच्चारण करना, सरल उल्लेख वर्णन करना, इस प्रकार सु + उक्ति के मेल के वने सूक्ति पद का अर्थ हुआ एक सुन्दर–शोभन–गुण युक्त,मूल्यवान, गरिमापुर्ण कथन,जिसमें अपनी इच्छानुसार अभिव्यक्ति हो पाश्चात्य विद्ववानों ने सुक्ति के लिए ऐन्थोलौजी या कोटेशन्स (Anthology/Quatations) का प्रयोग किया है। प्रस्तुत इकाई में उक्त सभी प्रसंगों के बारे में आप सम्पूर्ण ज्ञान पाप्त करेंगे।

6.2 उद्देश्य:-

इस इकाई के माध्यम से आप—

- 'उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवी:' इस उक्ति की समीक्षा करने में समर्थ हो सकेगें।
- नैषध के विषय में कहे गये लोकोक्ति 'नैषधं विद्वदौषधम्' से पूर्णतया परिचित हो सकेगें।
- इस इकाई के माध्यम से नैषध की महत्वपूर्ण सूक्तियों से परिचित हो सकेगें।
- इस इकाई के माध्यम से आप नैषधीयचरितम् के सम्पूर्ण स्वरूप को समझ सकेगें।

6.3 नैषधीयचरितम् महाकाव्य की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्
करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम् ।।1-39।।

अन्वय:- सुप्ति: अदृष्टवैभवात् अदृष्टम् अपि अर्थं जनदर्शनाऽतिथिं करोति ।

व्याख्या:- सुप्ति: = स्वप्न:, अदृष्टवैभवात् = धर्माऽधर्मप्रभावात्, अदृष्टम् अपि = अविलोकितं अपि, अर्थं = पदार्थं, जनदर्शनाऽतिथिं = लोकविलोकन गोचरं, करोति = विदधाति, (स्वप्नरूपेण दर्शयतीति भाव:) ॥

अनुवाद:- सोती हुई वह दमयन्ती, अपना पति मान बैठी उस नल को भला कौन सी रात में नहीं देखा करती थी— सत्यत: स्वप्न अदृष्ट अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मों के प्रभाव में नहीं देखी जा सकने वाली वस्तु को भी लोगों के लिए दर्शन योग्य बना डालता है।

विशेष:- स्वप्न वह क्रिया है जिसमें शरीर नहीं, अपितु मन क्रियाशील रहता है। बाहरी इन्द्रियां नहीं वरन् अन्ततः इन्द्रियां कभी न देखे गये पदार्थों का भी अवलोकन करा देती हैं। महाकवि श्री हर्ष ने भी प्रस्तुत सुक्ति में यही माना है, कि अदृश्य पदार्थ का भी दर्शन स्वप्न में सम्भव है। **अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्, करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम् ।।** अर्थात् स्वप्न धर्म और अधर्म के प्रभाव से नहीं देखे पदार्थ को भी जनों का दर्शन गोचर बनाता है। यह प्रसंग निषद देश के राजा नल के प्रति आसक्त मन वाली सोती हुई वह दमयन्ती स्वेच्छया अपने पति रूप में स्वीकारे नल को किस रात में नहीं देखा करती ? प्रत्येक रात में देखते थी। स्वप्नदशा अदेखे पदार्थ को भी मनुष्य को देखने का विषय बना देती है। स्वप्न के विषय में श्रुति का कथन हैचै —तन्य रूप ज्योति के स्वभाव वाला एकाकी गमन करने वाला आमरण धर्मात्मा तुच्छ शरीर रूपी घोंसले का प्राण-अपान आदि के द्वारा पोषण करता हुआ, घोंसले के बाहर घूमकर जहां इच्छा होती है, वहां (प्नस्व) में विचरण करता है।

त्यजन्त्यसूञ्शर्म च मानिनोवरं
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ।।1-50।।

अन्वय:- मानीन: असून् शर्म च त्यजन्ति वरम् तु एकम् अयाचितव्रतं न त्यजन्ति।

व्याख्या:- मानीन: = अभिमानिन:, मनस्विन इत्ययर्थ:, असून् = प्रणान्, शर्म च = सुखं च, त्यजन्ति = जहति, वरं = प्राणसुखत्या:गोऽपिमानक् प्रिय:, तु = किन्तु, एकम् = अद्वितीयम्, अयाचितव्रतं = अयाचनानियमं तु, न त्यजन्ति = नो जहति, (मनस्विनां प्राणदित्यागदु:खादपि याचनादुखमं दु:सहं भवतीति भाव:) ।

अनुवाद:- काम के ताप से अत्यधिक पीड़ित होने के बावजूद उस राजा नल ने विदर्भ राज से उनकी कन्या दमयन्ती की याचना नहीं की। वस्तुत: जो आत्माभिमानी है, वह भले प्राण तथा सुख का त्याग कर दें, परन्तु याचना रूपी व्रत का त्याग कदापि नहीं करते।

विशेष:- याचना से व्यक्ति अन्यों की दृष्टि में गिर जाता है। अयाचना नहीं वरन् याचना हमें कष्ट पहुॅचाती है, क्योंकि मांगने पर भी वह वंचित ही रहती है। अतः व्यक्ति को कभी कुछ नहीं मांगना चाहिए। प्रस्तुत सुक्ति में महाकवि हर्ष यही कह रहे हैं —**त्यजन्त्यसूञ्शर्म च मानिनोवरं, त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ।।** मानी जन प्राण और सुख भले ही छोड़ दें, किन्तु याचना न करने का व्रत कभी नहीं छोड़ते। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि निषधदेश का राजा नल भीमसुता दमयन्ती के रूप गुणों को सुनकर ही उसमें आसक्त है। राजा को कामदेव ने धैर्यहीन बना दिया है। अत्यन्त काम सन्तप्त होने पर भी उस सर्वसमर्थ राजा नल ने विदर्भनरेश से उनकी पुत्री की याचना नहीं की। आत्मा भिमानी पुरुष प्राणों

और सुख को त्याग सकते हैं, किंतु किसी को कुछ मांगना रूपी व्रत नहीं छोड़ सकते। सम्मानि कष्ट सह लेते हैं, पर किसी ने कुछ मांगते नहीं है। आपत्ति विपत्ति आने पर यह धर्म शील ही बने रहते हैं। मान, प्रतिष्ठा, शौर्य एवं वीरभाव की सभी को आवश्यता होती है। भर्तृहरि ने सिंह और स्वाभितानी पुरुषों का स्वभाव एक जैसा माना है। मानधनी पुरुष से व्याकुल होकर दुर्बल, वृद्ध एवं शिथिल एवं अति दु खी: होकर भी, मरणकाल उपस्थित होने पर किसी से कुछ नहीं मांग सकता। सिंह भले ही भूखा मर जाये, किंतु स्वाभितानी होने के कारण भूखा,जीर्ण- शीर्ण, दुर्बल आसक्त होने पर गजराजाओं के द्वारा विदीर्ण गण्ड़स्थल के मांस को ही खाने का प्रयास करेगा, तृणादि खाकर जीवित नहीं रहेगा।

स्मरः स रत्यामनिरुद्धमेव यत्-
सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ॥1-54॥

अन्वय:- यत् स स्मतर: रत्याम् अनिरूद्धम् एव सृजति , ईदृश: अयं सर्ग निसर्ग:।

व्याख्या:- यत् = यस्मातत्कारणात् स = प्रसिद्ध:, स्मसर: = कामदेव:, रत्याम् = अनुरागे सति, रतिनामस्वे प्रियायाम्, अनिरूद्धम् = अनिवारितम् एव, चापलम् एव, सृजति = करोति, ईदृश: = एतादृश:, अयं = एष:, सर्ग निसर्ग: = सृष्टिस्वमभाव: ।

अनुवाद:- सृष्टि का एक ऐसा स्वभाव है कि अनुराग होने पर काम मानव को चंचल बना दिया करता है अतएव विवेकादि गुण निश्चयमेव नल की चपलता के अवरोध बनाने में समर्थ नहीं हो पाये।

वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं
क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः ॥1-102॥

अन्वय:- वने अपि तं तौर्यत्रिकम् आरराध भाग्यभाक् जन: क्व भोगम् नआप्नोति।

व्याख्या:- वने अपि = उपवने अपि, तं = नलम्, तौर्यत्रिकम् = नृत्यदगीतवाद्यत्रयम् आरराध = आराधयामास, भाग्यभाक् = भाग्य:वान्, जन: = लोक:, क्व = कुत्र,स्था ने गृहेवनेऽपि वा अति शेष:, भोगं = सुखं च, न आप्नोति = न प्राप्नोतीति भाव: ।

अनुवाद:- भाग्य समस्त अभीष्टों को सिद्ध करने में सबसे बड़ा सहायक होता है। वह मनुष्य अधिक भाग्यवान् है, जो दैव के आश्रय के आश्रय से धन)बड़प्पन(को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत सूक्ति यही भाव अभिव्यक्त कर रही है, कि भाग्यशाली सब स्थानों पर सर्वसंपन्नता पा ही जाते हैं। **वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं, क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः ॥** अर्थात् भाग्यवान व्यक्ति को कहां भोग, ऐश्वर्य नहीं प्राप्त हो जाता है ? सर्वत्र ही प्राप्त हो जाता है। यहां प्रसंग है भीमसुता के विरह से आकुल मन बहलाने के लिए निषधापति उद्यानवन में जाते हैं तो पृथ्वीपति राजा नल ने देखा कि विलास बावड़ी के तट से टकराती लहरों से वादन, कोकिल भ्रमरों से गीत एवं मयूर के नृत्य कौशल से नर्तन एक साथ हो रहा है। अतः विरही पृथ्वीपालक ने वन में भी तौर्यत्रिक) नृत्य, गीत, वाद्य(का आनंद पा लिया। सच ही कहा है, भाग्य का लेख कहीं पीछा नहीं छोड़ता। जिसके भाग्य में सुख संपत्ति होती है उसे किसी भी परिस्थिति पा ही लेते हैं। सुखी पुरूष की प्रशंसा करते हुए वेदव्यास का कथन है— जो श्रद्धालु, जितेंद्रिय, धनसंपन्न तथा शुभकर्मपरायण होते हैं, वे उत्सव से अधिक उत्सव, स्वर्ग से अधिक स्वर्ग, सुख से अधिक सुख को प्राप्त करते हैं।

विशेष:- प्रस्तुत पद्य में महाकवि श्रीहर्ष वर्णन करते हैं कि विलासवन में नृत्य, गीत एवं वाद्य रूप संगीत के द्वारा राजा नल की सेवा की गयी—क्रीड़ा संबंधित बावड़ी के किनारे पर तरगों के बजने से कोयलो और भ्रमरों के गाने से तथा मयूरों द्वारा प्रस्तुत किए गए नृत्य चातुर्य से बना में भी उस राजा नल की

वादन, गायन तथा नर्तन रूप संगीत ने सेवा की। भाग्यशाली पुरुष कहॉ पर भोग की प्राप्ति नहीं कर पाता है। अर्थात् भाग्यशाली व्यक्ति भोग विलास संबंधी साधनों को सर्वत्र ही प्राप्त कर लिया करता है। यद्यपि विरही राजा नल के लिए हुए सभी भोग साधन आदि कामोद्दीपक ही थे तथापि वन की बावड़ी, वृक्ष एवं प्राणियों द्वारा राजा को राजा को सुख पहुंचाना उनका कर्तव्य था। इस कारण से सभी अपने-अपने कर्तव्य में संलग्न थे। राजा नल अपने महल में कामपीड़ा से संतप्त थे और वे उस उद्यान में विनोदार्थ आये थे। अतएव उद्यान में विद्यमान सभी चर, अचर पदार्थों और प्राणियों का कर्तव्य था कि हुए उनका विरोध करें। इस भॉति यहॉ यह स्पष्ट होता है कि काम पीड़ा की शांति हेतु राजा नल उस उद्यान में पधारे थे किंतु फिर भी वे वहां पर अपनी कामपीड़ा से छुटकारा न प्राप्त कर सके।

विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं
विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥1-131॥

अन्वय:- विश्वासजुषां द्विषाम् अपि निबर्हणं धर्मधनै: विशिष्य विगर्हितं।

व्याख्या:- विश्वासजुषां =विस्रम्भनभाजां, द्विषाम् अपि = शत्रूणाम् अपि, निबर्हणं = वध: धर्मधनै: = धर्मपरै:, विशिष्य = अतिरिच्य:, विगर्हितम् = अत्यान्त निन्दितम्।

अनुवाद:- राजा नल ने हंस को पकड़ लिया। वह हंस राज नल द्वारा स्वयं को हिंसा किए जाने की आशंका करके राजा की निंदा करता है— हे राजन् ! मैंने तुमहारे दर्शनमात्र से ही तुम पर विश्वास कर लिया है। फिर ऐसे मुझ जैसे विश्वासी का तुम्हारा द्वारा बध किए जाना केवल जीवहिंसा सा मात्र ही नहीं कही जाएगी अपितु विश्वासघात संबंधी महान् पाप के भी आप भागी होंगे। क्योंकि मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने तो विश्वास में आए हुए शत्रु का वध करना भी अत्यंत निंदनीय कर्म कहा है। फिर मैं तो आपका शत्रु ही नहीं हूं। आपका अपना ही व्यक्ति हूॅ तथा आप पर पूर्ण विश्वास भी कर रहा हूॅ अत: आप द्वारा मेरा वध किया जाना नितांत अनुचित ही होगा।

विशेष:- महिपाल का समव्यवहारी होना आवश्यक है। लोक में कल्याण चाहते हुए राजा को चाहिए शत्रुओं के साथ भी ऐसा व्यवहार अपनाने की सभी जगह उसकी प्रशंसा हो, क्योंकि विश्वासी प्रतिपक्षी का वध करना अत्यंत निंदनीय है। निम्नलिखित सुक्ति यह कह रही है —**विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं, विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥** अर्थात् विश्वास करने वाले शत्रुओं की हत्या भी धर्मज्ञों ने अत्यंत निंदा की है। दमयंती विरह से क्षुब्ध होकर नल मन बहलाने उद्यान में जाते हैं। उपवन में सुनहरे हंस को देख राजा उसको ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। उन्हें धिक्कारता हुआ हंस कहता हैहे — राजन! आपको देखकर मेरा मन में विश्वस्त हो गया था, कि आप कुछ ऐसा ना करेंगे जिससे मुझे दु ख:हो। विश्वस्तमना मेरी हत्या केवल जीवहत्या नहीं है, क्योंकि भरोसे में आये प्रतिपक्षी को मारना धर्मज्ञों ने उचित नहीं बताया।

व्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् ।। 2-48।।

अन्वय:- हि साधवो निजोपयोगिताम् फलेन ब्रुवते, कण्ठे न न ब्रुवते ।

व्याख्या:- हि = यस्मा त् कारणात् , साधवो =सज्जना:, निजोपयोगिताम् = स्वोयपकारित्वंन, फलेन = कार्येण, ब्रुवते = बोधयन्ति, कण्ठेपन = वाग्व्या पारेण, न ब्रुवते = नो बोधयन्ति (निजोपयोगितामिति शेष:)।

अनुवाद:- इस समय केवल आपको स्वीकृति प्राप्त करने के निमित्तव जो यह निवेदन किया, उसे धक्कार, क्योंकि भले व्यक्ति अपनी उपयोगिता फल (कार्य) से ही सिद्ध करते हैं, कंठ से नहीं।

सज्जन अपनी सार्थकता क्रिया द्वारा प्रमाणित करते हैं, केवल बातों से नहीं। हंस ने जो इतना कहा, वह इसी कारण की कार्य संपन्न करने से पूर्व वह महाराजा नल की मंजूरी चाहता था।

विशेष:- संसार के प्रत्येक कार्य को सम्पूर्णता प्राप्त करने में प्रयत्न, साहस की आवश्यकता पड़ती है कण्ठ की नहीं, क्योंकि प्राय: देखा जाता है, जो हम कहते हैं उसे करते नहीं हैं। कार्य करना चाहिए कहने की अपेक्षा। इसलिए प्रस्तुत सुक्ति में श्रीहर्ष ने माना है, बड़े लोग कार्य करने में विश्वास रखते हैं कण्ठ से कहने में नहीं —**ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् ।।** अर्थात् सज्जन मनुष्य अपनी उपयोगिता को कार्य से दिखाते हैं, कण्ठ से नहीं बतलाते। स्वर्णहंस अपने कार्य उप)कार करने(का वर्णन पहले ही वीरसेन पुत्र के समक्ष कर देता है। पश्चात् वे स्वयं को ऊपर पश्चाताप करता हुआ कहता है— यहां मैंने केवल अपनी स्वीकृति प्राप्त करने के निमित्त जो यह निवेदन किया, उसे धिक्कार है, क्योंकि भले व्यक्ति अपनी उपयोगिता फल)कार्य(से बनते हैं, कण्ठ से मौखिक नहीं। सज्जन अपनी सार्थकता क्रिया द्वारा प्रमाणित करते हैं, केवल बातों से नहीं। चाणक्यनीति कहती है मन से विचारे गये कार्य को अपनी वाणी से नहीं करना चाहिए, उस विचार को मन्त्र की भॉती रक्षा करते हुए कार्य में लगना चाहिए।

धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः । 2/53

अन्वय:-धनिनाम् इतर: सन्निधिः पुन: सतां गुणवत्सिन्निधि: एव सन्निधि:।

व्याख्या:- धनिनाम् = आढयानां, कुबेरादीनामिति भाव:, इतर: = अन्यं:, सन्निधिः = उत्तधमवेशधि:, पुन: = भूय:, सतां = विदूषां, गुणवत्सिन्निधि: एव = गुणीजनसामीप्यिम् एव, सन्निधि: = महानिधि: ।

अनुवाद:- वियोग ज्वर से अत्यन्त सन्तप्त मैंने हिम के श्रेष्ठ भाग से युक्त वायु आपको प्राप्त कर लिया , धनवानों की अन्य धनद्रव्या आदि अच्छी निधि हो सकते हैं, सज्जनों की सन्निधि (श्रेष्ठ कोष) तो फिर गुणियों के समागम ही है। आशय यह है विरहज्वर से पीड़ित नलको हंस की प्राप्ति शीतलतम समीर के समान सुखदायिनी हुई, उन्हें हंस क्या मिला बहुत बड़ी निधि मिल गयी।

विशेष:- उत्तम पुरुष औषधी के समान लाभकारी होते हैं। महापुरुषों का संग समस्त उत्कृष्ट अमूल्य पदार्थों का आश्रय, कल्याण, संपत्तियों का हेतु और सारी उन्नति का मूल कहा जाता है। श्रीहर्ष कहते हैं— **धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः ।** विद्वान् लोगों का संघ गुणकारी होता है। अर्थात् विद्वान पुरुषों को गुणी पुरुषों का समीप्य ही श्रेष्ठ निधि है। जब राजा ने हंस की प्रशंसा करते हुए कहा— जैसे तुम सुंदर हो, वैसे ही विचारशील स्वभाव वाले हो। निश्चय ही तेरी यह देह ही सुवर्णमयी नहीं है, किंतु वाणी भी वैसी ही शोभन वर्णों अक्षरों एवं वाक्यों से युक्त है। वियोगज्वर से अत्यंत संतप्त मैंने हिम के श्रेष्ठ भाग से युक्त वायुरूप आपको प्राप्त कर लिया। धनवानों के लिए अन्य धनद्रव्य आदि अच्छी निधि हो सकते हैं, किंतु सज्जनों की सन्निधि गुणी व्यक्तियों का उच्च समागम है।

गुरूपदेशं प्रतिभेव तीक्ष्णा प्रतिक्षते जातु न कालमर्तिः । 3/91

अन्वय:- हि तीक्ष्णात प्रतिभा गुरूपदेशम् इव अर्ति: जातु कालं न प्रतीक्षते ।

व्याख्या:- हि = यस्मात् कारणात्, तीक्ष्णा = तीव्रा, शीघ्रग्राहिणीति भाव:, प्रतिभा = प्रज्ञा, गुरूपदेशम् = आचार्योपदेशम् इव, अर्ति: = पिडा, जातु = कदाऽपि, कालं = समयं, न प्रतीक्षते = न प्रतिक्षां करोति, ।

अनुवाद:- विलंब मत करो, शीघ्रता करने का समय है, जिसमें विलंब सह लिया जाय, उस कार्य में सोच विचार किया जाता है। शिष्य की कुशाग्र तुल्य तीव्र नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा जैसे गुरु के उपदेश की प्रतीक्षा नहीं करती, वैसे ही पीड़ा विलंब की प्रतीक्षा नहीं करती। अर्थात् भाव यह है कि दमयंती जब विरह पीड़ा सहने में अशक्त है, अतः हंस को अब अधिक सोच-विचार में उहापोह में समय बिताना ठीक नहीं। तीक्ष्णबुद्धि कार्य करने में यह प्रतीक्षा नहीं करता कि जब गुरुजी कार्यनिर्देश करें, तब वह करें, वह तो अविलंब कार्य में लग जाता है, विलंब उसे सह्य नहीं, ऐसे ही विरह पीड़ा भी समय की प्रतीक्षा नहीं करती।

साधने हि नियमोऽन्यस जनानां , योगिनां तु तपसाऽखिल सिद्धिः । 5/3

अन्वय:- हि साधने नियम: अन्यनजनानां, योगिनां तु तपसा अखिलसिद्धि:।

व्याख्या:- हि = यस्मात् कारणात्, साधने = उपाये, नियम: = अवश्याम्भाव:, अन्य।जनानां = अपरजनानाम् , योगिनां तु = तपोयोगयुक्ता नां तु, तपसा = तपोधर्मेण, अखिलसिद्धि: = सर्वकार्यसिद्धि: ।

अनुवाद:- विमान अर्थात् यत्रोचित वाहन के बिना ही मार्ग में यात्रा करते उस मुनि (नारद) ने आकाश यात्रा कर डाली, क्योंकि साधन (वाहन) तो सामान्य जनों को आवश्यक है, योगियों की तो तप से ही सब सिद्धि हो जाती है। वस्तुतः वाहनों से सामान्य जन यात्रा करते हैं, तपस्वी योगी जनों को वाहन आदि साधन अपेक्षित नहीं वह तो तपोबल से समस्त कार्य कर डालते हैं।

कर्म क: स्व्कृतमत्र न भुङ्क्तेत । 5/6

अन्वय:- अत्र क: स्व कृतं कर्म न भुङ्क्तेह ।

व्याख्या:- अत्र = संसारे, क: = जन:, स्वकृतं = निजविहितं, कर्म = क्रियां, न भुङ्क्ते = न अनुभवति ?

अनुवाद:- जो सूर्य ने ब्राह्मण राज चंद्र को अपने किरण रूप हाथों से परिभव दिया, उससे ही उस काल सूर्य को ब्राह्मण राज नारद अथवा उनके ही रूप में चंद्र ने अपने हाथों परिभव दिया। इस संसार में कौन अपने किए कर्मों को नहीं भोगता- सभी को कर्म फल भोगना पड़ता है। अर्थात् सूर्य ने एक ब्राह्मण (चंद्र) को अपने हाथों अपमानित किया, दूसरे ब्राह्मण नारद अथवा उनके ही रूप में चंद्र के हाथों सूर्य को अपमानित हो अपने किए को भोगना पड़ा। कर्म फल भोगना ही पड़ता है। नारद के सूर्याधिक तेजस्वी होने के विषय में यह उक्ति है।

विशेष:- समस्त जगत कर्मों के अधीन रहकर ही चलायमान होता है। अतः लोक में कर्मफल की आवृत्ति लगी रहती है। प्रस्तुत सूक्ति उचित ही कह रही है—प्रत्येक जीव को कर्मों का फल अवश्य प्राप्त करता है—**कर्म क स्व्कृतमत्र न भुङ्क्तेत । :**अर्थात् संसार में कौन अपने किए कर्म का फल नहीं भोगता। यहां दमयन्ती स्वयंवर का समाचार लेकर नारद इन्द्रलोक जाने लगे। नारद द्वारा प्राप्त होने वाले संताप की आशंका से अथवा उन्हें ताप न हो , इस भय से आदित्य ने अपने तेज को पहले ही संकुचित कर लिया। आश्चर्य है, जिस दिनमणि के द्विजराज (चन्द्र)को अपने करों से परिभव दिया, उसी काल में उस(सूर्य) द्विजराज)ब्राह्मणराज(ने अपने हाथों परिभव दिया। यहां अपने किए का फल नहीं पाता ?)सभी को कर्म फल भोगना पड़ता हैकर्मफल (प्रत्येक परिस्थिती में भोगने ही पड़ते हैं।

आकर: स्वपरभूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदो: सहवास: । 5/12

अन्वय:- हि प्रायश: सुहृदो: सहवास: स्वयपरभूरिकथानाम् आकर:।

व्याख्या:- हि = यस्मात् कारणात्, प्रायश: = वाहुल्येन, सुहृदो: = मित्रयो:, सहवास: = संगम: , स्वापरभूरिकथानाम् = आत्मी याऽन्यरबहुवार्तानाम्, आकर: = खनि: ।

अनुवाद:- अन्य व्यक्तियों के साथ वार्तालाप राकते हुए बलदैत्य का शत्रु (इंद्र) नारद से सादर वार्तालाप करने लगा, कारण की दो मित्रों की एकत्र स्थिति प्राय: अपनी परायी अनेक कथाओं का आकर होती है। अर्थात् अन्य व्यक्तियों से वार्तालाप बंद कर इंद्र का नारद से संलाप, एक तो उन दोनों की घनिष्ठता का द्योतक करता है, दूसरे अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा इंद्र की दृष्टि में नारद को अधिक आदरणीय भी प्रमाणित करता है।

पूर्वपुण्यत विभवव्ययलब्धा: सम्पदो विपद एव विमृष्टाप: ।
पात्रपाणि कमलाऽर्पणमासां तासु शान्तिक विधिर्विधिदृष्ट:।।5/17

अन्वय:- पूर्वपुण्य विभवव्यवयलब्धार: सम्पतदो विमृष्टा विपद: एव। तासु आसां पात्रपाणि कमलाऽर्पणम् एव विधिदृष्ट : शान्तिक विधि।

व्याख्या:- पूर्वपुण्यिविभवव्ययलब्धा: = परातनसुकृतसम्पद्विनियोगप्राप्तान:, सम्पआद: = सम्परत्तधय:, विमृष्टार = विचारिता:, विपद: एव = विपत्तोय एव । तासु = सम्पृद्रूपासु विपत्सुत , आसां = सम्पपदां, पात्रपाणि कमलाऽर्पणम् एव = विद्यादिसम्पएन्न=करकमलदानम् एव, विधिदृष्ट : = शास्त्रा ऽवलोकित:, शान्तिक विधि = शान्तिकर्माऽनुष्ठा नम् ।

अनुवाद:- पूर्व में किये गये पुण्यों के महात्म्य के विनियोग से प्राप्त संपदायें विचार करने पर विपदाएँ ही हैं, उन के रहने पर उनका योग्य व्यक्तियों के कर कमलों में दान शास्त्र सम्मत शांति कर्म विधान है।
अर्थात् यद्यपि धन-लक्ष्मी आदि वैभव पूर्वपुण्य से मिलता है तथापि विचार करने पर ज्ञात होता है कि उसका यदि उचित उपयोग न हो तो संपति विपत्ति बन जाती है। संपत्ति का उचित उपयोग यही है की आवश्यकतानुसार विद्या वय संपन्न उपयुक्त व्यक्तियों को दान कर जन उपकार में लगाया जाय। उचित उपयोग बिना संपत्ति भार ही है। पात्रता के विषय याज्ञवल्क्य में कहा है कि पात्रता न केवल विद्या से आती है, न केवल तप से, विद्या तप दोनों जिसमें हो वह व्यक्ति पात्र होता है—**न विद्या केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। यत्र वृत्त मिमे चोभे तद्धि पत्रं प्रकीर्त्तितम्।।**

स्वत: सतां ह्रि परतोऽपि गुर्वी । 6/22

अन्वय:- सतां परत: अपि स्ववत: ह्रि गुर्वी।

व्याख्या:- सतां = सतपुरूषाणां, साधूनां, परत: अपि = अन्याजनोऽपि, स्व्त: = स्वत: एव, ह्रि गुर्वी = लज्जातिगुर्व्यिति महिति इति । साधूनां परत: सकाशातस्वतो यावति लज्जाह भवति तावति परमो नतस्मात् दृश्य्तवे कटाक्षावलोकेन स्वायमेव लज्जे त्यर्थ।

अनुवाद:- आंखें मूंदना और खोलकर देखना— दोनों से पीड़ित उन को कटाक्षों से देखता हुआ (नल) अनुराग सहित देखते पुरुष की भांति अत्यधिक लज्जित हुआ। सज्जनों को अन्य जनों की अपेक्षा अपने से ही लज्जा अधिक होती है। अर्थात् लज्जाहीन व्यापार करती सुंदरियों के दृष्टिगोचर हो जाने से नल को अनुचित लगता तो वे आंख मूंदकर चलने लगते हैं। इससे उनके शरीर में आती जाती सुंदरियां टकरा जाती। यह और भी अनुचित लगता। दोनों स्थितियों में अपराध बोध से पीड़ित नल ने यह उचित समझा कि कुछ आंखें खोलकर अथवा एक समय बंदकर दूसरे क्षण खोलकर चला जाए इस पर नल को प्रतीत हुआ कि वह अर्द्धनिमीलित नेत्रों से देखना तो अनुराग व्यापार कटाक्ष है। यह तो और भी लज्जास्पद है। फलस्वरूप वे अत्यधिक लजाये। प्रश्न हो सकता है कि उनकी ऐसी स्थिति को जब कोई देख ही नहीं रहा था तो उनको लज्जा क्यों आयी— इसी के उत्तर में यह सिद्धांत वचन कहा गया— 'स्वतः सतां ह्रि परतोऽपि गुर्वी' सज्जनों को स्व्त: ही अनौचित्य पर लज्जा लगती है, अन्य की अपेक्षा उन्हें नहीं होती।

मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता। 9/8

अन्वय:- मितं च सारं च वच: हि वाग्मिता।

व्याख्या:- मितं च = शब्दत:, मितमल्पा क्षरं, सारं च = अर्थत:,महार्थञ्च, वच: = वाक्यं, हि = यस्मात् कारणात्, वाग्मिता = पण्डिता,वक्तृ तवम्, अन्य था वाचालता स्यादिति भाव: ।

अनुवाद:- अरे, मेरी जीभ द्वारा विशेष प्रयोजन से शून्यप उन दोनों के विषय में उदासीनता का ही व्यवहार हुआ, क्योंकि विस्तार और कथन संकोच दोनों वाणी के विष हैं और थोड़ा किंतु सारपूर्ण वचनों का पांडित्य है। अर्थात् राजा नल के कुल नाम न बताने का कारण स्पष्ट किया है कि उसने यह दोनों बातें निरर्थक समझी, जिनके बताने से कोई विशेष लाभ नहीं। जिस विषय में अधिक कहना अपेक्षित ना हो उसे बढ़ा चढ़ाकर कहा जाय और अपेक्षित को संक्षेप में कहा जाय, यह बोलने की कला के दुर्गुण हैं। विष तुल्य हानिकारक। वचन वे ही पांडित्य पूर्ण समझे जाते हैं, जो संक्षिप्त हो पर तत्वपूर्ण हों। इसी आधार पर बोलने वालों की योग्यता निर्धारित होती है। इसी कारण नल ने निरर्थक कुल नाम बता कर बात नहीं बढ़ायी।

चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः। 9/56

अन्वय:- हि योग्येन योग्यसङ्गमः चकास्ति।

व्याख्या:- हि = यस्मात् कारणात्, योग्येन् = कुलशीलादिभिर्योगेन, योग्यसङ्गमः = उत्तमेन सह योग्यंस्यैव समागम: सम्बन्ध:, चकास्ति = शोभते। तस्माद् धर्मराजेन धर्मशीलाया: सम्बन्ध युक्त इति भाव:।

अनुवाद:- दमयन्तीण के द्वारा वह प्रसिद्ध धर्मराज कदाचित चित्त का अतिथि बनाया गया है, यह परिपाटी मुझे भी भली प्रतीत होती है, क्योंकि योग्य से योग्य (उत्तम से उत्तम) का संगम सुशोभित होता है। अर्थात् दमयन्ती धर्मशील है, अतः धर्मशील के चित्त में यदि धर्मराज बसा है तो उचित ही है। नियम भी है कि 'योग्यं योग्येन योजयेत' समानशील जनों का संघ शोभित होता है— समानशीलव्यैसनेषु सख्यिम्।

सुज्ञं प्रतीङ्गितभावनमेव वाचः। 11/101

अन्वय:- सुज्ञं प्रती इंगितभावनमेव वाचः।

व्याख्या :- सुज्ञं = विज्ञं, प्रती इंगितभावनंमेव = नैत्रादिचालनाविषेषणं हृदयगतभावप्रकटनमेव (चेष्टातदिज्ञापनमेव) वाचः = उपदेशा:, आदेशवाक्या नि, प्रेरणानि इत्यगर्थ।

अनुवाद:- शिविकावाहक समूह इस (गौडराज्य) के प्रति भीमसुत के नायनों की उपेक्षाबुद्धि से आधृत नि:स्पृ-हता की मुद्रा को जानकर स्वयं ही उस दमयन्तीभ को अन्य राजा की ओर ले गया। समझदार को संकेतों से भाव प्रकट कर देना ही वचन है। अर्थात् पालकीवाले सरदार थे। दमयन्ती की प्रेमहीन मुखमुद्रा से वे समझ गए कि गौड़राज में दमयन्ती की रुचि नहीं है और वे वहां से हटा दमयन्ती को अन्यर राजा के समीप ले गये। समझदार को संकेत पर्याप्त होता है, उससे कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। स्वामी के संकेत ही आज्ञावचन होते हैं विज्ञ सेवक के लिए।

विद्यामिव विनीताय न विषेदुः प्रदायते। 17/2

अन्वय:- विनीताय विद्यां प्रदाय इव न विषेदुः।

व्याख्या:- विनीताय = विनययुक्ताय शिष्याय, विद्यां= ज्ञानम्,चित्ताद्यथा, प्रदाय = दत्वा, इव = ज्ञानमिव, न विषेदुः= नानुतापं।

अनुवाद:- वे देव चिरकाल से मन में स्थापित भी भीमसुता दमयन्ती को पृथ्वी के स्वामी उस (नल) को देकर उसी प्रकार विषण्यप न हुए, जैसे कि विनम्र (शिष्य) को विद्या देकर (गुरु) अर्थात् व्यक्ति बड़े

अभ्यास से, बहुत समय लगा कर विद्या प्राप्त करता है। उस चिराव्यस्त विद्या के योग्य, विनयी शिष्य देकर उसे दुख: नहीं होता, सुख ही मिलता है। ऐसे ही देवों को भी बहुत दिनों से मन में बसी दमयन्ती के नल को प्राप्त होने पर विषाद नहीं हुआ, क्योंकि वह उसका अनुगामी और सच्चरित्र तथा योग्य था। देव गुरु के तुल्य है, नल शिष्ये के और दमयन्ती विद्या के समान। कोई अनुताप नहीं था देवों को नल दमयन्ती परिणय पर।

सर्वान्बलकृतान्दोषानकृतान्मनुरब्रवीत् । 17/48

अन्वय:- बलकृतान् सर्वान् अर्थान् अकृतान् अब्रवीत् ।

व्याख्या:- बलकृतान् = बलाद्धृक्तंव (छलेन्/ बलपूर्वकं), सर्वान् = सर्वा:, अर्थान् = व्या पार (कार्यान्) अकृतान् = अकरणीया (अनाचरितानि), अब्रवीत् = अकथयत् (उवाच) । यत: मनु: बलेन कृतान्सर्वानर्थान्व्यापारानकृतानेवब्रवीत्।

अनुवाद:- बलपूर्वक (शास्त्र वचनों की उपेक्षा करके) करो, वे तुम्हारे द्वारा आकृत (ना किए गये) होंगे। मनु ने कहा है कि बलात् किये सब कार्य अकृत होते हैं। अर्थात् मनुस्मृति में कहा गया है कि बलपूर्वक किया गया कर्म अकृत (अनुचित और व्यर्थ होता है।)

विशेष:- बल के कारण लोगों को अपना वशवर्ती बनाना अच्छा नहीं होता। श्री हर्ष विधि निर्माता का उदाहरण देते हुए कहते हैं, कि आचार्य मनु ने भी बलात् किये गये सब कार्यों की निन्दा की है— **सर्वान्बलकृतान्दोषानकृतान्मनुरब्रवीत् ।** पाप बलपूर्वक करो, वे तुम्हारे द्वारा न किये गये (अमान्य) बलात्—होंगे। मनु ने कहा है किये गये सब कार्य अमान्य होते हैं। यहां दमयन्ती को न पाने के कारण कलि ने क्रमशदेव :, इन्द्र परस्त्री गमनादी की निन्दा की। चार्वाक मतानुसार मनु के निर्देश का सन्दर्भ देते हुए आगे कहता हैपाप— बलपूर्वक करो, वे तुम्हारे द्वारा अकृत होंगे। मनु ने कहा है कि—बलात् किये सब कार्य अकृत होते हैं।

आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनसं न लिम्पति । 18/2

अन्वय:- हि आहृता विषयैकतानता ज्ञानेन धौतमनसं न लिम्पति ।

व्याख्या:- हि = यस्मात् कारणात्, तथाहि, आहृता = कृत्रिमा, विषयैकतानता = शब्दायदिषुएकाग्रता, ज्ञानेन = तत्वआबुद्धया, धौतमनसं = निर्मलान्त्:करणम्, न लिम्पति = न स्पृशति, न पातयति इत्यतर्थ: । ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्म सात् कुरूते इति।

अनुवाद:- आत्मज्ञानी वह (नल) और (दमयन्ती) के साथ दिन-रात विषय भोग में लीन रहते हुए भी पाप भागी ना हुआ, क्योंकि आहृत(कृतिम) विषय परता तत्वज्ञान से निर्मलमन व्यक्ति का स्पंर्श नहीं करती। अर्थात् नल दमयन्ती का उद्याम विलास अहोरात्र चला। यहां आपत्ति हो सकती है कि जिसे उदात्त चरित्र का धनी और पुण्यश्लोक कहा गया है, वह नल विषय वासना से पराभूत हो गया। इसका समाधान नल को आत्मतत्वज्ञानी अर्थात् जीव ब्रह्म में अभेद बुद्धि रखने वाला कह कर किया गया है। आत्मज्ञानी व्यक्ति शरीर से ऊपर सांसारिक भोग सामग्री का उपभोग करते हुए भी मन से उस में लिप्त नहीं होता। उसका मन उसका अंतः करण तत्वज्ञान से प्रक्षालित रहने कारण स्वच्छ निर्मल रहता है, अत: ऊपर से ओढ़ी गयी कृतिम भोग परायणता आत्मज्ञानी के निर्मल अंतः करण को छू भी नहीं सकती। यह आहार्या (कृतिम) विषयपरता आत्मावेत्ता नल का स्पर्श भी नहीं कर सकती थी।

6.3.1 'नैषधं विद्वदौषधम्' उक्ति की व्याख्या

महाकवि श्रीहर्ष 'नैषध-महाकाव्य' में अपनी व्युत्पत्ति प्रदर्शन का जो उपक्रम किया है, उसके कारण काव्य में क्लिष्टता और दुरूहता आ गयी है। अनेक शास्त्रीय सिद्धतों के वर्णनों, क्लिष्ट और श्लिष्ट प्रयोगों के चित्रणों और बहुलता संबंधी अनेक पांडित्य प्रदर्शन द्वारा उन्होंने काव्य के गागर में सागर ही भर दिया है। इसी कारण नैषधीयचरितम् महाकाव्य को विद्वानों के लिए औषध अथवा रसायन माना गया है। महाकाव्य के सुचारू अध्ययन द्वारा जिन्होंने अपने को इस महाकाव्य संबंधी विशेषताओं का विशिष्ट ज्ञाता बना लिया है, उनको विविध शास्त्रों का परिचायक कहा जा सकता है। इस महाकाव्य में श्री हर्ष ने श्लेषयुक्त प्रयोगों के अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष , न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत, मीमांसा, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि दर्शनों के कठिन सिद्धांतों का भी यत्र तत्र वर्णन किया है। अतः जिनको इन सभी शास्त्रों का सम्यक् ज्ञान नहीं है, उनके लिए इस महाकाव्य को समझना वस्तुत: दुरूह हो जाता है। इसी कारण कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने श्री हर्ष के महाकाव्य की कटु आलोचना भी की है। इन्होंने कला पक्ष को अत्यधिक महत्व दिया है। परिणामस्वरूप भाव पक्ष दब गया है। उदाहरणार्थ— पाणिनी के अपवर्गे तृतीय सूत्र पर उन्होंने व्यग्य किया है—

उभयी प्रकृती:कामे सज्जेदिति मुनेर्मन:। अपवर्गे तृतीयेति भणत: पाणिनीरपि।।

अपवर्ग अर्थात् मोक्ष के लिए तृतीय अर्थात् पुरुष और स्त्री भिन्न नपुंसक व्यक्ति की उपयुक्त है। एक स्थल पर होने और सु औ जस इन प्रथमा विभक्ति के प्रत्ययों को लेकर व्याकरण संबंधी विचित्र चमत्कार प्रस्तुत किया है—

क्रियते चेत्साधुविभक्तिचिन्ता, व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया।
या स्वौजसां साधयितुं विलासै:, तावत्क्षमा नाम पदं बहु स्यात्।।

हंस पक्ष में प्रस्तुत पद का अर्थ है— हंस कह रहा है कि 'यदि सज्जनों के वर्गीकरण का विचार किया जाए तो वह राजा नल का ही प्रथम व्यक्तित्व होगा, जो अपने पराक्रम के प्रभाव से असंख्य शत्रु राष्ट्रों को संपूर्ण स्थलों को अपने बस में करने में समर्थ हैं।

व्याकरण की दृष्टि से अर्थ है— यदि प्रथमा आदि सातों विभक्तियों में सर्वोत्तम विभक्ति कौन सी है- इसका विचार किया जाए तो प्रथमा नामक विभक्ति को ही प्रथम स्थान प्राप्त होगा, जो प्रथमा विभक्ति प्रथमा विभक्ति सु औ जस इस प्रथमा विभक्ति सम्बन्धी एकवचन, द्विवचन, बहुवचन के विलास से वाक्यालंकार में नाम और पद के सिद्ध करने के लिए पूर्णरूपेण समर्थ है। उन्होंने न्याय दर्शन में वर्णित आनंदरहित मोक्ष के संबंध में बहुत सुंदर बात कही है—

मुक्तये य: शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्। गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव स:।

न्यायदर्शन में प्रणीत मोक्ष गौतम का मत है वैश्विक दर्शन में अर्थात् अंधकार को भी पदार्थ मानने संबंधी मत का वर्णन है। इस दर्शन के प्रणेता मुनि कणाद का दूसरा नाम उलूक है। इसी कारण इस दर्शन को औलूकदर्शन भी कहा जाता है। इस विषय पर व्यंग करते हुए श्री हर्ष ने लिखा है कि उलूक अर्थात् उल्लू ही तमस्तत्व का परीक्षण कर सकता है तथा इस बारे में उसी का कथन मान्य हो सकता है। वेदांत दर्शन के सिद्धांताअनुसार मुक्तावस्था में जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं इसके संबंध में व्यग्य करते हुए महाकवि ने प्रतिपादित किया है कि मूर्ख पुरुषों को अपने ही अस्तित्व की समाप्ति रुचिकर लगती है।

उन्होंने सभी दर्शनों दार्शनिक मतों का खंडन करते हुए अद्वैतवाद को ही सर्वमान्य कहा है। सरस्वती के स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्होंने एक ही श्लोक में बौद्धदर्शन के तीन शाखाओं का वर्णन

प्रस्तुत किया है। वैशेषिक दर्शन संबंधी परमाणु वाद में मन की अणुस्वरूपता का वर्णन उपलब्ध होता है। वे ज्योतिष के विद्वानों से भी पूर्ण परिचित थे उन्होंने लिखा है— **अजस्रमभ्याशमुपेयुषा समं मुदैव देव: कविना बुधेन च।।**

उपर्युक्त प्रकार के अन्य अनेक उद्धरण नैषध महाकाव्य में विद्यमान हैं, जिनके आधार पर 'नैषधं विद्वदौषधम्' उक्ति की चरितार्थता सिद्ध होती है।

6.3.2 'उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवी:' की व्याख्या

महाकवि श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। काव्य रचना में रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता देना बाहर भारवि कवि से आरम्भ हुआ। उन्होंने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में चमत्कार प्रदर्शन आरम्भ किया। शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ ने इसे आगे बढ़ाया। नैषध महाकाव्य के रचयिता श्री हर्ष तक पहुंचतेपहुंचते यह चमत्कार प्रदर्शनी - इतना अधिक बढ़ गया कि काव्य की परिभाषा**'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** अर्थात् रसात्मक वाक्य हीकाव्य है, कि सर्वथा अपेक्षा होने लगी। चमत्कार प्रदर्शन और विद्वत्ता में से हर्ष कभी इतने उत्कृष्ट हैं कि भारवि और माघ उनके सामने कहीं नहीं ठहरते। इसी को लक्ष्य करके किसी आलोचक ने निम्नलिखित सूक्ति की रचना की—**तावद् भा। उदिते तु : नोदयघस्यभारवेर्भाति यावन्मा : ।।: च भारविक्व : क्व माघनषधेकाव्ये** भारवि की विद्वत्ता तभी तक प्रकाशित होती है, जब तक माघ कवि का उदय नहीं हो जाता। नैषद महाकाव्य की रचना होने पर माघ और भारवि कहीं भी दिखाई नहीं देते। तात्पर्य यह है कि जब माघ कवि के महाकाव्य शिशुपाल की रचना नहीं हुई थी, जब तक वह प्रकाश में नहीं आया था तब तक भारवि को अपने चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रशंसा प्राप्त होती रही थी। जिस प्रकार सूर्य की तीव्रता तभी तक रहती है, जब तक माघ का मास नहीं आ जाता माघ मास के आते ही सूर्य की तीव्रता समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार माघ कवि शिशुपाल के चमत्कार प्रदर्शन को देखकर विद्वान् भारवि कवि द्वारा रचित महाकाव्य किरातार्जुनीय महाकाव्य की कलात्मकता को भूल गये। जब नैषधीयचरितम् महाकाव्य विद्वानों के सामने आया तो उन्होंने किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिताओं को भुला सा दिया। इस सुक्ति का तात्पर्य श्रीहर्ष कविक-ो भारवि और माघ से तथा नैषधीयचरितम् को किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करना है।

महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की रचना की। भरवि वे पहले कवि हैं, जिन्होंने काव्य रचना में रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार प्रदर्शन को प्रमुखता दी। भरवि अपने काव्य की सरसता के लिए नहीं, अर्थ-गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। सरसता तो कालिदास के काव्यों में है। माघ के अर्थ-गौरव के लिए किसी समालोचक ने कहा है—**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ :गौरवम्। दण्डिन- ।।: माघे सन्ति त्रयोगुणापदलालित्यं**कालिदास की उपमा भारवि का अर्थ-गौरव और दण्डी का पद-लालित्य प्रसिद्ध है। यह सुक्ति माघ कवि को भारवि की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करती है, पर भैरवि के काव्य में अर्थ-गौरव को भी स्वीकार करती है।

माघ कवि द्वारा रचित महाकाव्य शिशुपालवध में उपमा अर्थ गौरव और पदलालत्यि तीनों गुण स्वीकार किए गए हैं —**'माघे सन्ति त्रयोगुणा'**अर्थ गौरव की दृष्टि से भारी की अपेक्षा श्रीहर्ष बहुत आगे हैं। श्री हर्ष ने नैषधीयचरितम् का पंचनली प्रकरण उन्हें अर्थ-गौरव के परम प्रवीण सिद्ध करता है। उस प्रकरण में इस प्रकार के श्लोक तो है ही, जिन के दो-दो अर्थ होते हैं, इस प्रकार के श्लोक भी हैं जिनके पॉच अर्थ होते हैं। माघ और श्रीहर्ष की तुलना करते हुए किसी समालोचक ने कहा है कि माघ पंडित कवि हैं तो हर्ष पंडित होने के साथसाथ कवि और प्रखर दार्-शनिक भी हैं। अतएव 'साहित्ये सुकुमार वस्तुनि' इत्यादि कथन समीचीन ही हैं।

समालोचक विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि भारवि को राजनीति-शास्त्र का अच्छा ज्ञान था, जिसका प्रदर्शन उन्होंने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में किया है माघ कवि को अपने दार्शनिक ज्ञान और व्याकरण क वैदुष्य के हेतु सराहा गया है। श्रीहर्ष कवि विद्वत्ता इन दोनों काावियों भारवि और माघ के अपेक्षा उच्च कोटि की है। श्री हर्ष ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य के साथसाथ खण्डनखण्डखाद्य - नामक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना द्वारा स्वयं को दर्शानिक विद्वान् के साथ -साथ अद्वैतवादी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। न्यायशास्त्र की स्थापना करने वाले गौतम ऋषि के विषय में उन्होंने घोषित किया है—
मुक्ते य।।: तथैव सव यथावित्थमूचे सचेतसाम। गोतमं तमवेक्ष्यैय शास्त्रशिलात्वा :

श्रीहर्ष विद्वत्ता की दृष्टि से अधिक प्रसिद्ध हैं। श्री हर्ष का अपनी भाषा और शैली पर असाधारण अधिकार है। श्री हर्ष की प्रमुख विशेषता यह है कि वे सुकुमार एवं मनोहर पद रचना में पूर्ण समर्थ एवं दक्ष हैं। श्रीहर्ष अपने पदलालित्य- के लिए भी प्रसिद्ध हैं। यह कहने में किसी को कोई संकोच नहीं होता चाहिए कि श्री हर्ष की प्रवृत्ति कालिदास की वैदर्भी रीति के समान प्रसाद गुण युक्त प्रतीत नहीं होती। इसके विपरीत कुछ ऐसे श्लोक भी नैषधीयचरितम् में हैं जो भाषा की दृष्टि से कालिदास के छन्दों के समान कहे जा सकते हैं। नैषध के प्रथम सर्ग में हंस के विलाप का जो प्रसंग है, वह वैदर्भी रीति का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। नैषध महाकाव्य में वैदर्भी रीति की प्रधानता का एक कारण इसके नायक नल की प्रेयसी दमयन्ती का विदर्भ राज्य की राजकुमारी अर्थात् वैदर्भी होना है। श्रीहर्ष ने स्वीकार किया है— **धन्यासि वैदर्भि गुणैरूदारार्यया समाकृष्यतं नैषधोऽपि।** वैदर्भि रीति के अतिरिक्त कवि श्री हर्ष महाकाव्य में गौड़ी रिति का भी यत्र तत्र प्रयोग करते हैं। भारवि और माघ अर्थ-गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। उस क्षेत्र में भी श्रीहर्ष उन को पीछे छोड़ देते हैं। श्रीहर्ष के अर्थ-गौरव के समर्थक कुछ वाक्य इस प्रकार स्वीकार हैं—

क्व भोगमाढनोति न भाग्यजन:?। नही कर लेताक्ति अपना भोग कहॉ प्राप्तभग्यवान व्य) ?(
मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता। (सीमित और सारगर्भित वचन कहना ही भाषण कौशल है।)

डॉ0 उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार—श्री हर्ष के काव्यगत वैशिष्ट्य के अनेकानेक उपादानों में इतने पद-लालित्य का बहुत आदर है। प्रसाद गुण और माधुर्य भाव तो इतनी कृति में प्राचुर्य प्राप्त किए

ही हुए हैं। अनुप्रास, श्रुति-मधुर पदावली का विन्यास पद-पद पर मिलता है, चाहे प्रथम पद को ही क्यों न रखें जैसे—**निपीय यस्य क्षितिरक्षिणकथां :, तथाद्रियन्ते न बुधा :सुधामपि।।** भारवि और माघ की अपेक्षा श्रीहर्ष की श्रेष्ठता को सभी ने स्वीकार किया है। विविध विधि में संस्कृत काव्य परम्परा सनातन से संतों एवं सदाशयों के हृदय को रसवादिता एवं ज्ञान आभा से अपलावित करती रही है। काव्य परंपरा में बाल्मीकि और कालिदास द्वारा प्रारंभ नैसर्गिक कविता और काव्य कला के तत्वों का संतुलित समन्वय पाया जाता है। किन्तु कालिदास के समय में ही कवियों का एक ऐसा वर्ग हो गया था जो काव्य में शब्द कीड़ा के महत्व प्रदान करता था स्वयं कालिदास को ऐसे कवि पंडितों की तृप्ति के लिए रघुवंश के नवम सर्ग की रचना करनी पड़ी। यह प्रवृत्ति भारवि और माघ से होती हुई श्रीहर्ष में अपने चरम विकास पर पहुंचती है। इस कारण काव्य में कला पक्ष की प्रधानता स्वीकार करने वाले पंडितों की कसौटी पर श्री हर्ष को स्थान प्राप्त हुआ। इन पंडितों के अनुसार भारवि की प्रशंसा तभी तक है , जब तक माघ का उदय नहीं होता। नैषध काव्य के उदय होने पर कहां माघ और कहां भारवि।

6.4 सारांश:-

महाकवि श्रीहर्ष का पाण्डित्य विद्वत्समाज में पूजनीय है। नैषध महाकाव्य में विभिन्न अनुशीलनात्मक सुक्तियों के माध्यम से कवि ने अपने वेदुष्य को यहां प्रदर्शित किया है, और अपने व्यक्तित्व से उन सुक्तियों का दर्शन कराया है। नैषध में एक साथ अनेक उपदेशात्मक तत्वों का उल्लेख कर कवि ने आज भी इसकी कीर्ति को यथावत रखा है। ये सूक्तियां जनमानस के दिग्दर्शन करने में अत्यंत उपयोगी हैं। इन सुक्तियों का अवलोकन करने से यह तो निश्चित हो ही जाता है कि कवि श्री हर्ष शास्त्रों की उपयोगिता को समझते थे, साथ ही उस सिद्धान्त को जनमानस के मध्य रख कर उसे कीर्ति देने में समर्थ थे।

इन्हीं उपद्देशात्मक सुक्तियों को आपने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जाना तथा महाकाव्य में आये हुए सूक्तियाँ की व्याख्या के द्वारा आपके प्रतिभा चक्षु से स्पर्श कराने का प्रयास किया गया है।

6.5 शब्दावली:-

शब्द	=	**अर्थ**
सन्निधि	=	श्रेष्ठ कोष
दिनमणि के द्विजराज	=	चन्द्र
योग्य	=	उत्तम से उत्तम
बलपूर्वक	=	शास्त्र वचनों की उपेक्षा करके)
आहार्या	=	कृतिम

स्वतः सतां हि परतोऽपि गुर्वी = सज्जनों को स्वत: ही अनौचित्य पर लज्जा लगती है।

6.6 बोध प्रश्न:-

1- बहुविकल्पीरय प्रश्न-

1. नैषध महाकाव्य में किस की कथा का वर्णन किया गया है।

(क) राम-सीता (ख) यक्ष- यक्षी

(ग) नल-दमयन्ती (घ) इनमें से कोई नही

2. नैषधीयचरितम् में समास है।

(क) कर्मधारय (ख) तत्पुरूष

(ग) द्विगु (घ) अव्यी भाव

3. नैषध महाकाव्य में स्थांयी भाव है।

(क) हास (ख) शोक

(ग) भय (घ) हास

4. नैषध महाकाव्य में मुख्यत: किस रीति प्रधान का प्रयोग किसा गया है,

(क) गौडी रीति (ख) वैदर्भी रीति

(ग) पांचाली (घ) लाटी

5. नैषध महाकाव्य में मुख्यत: किस गुण का प्रयोग किसा गया है,

(क) प्रसाद (ख) माधुर्य

(ग) ओज (घ) इनमें से कोई नही

6. प्रो- नीलकमल भट्टाचार्य श्रीहर्ष की जन्मस्थली सिद्ध करते हैं।

(क) बंगाल को (ख) गौड़देश को

(ग) महाराष्ट (घ) इनमें से कोई नही

7. विद्यापति ने किस ग्रन्थ में श्रीहर्ष को गौड़देशवासी बताया है।

(क) पुरुष परीक्षा (ख) कथासरित्सागर

(ग) नैषध (घ) इनमें से कोई नही

8. नैषधमहाकाव्य का प्रथम नामोल्लेख अपनी कृतियों में करने वाले कवि का क्या नाम है।

(क) धनञ्जय (ख) महेन्द्रसूरि

(ग) सोमदेव भट्ट (घ) मम्मट

9. दशरूपकम् के प्रणेता क्या नाम है।

(क) आचार्य धनञ्जय (ख) आचार्य विश्वनाथ

(ग) आचार्य मम्मथट (घ) आचार्यप जयदेव

1- बहुविकल्पीय प्रश्न-

1-ग

2-घ

3-क

4-ख

5-क

6-क

7-क

8-ख

9-क

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा。 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

3.नैषधीयचरितम् – महाकवि श्री हर्ष

4.संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी।

5.संस्कृत साहित्य का आधुनिक इतिहास- डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

6.संस्कृत साहित्य की रूप रेखा

6.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें:-

1. नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष

2. नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वेर प्रकाशन

3. भारतीय दर्शन- उमेश मिश्र

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता सुक्ति कि व्याख्या कीजिए।

2 'नैषधं विद्वदौषधम्' उक्ति की व्याख्या कीजिए।

3 'उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवी:' की व्याख्या कीजिए।